

## यह मेरी मातृभूमि है

आज पूरे ६० वर्ष के बाद मुझे मातृभूमि—प्यारी मातृभूमि के दर्शन प्रोप्त हुए हैं। जिस समय मैं अपने प्यारे देश से विदा हुआ था और भाग्य मुझे पश्चिम की ओर ले चला था, उस समय मैं पूर्ण युवा था। मेरी नमो में नवीन रक्त मजालित हो रहा था। हृदय उमंगों और बड़ी-बड़ी आशाओं से भरा हुआ था। मुझे अपने प्यारे भारतवर्ष में किसी अत्याचारी के अत्याचार या न्याय के बलवान हाथों ने नहीं जुदा किया था। अत्याचारी के अत्याचार और कानून की कठोरताएँ मुझसे जो चाहें सो करा सकती हैं, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि मुझसे नहीं छुड़ा सकती। वे मेरी उच्च अभिलाषाएँ और बड़े-बड़े ऊँचे विचार ही थे, जिन्होंने मुझे देश निकाला दिया था।

मैंने अमेरिका जा कर वहाँ खूब व्यापार किया और व्यापार से धन भी खूब पैदा किया तथा धन से आनंद भी खूब मनमाने लूटे। सौभाग्य से पत्नी भी ऐसी मिली, जो मोर्दम में अपने सानी की आप ही थी। उसकी लावण्यता और सुदरता की स्फूर्ति तमाम अमेरिका में फैली थी। उसके हृदय में ऐसे विचार की गुंजायश भी न थी, जिसका सबब मुझसे न हो, मैं उस पर तन-मन में आसक्त था और वह मेरी सर्वस्व थी। मेरे पाँच पुत्र थे जो सुदर, हुष्ट-पुष्ट और ईमानदार थे। उन्होंने व्यापार को और भी चमका दिया था। मेरे भोले-भाले नन्हें-नन्हें पौत्र मोद में बैठे हुए थे, जब कि मैंने प्यारी मातृभूमि के अंतिम दर्शन करने को अपने पैर उठाये। मैंने अनंत धन, प्रियतमा पत्नी, सपून बेटे और प्यारे-प्यारे ज़िगर के टुकड़े नन्हें-नन्हें बच्चे आदि अमूल्य पदार्थ केवल इसीलिए परिष्कार कर दिये कि मैं प्यारी भारत-जननी का अंतिम दर्शन कर लूँ। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ, दस वर्ष के बाद पूरे सौ वर्ष का हो जाऊँगा। अब मेरे हृदय में केवल एक ही अभिलाषा बाकी है कि मैं अपनी मातृभूमि का रक्षण करूँ।

यह अभिलाषा कुछ आत्र ही मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि उस समय

भी थी जब मेरी प्यारी पत्नी अपनी भबुर बानो और कोमल बटाओ से मेरे हृदय को प्रकुल्लित किया करती थी। और जब कि मेरे युवा पुत्र प्रातःकाल आकर अपने बुद्ध पिता को समन्वि प्रणाम करते, उम्र समय भी मेरे हृदय में एक वाटा-सा सटकता रहता था कि मैं अपनी मातृभूमि से अलग हूँ। यह देश मेरा देश नहीं है और मैं इस देश का नहीं हूँ।

मेरे धन था, पत्नी थी, लड़के थे और जायदाद थी, मगर न मातृभूमि, मुझे रह-रह कर मातृभूमि के टूटे-फूटे झोपड़े चार-छैं वीषा मौत्सी जमीन और बालपन के लँगोटिया मारों की याद अकसर नता जाया करती। प्रायः अपार प्रसन्नता और आनन्दोलसों के अवसर पर भी यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था कि "यदि मैं अपने देश में होता.....!"

२

जिम समय मैं बम्बई में जहाज से उतरा, मैंने पहिले काले-काले कोट-पतंगून पहिने टूटी-फूटी अँगरेजी बोलते हुए मल्लाह देखे। फिर अँगरेजी दूकानें, ट्राम और मोटरगाड़ियाँ दीग पड़ी। इनके बाद खरटापरवाती गाड़ियों की ओर मुँह में चुरट दाने हुए आदमियों में मुठभेड हुई। फिर रेल का विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन देखा। बाद में रेल में सवार हो कर हरी-हरी पहाड़ियों के मध्य में स्थित अपने गाँव को चला दिया। उस समय मेरी आँखों में आँसू भर आये और मैं खूब रोया, क्योंकि यह मेरा देश न था। यह वह देश न था, जिसके दगनों की इच्छा सदा मेरे हृदय में लहराया करती थी। यह तो कोई और देश था। यह अमेरिका या इंग्लैंड था, मगर प्यारा भारत नहीं था।

रेलगाड़ी, जगलो, पहाड़ो, नदियों और मैदानों को पार करती हुई मेरे प्यारे गाँव के निकट पहुँची, जो किसी समय में फूल, पत्तों और फलों की बहुतायत तथा नदी-नालों की अधिकता से स्वर्ण की होड कर रहा था। मैं अब गाड़ी से उतरा, तो मेरा हृदय बाँगो उछल रहा था—अब अपना प्यारा घर देखूँगा,—अपने बालपन के प्यारे साधियों में मिलूँगा। मैं इस समय विन्कुल भूल गया था कि मैं ९० वर्ष का बूढ़ा हूँ। ज्यों-ज्यों मैं गाँव के निकट जाता था, मेरे पग धीघ्र-धीघ्र उठते थे और हृदय में अकथनीय आनंद का स्रोत उमड़ रहा था। प्रत्येक वस्तु पर आँखें फाड़-फाड़ कर दृष्टि

## मह मेरी गीतभूमि है

शालग्रामों। अहा! यह बही नाला है, जिसमें हम रोज धोड़े नहलाते थे और स्नान भी बुद्धिपूर्वक लगाते थे; किन्तु अब उसके दोनों ओर काँटेदार तार लगे हुए थे। सामने एक बैंगला था, जिसमें दो अँगरेज बंदूकों लिये इधर-उधर ताक रहे थे। नाले में नहाने की सलाह मनाही थी।

गाँव में गया, और निगाहें बालपन के साधियों को खोजने लगी, किंतु शोक! वे सब के सब मृत्यु के ग्रास हो चुके थे। मेरा घर—मेरा टूटा-फूटा झोपड़ा—जिसकी गोद में मैं बरलों खेला था, जहाँ, बचपन और बेफिक्री के आनंद लूटे थे और जिसका चित्र अभी तक मेरी आँखों में फिर रहा था, वही मेरा प्यारा घर अब मिट्टी का ढेर हो गया था।

यह स्थान चैर-आबाद न था। सैकड़ों आदमी चलते-फिरते मृष्टि आते थे। जो अवलन-कचहरी और घाना-मुल्लिख की बातें कर रहे थे, उनके मुखों में चिंता, निर्जिवता और उदामी प्रदर्शित होती थी और वे सब साधारण चिंताओं से व्यथित मालूम होते थे। मेरे साधियों के समान हृष्ट-भृष्ट, बलवान, लाल चहेरेवाले नवयुवक वही न देख पड़ते थे। उस अखाड़े के स्थान पर, जिसकी खेड़ मेरे हाथों में टाली थी, अब एक टूटा-फूटा स्कूल था। उसमें दुर्बल तथा कातिहीन, रोगियों की-सी मूर्तवाले बालक फटे कपड़े पहिने बैठे बैठे रहे थे। उनको देख कर सहसा मेरे मुँह से निकल गया कि नहीं-नहीं, यह मेरा प्यारा देश नहीं है। यह देश देखने में इतनी दूर से नहीं आता है—यह मेरा प्यारा भारतवर्ष नहीं है।

बरगद के पेड़ की ओर मैं दौड़ा, जिसकी सुहावनी छाया में मैंने बचपन के आनंद उड़ाये थे, जो हमारे लुटपन का क्रीडास्थल और युवावस्था का सुलभ वासस्थान था। आह! इस प्यारे बरगद को देखते ही हृदय पर एक बड़ा आघात पहुँचा और दिल में महान् शोक उत्पन्न हुआ। उसे देख कर ऐसी-ऐसी दुःस्वप्नपूर्ण तथा हृदय-विभ्रमक स्मृतियाँ ताजी हो गयीं कि घंटों पृथ्वी पर बैठे-बैठे मैं आँसू बहाता रहा। हा! यही बरगद है, जिसकी डालों पर लड़ कर मैं पुनर्गियों तक पहुँचता था, जिसकी जटाएँ हमारी झूला थीं और जिसके फल हमें सारे संसार की मिठाइयों में अधिक स्वादिष्ट मालूम होते थे, मेरे गले में बहि डाल कर खेलनेवाले लँगोटिया धार, जो कभी रुकते थे, कभी मनाते थे, वही

गये ? हाय, मैं बिना घरबार का मुआफिर अब क्या अकेला हो हूँ ? - क्या मेरा कोई भी साथी नहीं ? इस बरगद के निपट अब शाना या और बरगद के नीचे कोई लाल साफ़ा बोरे बैठ जा। उसके आन-गाम दम-जीम लाल पाटोपाटो, करवट खड़े थे ! वहाँ फटे-पुराने कपड़े पहिने, दुर्गन्धग्रस्त पुछव, जिस पर अभी-पावुनों की बौछार हुई थी, पड़ा निमक रहा था। मुझे ध्यान आया कि यह मेरा प्याप देन नहीं है, कोई और देन है। यह योरोप है, अमेरिका है, मगर मेरी प्यारी मातृ-भूमि नहीं है—कदापि नहीं है।

## ३

इपर से निराश हो कर मैं उस चौपाल की ओर चला, जहाँ ग्राम के वक्ता पिता जी गाँव के अन्य बुजुर्गों के साथ हुक्का पीने और हँसी-नहकते उठते थे। हम भी उस टाट के बिछौने पर क्लावाजियाँ खाया करते थे। कभी-कभी वहाँ पंचापत भी बैठती थी, जिसके मरपंच सदा पिता जी ही हुआ करते थे। इसी चौपाल के पास एक गोगान्धा थी, जहाँ गाँव भर की गायें रखी जाती थी और बछड़ों के साथ हम यहीं किलोने किया करते थे। शोक ! कि अब उस चौपाल का पता तक न था। वहाँ अब गाँवों में टीका लगाने की चौकी और डाकखाना था।

उस समय इसी चौपाल में लगा एक कोल्हवाड़ा था, जहाँ जाड़े के दिनों में ईश्वर मेरी जाती भी और गुट की सुगंध ने मस्तिष्क पूर्ण हो जाता था। हम और हमारे साथी वहाँ गंधेरियों के लिए बैठे रहते और गंधेरियाँ करनेवाले मजदूरों के हस्तलानव की देन कर आश्चर्य किया करते थे। यहाँ हमारों बार मैंने कच्चा रस और पक्का दूध मिला कर पिया था और वहाँ आस-पास के घरों की स्त्रियाँ और बालक अपने-अपने घड़े ले कर आते थे और उनमें रस भर कर ले जाते थे। शोक है कि मैं कोल्हू अब तक ज्यों के त्यों खड़े थे, किन्तु कोल्हवाड़े की जगह पर अब एक सन लपेटनेवाली मशीन लगी थी और उसके सामने एक तम्बीली और सिगरेटवाले की दुकान थी। इन हृदय-विदारक दृश्यों को देख कर मैंने दुःखित हृदय से, एक आदमी से जो देखने में सम्य मालूम होता था, पूछा—“महाशय, मैं एक परदेसी यात्री हूँ। रात भर लेट रहने की मुझे आशा दीजिएना ?” इस आदमी ने मुझे गिर से पैर तक गहरी दृष्टि से देखा और

वहने लगा कि "आगे आओ, यहाँ जगह नहीं है।" मैं आगे गया और वहाँ से भी यही उत्तर मिला कि "आगे जाओ।" पाँचवीं बार एक मज्जन में स्थान माँगने पर उन्होंने एक मुट्ठी घने मेरे हाथ पर रख दिये। घने मेरे हाथ में छूट पड़े और नेत्रों में अद्विष्ट अश्रु-धारा वहने लगी। मुख से सहसा निकल पड़ा कि "हाय ! यह मेरा देश नहीं है, यह कोई और देश है। यह हमारा अतिथि-सत्कारकारी प्यारा भारत नहीं है—कदापि नहीं है।"

मैंने एक मिगरेट की द्विदिया खरीदी और एक मुनमान जगह पर बैठ कर मिगरेट पीते हुए पूर्व समय की याद करने लगा कि अचानक मुझे धर्मशाला का स्मरण हो आया, जो भरे विदेश जाते समय बन रही थी। मैं उस ओर लपका कि रात कितनी प्रकार नहीं काट लूँ, मगर शोक ! शोक !! महान् शोक !!! धर्मशाला ज्यों की त्यों मड़ी थी, किंतु उसमें गरीब यात्रियों के टिकने के लिए स्थान न था। मदिरा, दुराचार और छूत ने उसे अपना घर बना रखा था। यह दगा देल कर विपत्त। मेरे हृदय में एक मर्द आह निकल पड़ी और मैं जोर से चिल्ला उठा कि "नहीं, नहीं, नहीं और तुम्हारे वार नहीं है—यह मेरा प्यारा भारत नहीं है। यह कोई और देश है। यह योरोप है, अमेरिका है; मगर भारत कदापि नहीं है।"

## ४

अपेसी रात थी। गोदड़ और कुत्ते अपने-अपने कर्कश स्वर में उच्चारण कर रहे थे। मैं अपना दुःखित हृदय लेकर उसी नाले के किनारे जा कर बैठ गया और सोचने लगा—अब क्या करूँ ! क्या फिर अपने पुत्रों के पास लौट जाऊँ और अपना यह शरीर अमेरिका की मिट्टी में मिलाऊँ। जब तक मेरी मातृभूमि थी, मैं विदेश में जहर ना; किंतु मुझे अपने प्यारे देश की याद दनी थी, पर अब मैं देश-विहीन हूँ। मेरा कोई देश नहीं है। इसी सोच-विचार में मैं बहुत देर तक घुटनों पर सिर रखे मौन रहा। रात्रि नेत्रों में ही अतीत की। घटेवाले ने तीन बजाने और किसी के गाने का शब्द कानों में आया। हृदय गद्गद हो गया कि यह तो देश का ही राग है, यह तो मातृभूमि का ही स्वर है। मैं तुरंत उठ खड़ा हुआ और क्या देखता हूँ कि १५-२० बड़ा स्थिरी,

मन्दे घोड़िया पहिने, हाथों में लोटे लिए स्नान की जा रही है और गानों जानी है—

“हमारे प्रभु, अवगुन चित न धरो—”

मैं इन गीत की सुन कर नम्र हो ही रहा था कि इनमें मैं मुझे बहुत आश्रितियों की झंझावात सुन पड़ी। उनमें मैं कुछ लोग हाथों में पीतल के बमंडल लिये हुए गिब-गिब, हर-हर, गणे-गणे, नारायण-नारायण आदि शब्द बोलते हुए चले जाने थे। आनंद-दासक और प्रभाश्रीदासक राग से मेरे हृदय पर जो प्रभाव हुआ, उसका वर्णन करना बख्ति है।

मेरे अनेकिया की चंचल से चंचल और प्रमत्त से प्रमत्त वित्तवाली लाक्षणमती स्त्रियों का आलाप सुना था, मर्हों बार उनकी जिह्वा में प्रेम और प्यार के शब्द सुने थे, हृदयार्थक वचनों का आनंद उठाया था, मैंने सुरीले पधियों का चहचहाना भी सुना था, किन्तु जो आनंद, जो मजा और जो मुस मुझे इस राग में आया, वह मुझे जीवन में कभी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने खुद अनुगुता कर कहा—

“हमारे प्रभु, अवगुन चित न धरो—”

मेरे हृदय में फिर उन्माह आया कि ये तो मेरे प्यारे देश की ही बातें हैं। आनंदानिरेव मे मोग हृदय आनंदमय हो गया। मैं भी इन आश्रितियों के साथ हो लिया, और ६ मील तक पहाड़ी मार्ग पार करके ऊँची नदी के किनारे पहुँचा, जिसका नाम पतिव्रतावती है, जिसकी लहरों में दुबकी अगाना और जिसकी गोद में मरला प्रत्येक हिंदू अना परम गौभाग्य समझता है। पतिव्रतावती मागीरखी गया मेरे प्यारे गाँव में छिन्नान मील पर बहती थी। किसी समय में घोड़े पर चढ़कर गया माना के दशनों की लादया मेरे हृदय में सरा रहती थी। यही मैंने हजारों मनुष्यों को इस ठंडे पानी में दुबकी लगाने हुए देखा। कुछ लोग बाजू पर बैठे पायशी-मत्र जप रहे थे। कुछ लोग हवन करने में मंलग्न थे। कुछ माथे पर तिलक लगा रहे थे और कुछ लोग मस्तर बेइमंत्र पड़ रहे थे। मेरा हृदय फिर उन्माहित हुआ और मैं जोर से कह उठा—“हाँ, हाँ, यही मेरा प्यारा देश है, यही मेरी पवित्र मानसूमि है, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ

भान्त है और इसी के दर्तनों को मेरी उत्कट इच्छा थी तथा इसी को पवित्र धूलि के कण बनने की मेरी प्रबल अभिलाषा है !”

५

“मैं विशेष आनंद में मग्न था। मैंने अपना पुराना कोट और घतलून उतार कर फेंक दिया और गंगा-माता की गोद में जा गिरा, जैसे कोई भोला-भाला बालक दिन भर निर्दय लोगों के साथ रहने के बाद संघ्या को अपनी प्यारी माता की गोद में झोंककर चला आये और उसकी छाती से चिपड़ जाय। हाँ, अब मैं अपने देश में हूँ। यह मेरी प्यारी मातृभूमि है। ये लोग मेरे भाई हैं और गंगा मेरी माता है।”

“मैंने टीक गंगा के किनारे एक छोटों-सी कुटो बनवा ली है। अब मुझे सिवा राम-नाम जपने के और कोई काम नहीं है। मैं नित्य प्रातः-प्रायः गंगास्नान करता हूँ और मेरी प्रबल इच्छा है कि इसी स्थान पर मेरे प्राण-निकलें और मेरी ससिपया, गंगा माता की लहरों की भेट हों।

मेरी स्त्री और मेरे पुत्र बार-बार बुलाते हैं, मगर अब मैं यह गंगा माता का तट और अपना प्यारा देश छोड़ कर वहाँ नहीं जा सकता। मैं अपनी मिट्टी गंगा जी को ही सौंपूँगा। अब ससार की कोई आकांक्षा मुझे इस स्थान से नहीं हटा सकती, क्योंकि यह मेरा प्यारा देश और यही प्यारी मातृभूमि है। वस, मेरी उत्कट इच्छा यही है कि मैं अपनी प्यारी मातृभूमि में ही अपने प्राण विमर्जन करूँ।

## राजा हरदौल

बुंदेलखंड में थोड़ा पुराना राज्य है। इसके राजा बुंदेल हैं। इन बुंदेलों ने पहाड़ों की घाटियों में अपना जीवन बिताया है। एक समय ओरछे के राजा जुझारसिंह थे। ये बड़े माहूमी और बुद्धिमान थे। माहूजहाँ उस समय दिल्ली के बादशाह थे। जब माहूजहाँ छोटी ने बल्वा किया और वह दाही मुक्त की लड़ना-पाटना ओरछे की ओर आ निकला, तब राजा जुझारसिंह ने उसमें मोरचा डिया। राजा के इस काम से गुणपाही माहूजहाँ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुरत ही राजा को दखिबन का शासन-भार सौंपा। उस दिन ओरछे में बड़ा आनंद मनाया गया। दाही दूत बिलजत और मनद ले कर राजा के पास आया। जुझारसिंह को बड़े-बड़े काम करने का अवसर मिला। मकर की तैयारियाँ होने लगी, सब राजा ने करने छोटे भाई हरदौलसिंह को बुला कर कहा—“भैया, मैं तो जाता हूँ। अब यह राज-बाट तुम्हारे सुपुर्ब है। तुम भी इसे जी में प्यार करना। न्याय ही राजा का सबसे बड़ा गहायक है। न्याय को गंडी में कोई धनु नहीं घुम सकता, चाहे वह खवय की मेला या इन्द्र का बल ले कर आवे, पर न्याय वही मक्का है, जिसे प्रजा भी न्याय समझे। तुम्हारा काम केवल न्याय ही करना न होगा, बल्कि प्रजा को अपने न्याय का विदाम भी दिलाना होगा और मैं तुम्हें बड़ा समझाऊँ, तुम स्वयं समझ-दार हो।”

यह कह कर उन्होंने अपनी पगड़ी उतारी और हरदौलसिंह के गिर पर रख दी। हरदौल रोता हुआ उनके पैरों से लिपट गया। इसके बाद राजा अपनी रानी में बिदा होने के लिए खवाब आये। रानी दरवाजे पर खड़ी रो रही थी। उन्हें देखते ही पैरों पर गिर पड़ी। जुझारसिंह ने उठा कर उसे छाती में लाया और कहा, “प्यारे, यह रोने का समय नहीं है। बुंदेलों की स्थिति ऐसे अवसर पर रोना नहीं करनी। ईश्वर ने चाहा तो हम-तुम जल्द मिलेंगे। मुझ पर ऐसी ही प्रीति रखना। मैंने राज-बाट हरदौल को सौंपा है, वह अभी



छड़का है। उमने अभी दुनिया नहीं देखी है। अपनी सलाहों में उसकी मदद करती रहना।”

रानी की जवान बढ हो गयी। वह अपने मन में कहने लगी, “हम यह कहते हैं, बुंदेली की स्त्रियाँ ऐसे व्यवहारों पर रोषा नहीं करती। शायद उनके हृदय नहीं होता, या अगर होता है तो उनमें प्रेम नहीं होता।” रानी बालेजे पर पथर रख कर अँगूठी गयी और होश जोड़ कर राजा की ओर मुस्कराती हुई देखने लगी; पर क्या वह मुस्कराहट को। जिस तरह अँधेरे मैदान में मशाल की रोशनी अँधेरे को और भी अंधाह कर देती है, उसी तरह रानी की मुस्कराहट उसके मन के अंधाह दुःख को और भी प्रकट कर रही थी।

जुझारसिंह के चले जाने के बाद हृदयोलसिंह राज करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसके न्याय और प्रजावात्सल्य ने प्रजा का मन हर लिया। लोग जुझारसिंह को भूल गये। जुझारसिंह के धनु भी थे और मित्र भी, पर हरदोलसिंह का कोई धनु न था, सब मित्र ही थे। वह ऐसा हंसमुख और मधुरभाषी था कि उसमें जो बातें कर लेता, वह जोषन भर उसका भवत बना जाता। राज भर में ऐसा कोई न था जो उसके पास तक न पहुँच सकेता हो। रात-दिन उसके दरबार का फाटन मजने लिए जुला रहता था। ओरछे को कभी ऐसा सर्वश्रेष्ठ राजा नसीब न हुआ था। वह उदार था, ग्यारी था, बिंदा और गुन का माहक था; पर सबसे बड़ा गुन जो उसमें था, वह उसकी वीरता थी। उमका वह गुन ह्म दुर्जे को पहुँच गया था। जिन जालि के जीवन का अवलम्ब तलवार पर है, वह अपने राजा के किसी गुन पर इतना गहरी रीसतें जितनी उमकी वीरता पर। हरदोल अपने गुणों में असी प्रजा के मन का भी राजा हो गया, जो मुक्क और मोल पर राज करने में भी कठिन है। हम प्रकार एक वर्ष बीत गया। उधर दक्षिण में जुझारसिंह ने अपने प्रवच में धारों ओर शाही दरबार जमा दिया, इधर ओरछे में हरदोल ने प्रजा पर मोहन-अंश फैल दिया।

२

फाल्गुन का महीना था, खीर और गुलाब में जमीन लाल हो रही थी। शमदेव का प्रभाव लोगों को मढ़ा रहा था। रानी ने सेता में मुनहना फनी बिछा रखा था और मल्लिकार्जुन में मुनहले महल उड़ रिये थे। मंगेश इ

सुतहले फाँ पर इशाना किरता था मोर निदिनता इस मुनहते महल में  
 ताने अयाग रही थी। इन्हीं दिनों दिल्ली का नामवर फेरन कादिराँ औरछे  
 आग। बड़े-बड़े पहलवान उमरा लोहा मान गये थे। दिल्ली में औरछे तक  
 सैकड़ों मर्दानगी के मझ में मजबूते उनके गामने आवें, पर कोई उमने जीत  
 न सका। उमने लड़ना भाग्य में नहीं, बल्कि मौत में नदना था। वह किमी  
 इनाम का भूया न था। जैसा ही दिल का दिरेर था, वैसा ही मन का गुला  
 था। ठीक होंगी के दिन उमने घूम-गान में औरछे में सूचना दी कि “लुदा  
 का मोर दिल्ली का कादिराँ औरछे आ पहुँचा है। जिने अनी जान भारी  
 हो, बाकर अपने भाप का निराधार कर ले।” औरछे के बड़े-बड़े बुद्धि मूरमा  
 यह घमड़-भरी वागी मुन कर गरम हो उठे। फाज और डक की तात के बदले  
 होल की बीर-भनी सुनायी देने लगी। हरदोक का अवाड़ा औरछे के पहलवानों  
 और फेरनी का मझने बड़ा बड़ा था। मझा को यहाँ मारे सहर के मूरमा  
 जमा हुए। काहदेव और बालदेव बुद्धि की नाक थे, सैकड़ों मैदान मारे  
 हुए। ये ही दोनों पहलवान कादिराँ का पबंड चुर करने के लिए गये।

दूमरे दिन जिने के सामने ताजा के दिनारे बड़े मैदान में औरछे के छोटे-  
 बड़े सभी जमा हुए। कैने-कैने मजीते, जलते-ते जवान थे,—मिर पर लुधरन  
 बाँकी पगड़ी, माये पर चंदन का तिलक, आँखों में मर्दानगी का सहर, कमरो  
 में तलवार। और कैने-कैने बूढ़े थे,—छनी हुई मूँछें, मायी पर निरछी पगड़ी,  
 बालों में बँधी हुई दाढ़ियाँ, चेहरे में मो हूँ, पर काम में जवान, किमी को  
 कुछ न समझते-वाले। उनकी मर्दाना चाल-ढाल नौजवानों की लगानी थी।  
 हर एक के मुँह में बीरता की बातें निकल रही थीं। नौजवान कहते थे—देखें,  
 आज औरछे की आज रहनी है या नहीं। पर बूढ़े कहते—औरछे की हार  
 कभी नहीं हुई, न होगी। बीरो का यह जोश देख कर राजा हरदोक ने बड़े  
 जोर से कह दिया—“लखरदार, बुद्धि की आज रहे या न रहे, पर उनको  
 प्रतिष्ठा में बल न पडने पावे—यदि किमी ने बीरो को यह कहने का अवसर  
 दिया कि औरछेवाले तलवार से न जीत सकें तो धाँसली कर बैठे, वह अपने  
 को जाति का शत्रु समझे।”

मूर्ख निकल थाप था। एकएक नगाड़े पर जोर पड़ी और आवाज सँगा

नय ने लोगों के मन को उछाल कर मुँह तक पहुँचा दिया। कालदेव और कादिरखा दोनों खगोद कते घेरों की तरह अघाड़े में उतरे और गले मिल गये। तब दोनों तरफ से तलवारें निकलीं और दोनों के गालों में चली गयी। फिर बादल के दो टुकड़ों ने त्रिजलियाँ निकलने लगी। पूरे तीन घंटे तक यही मालूम होता रहा कि दो अंगारे हैं। हजारों आदमी खड़े तमाशा देख रहे थे और मैदान में आधी रात का मा मंधाटा छाया था। हाँ, जब कभी कालदेव गिरहदार हाथ बलाना या कोई पंचदार बार बचा जाता, तो लोगों की गद्गेंत आप ही आप उठ जाती; पर किमी के मुँह में एक शब्द भी नहीं निकलना था। अघाड़े के अंदर तलवारों की खीच-तान थी, पर देखनेवालों के लिए अघाड़े में बाहर मैदान में हमने भी बंद कर तमाशा था। बार-बार जानीय प्रतिष्ठा के बिचार से मन के भावों को रोकना और प्रतप्तता या दुःख का शब्द मुख से बाहर न निकलने देना तलवारों के बार से बचाने से अधिक कठिन काम था। एका-एक कादिरखा 'अल्लाहो-अकबर' चिल्लाया, मानो बादल बार उठा और उसके गरजते ही कालदेव के गिर पर बिजली गिर पड़ी।

कालदेव ने गिरते ही बुंदेलों को मंत्र म रहा। हरएक के चेहरे पर निर्मल ओष और कुचले हुए घमंड की तस्वीर बिच गयी। हजारों आदमी जोश में भा कर अघाड़े पर दौड़े, पर हरदोल ने कहा—सबरदार! अब कोई आगे न बढ़े। इस आवाज ने पैरों के साथ जमीन का काम किया। रणको को रोक कर जब वे अघाड़े में गये और कालदेव की बेवा, तो आँखों में आँसू भर भाये। जवानी दौर जनीय पर पड़ा तड़प रहा था। उनके जीवन की तरह उसकी तलवार के दो टुकड़े हो गये थे।

आज का दिन बीता, रात आयी, पर बुंदेलों की आँखों में नींद नहीं। लोगों ने करपटें बदल कर रात्र काटी। जैसे बुद्धि धनुष्य विचलता से मुबह की वाट ओहता है, उमी तरह बुंदेलें रह-रह कर आकाश की तरफ देखने और उनकी धीमी चाल पर झुंझलाते थे। उनकी जानीय घमंड पर गहरा पाव लगा था। दूसरे दिन ज्योंही सूर्य निकला, तीन लाख बुंदेलें सान्नाब के किनारे पहुँचे। जिस समय भालदेव घेर की तरह अघाड़े की तरफ चला, दिलों में पड़कन-सी होने लगी। बस जब भालदेव अघाड़े में उतरा था, बुंदेलों के

होमले बड़े हुए थे, पर आज वह बाल न थी। हृदय में आगा की जगह डर घुसा हुआ था। जब कादिरखा कोई चुटीला वार करता तो लोगों के दिल उछल कर होठों तक आ जाते। मूर्ख मिर पर चला जाता था और लोगों के दिल बैठ जाते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भालदेव अपने भाई ने फुर्तीला और तेज था। उसने कई बार कादिरखा को नीचा दिखलाया, पर दिल्ली का निर्गुण पहलवान हर बार सँभल जाता था। पूरे तीन घंटे तक दोनों बहादुरों में तलवारें चलती रही। एकाएक सट्टाके की आवाज हुई और भालदेव की तलवार के दो टुकड़े हो गये। राजा हरदोल अवाह के सामने खड़े थे। उन्होंने भालदेव की तरफ तेजी से अपनी तलवार फेंकी। भालदेव तलवार खेन के लिए मुचा ही था कि कादिरखा की तलवार उसकी गर्दन पर आ पड़ी। बाबू सहारा न था, केवल एक 'धरवा' था, पर उगने लड़ाई का फैमला कर दिया।

हतान घुड़ेले अपने-अपने घरों को लौटे। यद्यपि भालदेव अब भी लड़ने को तैयार था, पर हरदोल ने समझा कर कहा कि "भाइयो, हमारी हार उम्मी समझ हो गयी जब हमारी तलवार ने जवाब दे दिया। यदि हम कादिरखा की जगह होते तो निहत्थे आदमी पर चार न करते और जब तक हमारे शत्रु के हाथ में तलवार न आ जाती, हम उस पर हाथ न उठाने; पर कादिरखा में यह उदारता कहाँ? बलवान् शत्रु का सामना करने में उशरता को ताक पर रख देना पड़ना है। तो भी हमने दिखा दिया कि तलवार की लड़ाई में हम उंगके बराबर हैं और अब हमको यह दिखाना रहो है कि हमारी तलवार में भी धैर्य ही जोहर है!" इसी तरह लोगों को तसल्ली दे कर राजा हरदोल रनवांस को गये।

कुलीना ने पूछा—लाला आज दगल का क्या रंग रहा ?

हरदोल ने मिर झुका कर जवाब दिया—आज भी वही कल की भा हाल रहा।

कुलीना—क्या भालदेव मारा गया ?

हरदोल—नहीं, जान से तो नहीं पर हार हो गयी।

कुलीना—तो अब क्या करना होगा ?

हरदोल—मैं स्वयं इसी सोच में हूँ। आज तक भोरछे को कभी नीचा न देखना पड़ा था। हमारे पाम धन न था, पर अपनी वीरता के मामले हमें राजे

और धन को कोई चीज न समझते थे। अब हम किस मुँह से अपनी वीरता का प्रमद करेंगे ? ओरछे की ओर बुंदेलों की आज्ञा अब जाती है।

कुलीना—यथा अब कोई आस नहीं है ?

हरदोल—हमारे पहलवानों में क्या कोई नहीं है जो उसमें बाजी ले जाय। भालदेव की हार ने बुंदेलों की हिम्मत तोड़ दी है। आज सारे शहर में शोक छाया हुआ है। मैकड़ों घरों में आग नहीं जली। चिराग रोशन नहीं हुआ। हमारे बैज और जाति की यह चीज जिससे हमारा मान था, अब अंतिम साँस ले रही है। भालदेव हमारा उस्ताद था। उसके हार चुकने के बाद मेरा मैदान में आना पड़ता है, पर बुंदेलों की साथ जाती है, तो मेरा सिर भी उसके पाव जायगा। कादिरसाँ बैगक अपने द्वार में एक ही है, पर हमारा भालदेव कभी उगने कम नहीं। उसको तलवार यदि भालदेव के हाथ में होती तो मैदान जल्द उनके हाथ रहता। ओरछे में केवल एक तलवार है जो कादिरसाँ की तलवार का मुँह मोड़ सकती है। वह भैया की तलवार है। अगर तुम ओरछे की नाक रखना चाहती हो तो उसे मुझे दे दो। यह हमारी अंतिम चेष्टा होगी। यदि इस बार भी हार हुई तो ओरछे का नाम सदैव के लिए डूब जायगा।

कुलीना सोचने लगी, तलवार इनको दूँ या न दूँ। राजा रोष गये हैं। उनकी आज्ञा थी कि किसी दूसरे की परछाही भी उस पर न पड़ने पाये। क्या ऐसी दशा में मैं उनकी आज्ञा या उत्सर्जन कहूँ तो वे नाराज होंगे ? कभी नहीं। जब वे सुनेंगे कि मैंने किस कठिन समय में तलवार निकाली है, तो उन्हें सच्ची प्रशंसा होगी। बुंदेलों की आज्ञा किनकी इतनी प्यारी नहीं है ? उनसे ज्यादा ओरछे की अच्छी चाहनेवाला कौन होगा ? इस समय उनकी आज्ञा का उत्सर्जन करना ही आज्ञा मानना है। यह सोचकर कुलीना ने तलवार हरदोल को दे दी।

गयेरा होते ही यह खबर फैल गयी कि राजा हरदोल कादिरसाँ में लड़ने के लिए जा रहे हैं। इनका सुनते ही लोगों में सनसनी-गी फैल गयी और चीख उठे। पागलों की तरह जोग अथाड़े की ओर दौड़े। हर एक आदमी कहता था कि जब तक हम जीते हैं, महाराज को लड़ने नहीं देगे; पर जोग अथाड़े के पांव पड़ेंगे तो देखा कि अथाड़े ने विजलियाँ-सी धमक र-

हैं। जुदेयो के दिलों पर उम समय जैसी धीन रही थी, उसका अनुमान करना कठिन है। उम समय उम लम्बे-बोडे मैदान में जहाँ तक निगाह जाती थी, आदमी ही आदमी मजूर आने थे, पर चारों तरफ सघना था। हर एक आँख अखाड़े की तरफ लगी हुई थी और हर एक का दिल हरदोल को मगन-कामना के लिए ईन्वर का प्रार्थी था। कादिरलौ का एक-एक बार हजारों दिलों के दुकड़े कर देता था और हरदोल की एक-एक काट में मनो में आनंद की लहरे उठती थी। अखाड़े में दो पहलवानों का सामना था और अखाड़े के बाहर आशा और निराशा का। आबिर पडियान ने पहला पहर बजाया और हरदोल की तलवार बिजली बन कर कादिर के मिर पर गिरी। यह देखते ही बुंदेलों मारे आनंद के उन्मत्त हो गये। किन्नी की किन्नी की मुधि न रही। कोई किन्नी में गले मिलाता, कोई उछलता और कोई छलनों मारता था। हजारों आदमियों पर बीरता का नशा छा गया। तलवारे स्वयं ध्यान से निकल पड़ीं, भाले चमकने लगे। जोत को लुशी में सँकड़ो जानें भेंट हो गयीं। पर जब हरदोल अखाड़े से बाहर आये और उन्होंने बुंदेलों की ओर तेज निगाहों से देखा तो आन-बी-आन में लोंग सँभल गये। तलवारें ध्यान में जा छिपी। पयाल आ गया। यह लुगी बयो, यह उमग बयो और यह पागलपन किसलिए? बुंदेलों के लिए यह कोई नयी बात नहीं हुई। इस विचार ने लोगों का दिल ठंडा कर दिया। हरदोल की इन बीरता ने उमे हर एक बुंदेले के दिल में मान प्रतिष्ठा की ऊँची जगह पर बिठाया, जहाँ ध्याय और उदारता भी उसे न पहुँचा सकती थी। वह पहले ही से सर्वप्रिय था और अब वह अपनी जाति का पीरवर और बुंदेला दिलावरी का मिरपौर बन गया।

३

राजा जगमोहि ने भी दक्षिण में अपनी योग्यता का परिचय दिया। बं केवल लड़ाई में ही बीर न थे, बल्कि राज्य-शासन में भी अद्वितीय थे। उन्होंने अपने मुग्रवय से दक्षिण प्रांतों को बलवान् राज्य बना दिया और वप-भर के बाद बादशाह से आज्ञा ले कर वे ओरछे की तरफ चले। ओरछे की माद उन्हें मदैव बेचैन करती रही। आह ओरछा! वह दिन जब आयेगा कि फिर तेरे दर्शन होंगे! राजा मजिल्ले मारते चडे आते थे, न-मूख थी, न ध्यात,

ओरछेनालो की मुहब्बत सीधे लिये जानी थी। यहाँ तक कि ओरछे के अगलों में आ पहुँचे। साथ के आदमी पीछे छूट गये। दोपहर का गमब था। धूप तेज थी। ये घोड़े में उतरे और एक पेड़ की छाँह में जा बैठे। भाग्यवत आग हरदील भी जीत की खुशी में निकार खेलने निकले थे। सैकड़ों दुंदुआ मरदार उनके साथ थे। सब अभिमान के नशे में चूर थे। उन्होंने राजा जुझारसिंह को अकेले बैठे देखा, पर वे अपने घमड़ में इतने डूबे हुए थे कि उनके पास तक न आये। समझा कोई यात्री होगा। हरदील को आँखों में भी धोखा म्माया। वे घोड़े पर मवार अकड़ते हुए जुझारसिंह के सामने आये और पृथना चाहते थे कि तुम कौन हो कि भाई में आँख भिन्न गयी। पहचानते ही घोड़े में खूद पड़े और उनको प्रणाम किया। राजा ने भी उठ कर हरदील की छाती में लगा लिया, पर उस छाती में भाई की मुहब्बत न थी। मुहब्बत की जगह ईर्ष्या ने घेर ली थी और वह केवल इसलिए कि हरदील दूर से वंगे पर उनकी तरफ न बीड़ा, उनके गवारों ने दूर ही से उनकी सम्पत्ति न की। संघा होते-होते दोनों भाई ओरछे पहुँचे। राजा के लौटने का समाचार पाते ही नगर में प्रसन्नता की दुंदुभी बजने लगी। हर जगह आनंदोत्सव होने लगा और सुरता-फुरती शहर जगमगा उठा।

आज रानी कुलीना ने अपने हाथी भोजन बनाया। गी घरे होंगे। लौड़ी ने आ कर कहा—महाराज, भोजन तैयार है। दोनो भाई भोजन करने गये। सोने के थाल में राजा के लिए भोजन परोसा गया और चाँदी के थाल में हरदील के लिए। कुलीना ने स्वयं भोजन बनाया था, स्वयं थाल परोसे थे और स्वयं ही गामने लापी थी, पर दोनों का चक्र कहो, या भाग्य के दुस्तिन, उसने भूल से सोने का थाल हरदील के आगे रख दिया और चाँदी का राजा के सामने। हरदील ने कुछ ध्यान न दिया, वह वर्ष भर से सोने के थाल में खाने-पाने उनका आदी हो गया था, पर जुझारसिंह तलमला बये। जवान में कुछ न बोले, पर तीवर बदल गये और मुँह लाल हो गया। रानी की तरफ घूम कर देखा और भोजन करने लगे। पर घास निप मालूम होना था। दो-चार ग्राम खा कर उठ आये। रानी उनके तीवर देख कर डर गयी। आज कितने प्रेम से उसने भोजन बनाया था, कितनी प्रतीक्षा के बाद यह शुभ दिन आया था, उसके उल्लास का

कोई पारावार न था, पर राजा के तोवर देख कर उसके प्राण सूख गये । जब राजा उठ गये और उगने खाल को देखा, तो कलेजा धक् से हो गया और पैरो तले से मिट्टी निकल गयी । उसने मिर पीट लिया—ईश्वर ! आज रात कुशलतापूर्वक बटे, मुझे मनुन अच्छे दिवायो नही देने ।

राजा शुभारम्भ होने सह्य में लेटे । चतुर नाइन ने रानी का शृंगार किया और वह मुस्करा कर खोली—कल महाराज से इम्का इनाम लूँगी । यह कह कर वह चली गयी, परन्तु कुन्दीना वहाँ में न उठी । वह महरे गोंच में पड़ी हुई थी । उनके सामने बोन-भा मुँह से कर जाऊँ ? नाइन ने नाटक मेरा शृंगार कर दिया । मेरा शृंगार देख कर वे खुश भी होवे ? मुझे इस समय अपराध हुआ है, मैं अपराधिनी हूँ, मेरा उनके पान द्रव्य समर धनाक-शृंगार करके जाना उचित नहीं । नहीं, नहीं, आज मुझे उनके पान भित्तिारिनी के भेष में जाना चाहिए । मैं उनमें क्षमा माँगूँगी । इस समय मेरे लिए यही उचित है । यह सोच कर रानी बटे दीर्घ के सामने पड़ी हो गयी । वह अप्पर-नी मादूम होती थी । मुंदरना की 'नितर्ता ही तमवीरें' उमने देखो थी, पर उसे इस समय दीर्घ की तमवीर मधमे जगारा लूबमूरत मागूम होती थी ।

मुंदरना और आगमरणि का साथ है । हल्दी बिना रंग के नहीं रह सकती । थोड़ी देर के लिए कुन्दीना मुंदरना के मद्र में फूट पड़े । वह तन कर लड़ी हो गयी । लोग बटने हैं कि मुंदरना में जाहू है और वह पाहू, जिगका कोई उतार नहीं । धर्म और कर्म, मन और मन जब मुंदरना पर स्वीछात्र है । मैं मुंदरन नहीं, ऐनी बुझपा भी नहीं हूँ । क्या मेरी मुंदरना में इतनी भी शक्ति नहीं कि महाराज से मेरा अपराध क्षमा करा सके ? ये क्षात्र-लगाएँ जिस समय उनके गर्द का हार होगी, ये आँखें जिस समय प्रेम के मद्र में लाल हो कर देखती, सब क्या मेरे सौंदर्य की शोचलता उनकी प्रोधाभि को टडा न कर देगी ? पर थोड़ी देर में रानी की जान हुआ । आह ! वह मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ ! मेरे मन में ऐसी बातें क्यों आती हैं ! मैं अच्छी हुआ बुरी हूँ, उनकी चेरी हूँ । मुझे अपराध हुआ है, मुझे उनमें क्षमा माँगनी चाहिए । यह शृंगार और दयाव इस समय उपयुक्त नहीं है । यह सोच कर रानी ने मद्र गहने उतार दिये । दूर में यकी छुटे रंगों की मादी जलज कर दी । मोतियों में भरी माँग



खोल दी और वह खूब फूट-फूट कर रोगी। हाय ! यह मिलाप की रात वियोग की रात में भी वियोग दुःखदायिनी है। भिमारिनी का भेष बना कर रानी शीश-महल की ओर चली। पैर आगे बढ़ते थे, पर मन पीछे हटा जाता था। दरवाजे तक आयी, पर भीतर पैर न रख सकी। दिल घड़वने लगा। ऐसा जान पड़ा मानो उमके पैर धर्रा रहे हैं। राजा जुझारसिंह बोले "कोन है ?—कुलीना ! नीतर क्यों नहीं आ जानी ?"

कुलीना ने जो रुझ करके कहा—महाराज, कैसे आऊँ ? मैं अपनी जगह क्रीष को बैठा पाती हूँ।

राजा—यह क्यों नहीं कहती कि मन दोषी है, इसलिए आखें नहीं मिलने देता ?

कुलीना—निस्संदेह मुझसे अपराध हुआ है, पर एक अबला आप से क्षमा का दान माँगती है।

राजा—इनका प्रायश्चित्त करना होगा।

कुलीना—क्योंकर ?

राजा—हरदोल के खून से।

कुलीना सिर ने पैर तक काँप गयी। बोली—क्या इसलिए कि आज मेरी भूल में ज्योनार के घालो में उलट-फेर हो गया ?

राजा—नहीं, इसलिए कि तुम्हारे प्रेम में हरदोल में उलट-फेर कर दिया !

जैसे आग की आँच में लोहा लाल हो जाता है, वैसे ही रानी का मुँह लाल हो गया। क्रीष की अग्नि मत्नावी की भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और श्याम सब जल के राख हो जाते हैं। एक मिनट तक रानी की ऐसा मालूम हुआ, मानो दिल और दिमाग दोनों खोखले रहे हैं, पर उसके आत्मदमन की अंतिम चेष्टा से अपने को संभाला, केवल इतना बोली—हरदोल को अपना लड़का और भाई समझती हूँ।

राजा उठ बैठे और कुछ नर्म स्वर में बोले—नहीं, हरदोल लड़का नहीं है, लड़का मैं हूँ, जिमने तुम्हारे ऊपर विश्वास किया। कुलीना, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मुझे तुम्हारे ऊपर धमक था। मैं समझता था, चाँद-मूर्य टल सकते हैं, पर तुम्हारा दिल नहीं टल सकता, पर आज मुझे मालूम हुआ कि

वह मेरा लटकपन था। बड़ो ने सब कहा है कि स्त्री का प्रेम पानों को धार है, जिम ओर ढाल पाता है उधर ही वह जाता है। सोना ज्यादा गर्म हो कर पिघल जाता है।

कुलीना रोने लगी। झोप को आम पानी बन कर आँखों में निकल पड़ी। जब आवाज बग में हुई, तो बोली—मेरे आपके इस मदेह को कैसे दूर करें ?

राजा—हरदोल के खून से।

रानी—मेरे खून से दाग न मिटेगा ?

राजा—तुम्हारे खून से और पक्का हो जायगा।

रानी—और कोई उपाय नहीं है ?

राजा—नहीं।

रानी—यह आपका अंतिम विचार है ?

राजा—हाँ, यह मेरा अंतिम विचार है। देवो, इस पानदान में पान का बीड़ा रखा है। तुम्हारे मनीत्व की परीक्षा यही है कि तुम हरदोल को इसे अपने हाथों खिला दो। मेरे मन का भ्रम अभी समय निकलेगा जब इस घर में हरदोल की लाश निकलेगी।

रानी ने घृणा की दृष्टि में पान के बीड़े का देना और वह डलते पर मोट आयी।

रानी सोचने लगी—क्या हरदोल के प्राण लूँ ? निर्दोष सच्चरित्र और हरदोल की जान में अपने मनीत्व की परीक्षा दूँ ? उस हरदोल के खून से अपना हाथ बाला करूँ जो मुझे बहन समझता है ? यह पाप किमके निर पड़ेगा ? क्या एक निर्दोष का खून रंग न लायेगा ? आह ! अभागी कुलीना ! तुझे आज अपने मनीत्व की परीक्षा देने की अवसरकता पड़ी है और वह ऐसी कठिन ? नहीं, मर पाप मुझसे न होगा। यदि राजा मुझे कुलटा समझने है, तो समझें, उन्हें मुझ पर संदेह है, तो हो। मुझसे यह पाप न होगा। राजा को ऐसा मदेह क्यों हुआ ? क्या केवल बान्दों के बदल जाने से ? नहीं, अवश्य कोई और बात है। आज हरदोल उन्हें जगल में मिल गया था। राजा ने उसको कमर में तुलवार देती होयी। क्या आश्चर्य है, हरदोल में कोई अपमान भी हो गया हो। मेरा अपराध क्या है ? मुझ पर इतना बड़ा दोष क्यों लगाया जाता है ?

केवल थालों के बदल जाने से ? हे ईश्वर ! मैं किससे अपना दुःख कहूँ ? तू ही मेरा साक्षी है । जो चाहे सो हो, पर मुझसे यह पाप न होगा ।

रानी ने फिर सोचा—राजा, क्या तुम्हारा हृदय ऐसा ओछा और मोब है ? तुम मुझसे हरदोल की जान लेने को कहते हो ? यदि तुममें उसका अधिकार और मान नहीं देखा जाता, तो क्यों साफ-साफ ऐसा नहीं कहते ? क्यों मरसों की लड़ाई नहीं लड़ते ? क्यों स्वयं अपने हाथ से उसका सिर नहीं काटते और मुझसे यह काम करने को कहते हो ? तुम खूब जानते हो, मैं नहीं कर सकती । यदि मुझसे तुम्हारा जो उकता गया है, यदि मैं तुम्हारे ज्ञान की जंजाल हो गयी हूँ, तो मुझे काशी या मथुरा भेज दो । मैं वेपटके चली जाऊँगी; पर ईश्वर के लिए मेरे सिर इतना बड़ा कलक न लगने दो । पर मैं जीविन हो क्यों रहूँ, मेरे लिए अब जीवन में कोई सुख नहीं है । अब मेरा मरना ही अच्छा है । मैं स्वयं प्राण दे दूँगी, पर यह महापाप मुझसे न होगा । विचारो ने फिर पलट्टा मारा । तुमको पाप करना ही होगा । इससे बड़ा पाप शायद आज तक समार में न हुआ हो, पर यह पाप तुमको करना होगा । तुम्हारे पतिव्रत पर संदेह किया जा रहा है और तुम्हें इस संदेह को मिटाना होगा । यदि तुम्हारी जान जोविन में होती, तो कुछ हर्ज न था, अपनी जान देकर हरदोल की बचा लेती; पर इस समय तुम्हारे पतिव्रत पर आँच आ रही है । इसलिए तुम्हें यह पान करना ही होगा, और पाप करने के बाद हँसना और प्रमत्त रहना होगा । यदि तुम्हारा चित्त तनिक भी विचलित हुआ, यदि तुम्हारा मुग्ध जरा भी मद्धिम हुआ, तो इतना बड़ा पाप करने पर भी तुम संदेह मिटाने में सफल न होगी । तुम्हारे जी पर चाहे जो बीने, पर तुम्हें यह पाप करना ही पड़ेगा । परतु कैसे होगा ? क्या मैं हरदोल का मिर उतारूँगी ? यह मोब कर रानी के शरीर में केंकड़ों आ गयीं । नहीं, मेरा हाथ उम पर कभी नहीं उठ सकता । प्यारे हरदोल, मैं तुम्हें नहीं मिला सकती । मैं जानती हूँ, तुम मेरे लिए आनंद से त्रिप का बीरा खा छोगे । हाँ, मैं जानती हूँ तुम 'नहीं' न करोगे, पर मुझसे यह महापाप नहीं हो सकता । एक बार नहीं, हजार बार नहीं हो सकता ।

४

हरदोल को उन घानों की कुछ भी खबर न थी। आधी रात को एक दानी रोनी हुई उसके पास गयी और उसने सब समाचार अश्रु-अश्रु कह सुनाया। वह दानी पान-पान ले कर रानी के पीछे-पीछे राजमहल में अगल-अगल गयी थी और सब बातें सुन कर आती थी। हरदोल राजा का हठ देन कर पड़ल हो नाह गया था कि राजा के मन में कोई-न कोई बांटा अकल गटब था ही। दानी की बातों ने उसके मस्तिष्क को और भी पक्का कर दिया। उसने दानी से कड़ी माफ़ी कर दी कि गारुधान। तिमो दूसरे के कानों में इन बातों की प्रतिक्रिया पड़े और वह स्वयं मरने को तैयार हो गया।

हरदोल बुढ़ेलो को बीरवा का सूरज था। उसकी भीड़ों के तनिक दुगारे में तीन लाख बुढ़ेले मरने और मारने के लिए दृष्टि हो गइने में, औरछा उस पर खोलाकर था। यदि अज्ञाननिष्ठ गुले धैर्य उनका सामना करने लो अथवा मुँह की लाने, क्योंकि हरदोल भी बुढ़ेलो था और बुढ़ेले अपने शत्रु के साथ किसी प्रकार को संतुष्टि नहीं करने, मरना-मारना उनके जीवन का एक अच्छा दिलबहाला है। उन्हें सदा इसकी गान्ध्या रही है कि कोई हमें चुनौती दे, कोई हमें छेड़े। उन्हें सदा सुन की व्याम रूनी है और वह व्याम कभी नहीं बुझती। परन्तु उस समय एक स्त्री का उनके सुन की अकल थी और उसका माहम उनके कानों में बहता था कि एक निर्दोष और मर्ती अदला के लिए अपने शरीर का गून देने में मुँह न मोरो। यदि भैया को यह मदेह होता कि मैं उनके सुन का व्यामा हूँ और उन्हें मार कर राज पर अधिकार करना चाहता हूँ, तो कुछ हर्ज न था। राज्य के लिए बल और गून, दगा और करेव सब उचित समझा गया है, परन्तु उनके इस मदेह का निपटारा मेरे मरने के निवा और किसी तरह नहीं हो सकता। इस समय मेरा धर्म है कि अपना प्राण दे कर उनके इस मदेह को दूर कर दूँ। उनके मन में यह दुखानेवाला मदेह उत्पन्न करके भी यदि मैं जीता ही रहूँ और अपने मन की पवित्रता जगाऊँ, तो मेरी डिठाई है। नहीं, इस मते काम में अधिक आगा-पीछा करना अच्छा नहीं। मैं सुनी ने विष का दीया लाऊँगा। इसमें बड़ कर दूरबीर को मृत्यु और बड़ा हो सक्ती है ?

क्रोध में आकर मारू के नय लड़ानेवाले शब्द सुन कर रणक्षेत्र में अपनी जान को कुछ गमनाना ज्ञाना कठिन नहीं है। आज मर्णा वीर हरदोल अपने हृदय के वड्डपन पर अपनी मारी धीरता और साहम न्योछावर करने को उद्यत है।

दूसरे दिन हरदोल ने खूब लटके स्नान किया। बदन पर अस्त्र-शस्त्र सजा मुस्कराता हुआ राजा के पास गया। राजा भी सोकर तुरत ही उठे थे, उनकी अलसायी हुई आंखें हरदोल की मूर्ति की ओर लगी हुई थीं। सामने संगमरमर की बीकी पर विष मिला पान मोने की तस्ती में रखा हुआ था। राजा कभी पान को और ताकते ओर कभी मूर्ति की ओर, शायद उनके विचार ने इस विष की गोंठ और उम मूर्ति में एक सम्बन्ध पैदा कर दिया था। उम समय तो हरदोल एकाएक पर में पहुँचे तो राजा चौंक पड़े। उन्होंने सँभल कर पूछा, “इस समय कहाँ चले?”

हरदोल का मुखड़ा प्रकुलित था। यह हँस कर बोला, “कल आप यहाँ पधारे हैं, इसी खुशी में मैं आज तिकार खेलने जाता हूँ। आपको ईश्वर ने अजित बनाया है, मुझे अपने हाथ में विजय का बीड़ा बीजिए।”

यह कह कर हरदोल ने बीकी पर में पान-शाल उठा लिया और उम राजा के सामने रख कर बीड़ा लेने के लिए हाथ बढ़ाया। हरदोल का तिला हुआ मुखड़ा देख कर राजा की ईर्ष्या की आग और भी भड़क उठी।—बुढ़, मेरे पाव पर तमक छिड़कने आया है! मेरे मान और विश्वास को मिट्टी में मिगाने पर भी तेरा जो न भरा! मुझमें विजय का बीड़ा माँगता है! हाँ, यह विजय का बीड़ा है; पर तेरी विजय का नहीं, मेरी विजय का।

इतना मत में कह कर पुष्पार्णिह ने बीड़े को हाथ में उठाया। वे एक क्षण सड़ कुछ मोचने रहे, फिर मुस्कराकर हरदोल को बीड़ा दे दिया। हरदोल ने गिर झुका कर बीड़ा लिया, उम भाषे पर चढ़ाया, एक बार बड़ी ही करपा के साथ चारों ओर देखा और फिर बीड़े को मुँह में रख लिया। एक मन्चे राजपूत ने अपना पुरपत्त दिवा दिया। विष हलाहल था, कठ के नीचे उतरते ही हरदोल के मुतड़े पर मुर्दनी छा गयी और आँखें बूझ गयी। उमने एक रेंगी सोस ली, दोनों हाथ जोड़ कर पुष्पार्णिह को प्रणाम किया और अमोन

पर बँठ गया । उसके सलाट पर पमीने की ठडी-ठडी बूँदे दिखायी दे रही थी और मांस तेजी से चलने लगी थी; पर चेहरे पर प्रसन्नता और सतोष की झलक दिखायी देती थी ।

जुझारमिह अपनी जगह से जरा भी न हिले । उनके चेहरे पर ईर्ष्या में भरी हुई मुस्कराहट छापी हुई थी, पर आँखों में आँसू भर आये । उज्जले और अँरे के मिलान हो गया था ।

---

## त्यागो का प्रेम

**ल**ाला गोपीनाथ को युवावस्था में ही दर्शन में प्रेम हो गया था। अभी वह इंटर्मीडियट क्लास में थे कि मिल और बर्कले के वैज्ञानिक विचार उनके कंठस्थ हो गये थे। उन्हें किसी प्रकार के किनोड-प्रमोड से रूचि न थी। यहाँ तक कि कालेज के क्रिकेट-मैचों में भी उनको उत्साह न होता था। हास-परिहाम से कोमों भागते और उनमें प्रेम की खर्चा करना तो मानो बच्चे को जूजू में डराना था। मान काग पर से निकल जाते और शहर से बाहर किसी मधन बुद्ध की छाँह में बैठ कर दर्शन का अध्ययन करने में निरत हो जाते। वाग्य, अलंकार, उपमायाम सभी को त्याग्य समझते। प्रायः ही अपने जीवन में उन्होंने कोई किस्म-कहानी की जिज्ञास नहीं की। इसे बेखल समय का दुष्टयोग ही नहीं, बरन् मन और बुद्धि-विकास के लिए घातक खयाल करते थे। इसके साथ ही वह उत्साहहीन न थे। सेवासमितियों में बड़े उत्साह से भाग लेते। स्वसेवासमितियों की सेवा के किसी अवसर को हाथ से न जाने देते। बहुधा मुहल्ले के छोटे-मोटे दूकानदारों की दूकान पर जा बैठते और उनके पाटे-टोटे मरे-नेरे की रामकहानी सुनते।

शानैः-शानैः कालेज से उन्हें घृणा हो गयी। उन्हें अब अगर किसी विषय में प्रेम था, तो वह दर्शन था। कालेज की बहुविधक शिक्षा उनके दर्शनानुराग में बाधक होती। अतएव उन्होंने कालेज छोड़ दिया और गृहस्थचित्त हो कर विज्ञानोपासना करने लगे। किन्तु दर्शनानुराग के साथ ही साथ उनका देशानुराग भी बढ़ता गया और कालेज छोड़ने के थोड़े ही दिनों पश्चात् वह अनिवार्यतः जातिमेवकों के दल में सम्मिलित हो गये। दर्शन में अम था, अविश्वास था, अधिकार था, जातिमेवकों में सम्मान था, यश था और दीनों की मरिच्छाएँ थीं। उनका यह मदनुराग जो वरमों से वैज्ञानिक वादों के नीचे दबा हुआ था, वायु के प्रचंड वेग के साथ निकल पड़ा। नगर के सार्वजनिक क्षेत्र में कूद पड़े। देसा तो मैदान साली था। जिधर आँख उठाते, मछाटा दिखायी देता।

स्वशाचारियों की कमी न थी पर मन्त्रे हृदय वहीं नजर न आते थे । चारों ओर में उनकी शीघ्र होने लगी । किसी मन्त्रा के मंत्री बने, किसी के प्रयास, किसी के कुष्ठ, किसी के कुष्ठ । इसके आवेग में दर्शनानुराग भी बिदा हुआ । पित्रे में मानेवाली चिट्ठा विस्तृत पर्वतगणियों में आकर अपना राग भूल गयी । अब भी वह समस्त निराड कर दर्शनार्थी के पन्ने ठलठलट्ट किया जाने से, पर बिचार और अनुगोहन का अवधान नहीं । निम्न मन में द्रव्य मय होना रहता कि कियर आज्ञे ? उधर या इधर ? विज्ञान अपनी ओर लीकता, देश अपनी ओर लीकता ।

एक दिन वह इसी उलझन में नदी के तट पर बैठे हुए थे । जलदारा तट के दृष्टियों और वायु के प्रतिबन्ध छोड़ने की परवा न करते हुए बड़े वेग से भाव करने लक्ष्य की ओर बढ़ी बनी जानी थी, पर नाला गोरीनाथ का ध्यान इस तरफ न था । वह अपने स्मृतिधरार से किसी ऐसे तत्त्वज्ञानी पुष्प को शीघ्र निष्कालना चाहते थे, जिसने जानि-मेवा के साथ विज्ञान-आवर में मोते लगाये हों । सहसा उनके कानों के एक अध्यात्मक पंडित अमरनाथ अग्निहोत्री भा कर समीप बैठ गये और बोले—कहिए काला गोरीनाथ, क्या सबरें हैं ?

गोरीनाथ ने अग्रमनस्क हो कर उत्तर दिया—कोई नयी बात तो नहीं हुई । पृथ्वी अपनी गति में चली जा रही है ।

अमरनाथ—सुनिमित्त—कोई नम्बर २१ की जगह सार्थी है, उसके लिए बिने चुनना निश्चिन किया है ?

गोरी—देखिए, कौन होता है । आप भी लड़े हुए है ?

अनर—ब्रह्मी मुझे तो श्रेणी ने अवस्थिति घनीट दिया । नहीं तो मुझे इनती फुलन नहीं ?

गोरी—मेरा भी यही विचार है । अध्यात्मों का क्रियात्मक राजनीति में घेनता बहुत अच्छी बात नहीं ।

अमरनाथ इस व्यवस्था से बहुत लज्जित हुए । एक क्षण के बाद प्रतिकार के भाव से बोले—तुम आजकल दर्शन का अध्ययन करते हो या नहीं ?

गोपी—बहुत कम । इसी दुविधा में पड़ा हुआ हूँ कि राष्ट्रीय सेवा का मार्ग ग्रहण करें या मत्स्य की शीघ्र में जीवन व्यतीत करें ?



अमर—राष्ट्रीय संस्थाओं में सम्मिलित होने का समय अभी मुन्हारे लिए नहीं आया। अभी मुन्हारी उम्र हीं क्या है? जब तक बिनारो में गाभीयें और गिड़ानों पर दृढ़ बिस्वास न हो जाय, उस समय तक केवल शानिक आवेसों के मनवर्ती हो कर बिगो काम में कूद पटना अच्छी बात नहीं। राष्ट्रीय सेवा में उत्तरदायित्व का काम है।

२

गोपीनाथ ने निश्चय कर लिया कि मैं जाति-सेवा में जीवन-भर करूँगा। अमरनाथ ने भी यही फैसला किया कि मैं म्युनिगिपैलिटी में अग्रसर जाऊँगा। दोनों का परस्पर विरोध उन्हें कर्म-रोंग का और खींच ले गया। गोपीनाथ को साथ पहले ही से जम गयी थी। घर के सभी थे। मक्कर और सोने-चाँदी की दलाली होती थी। व्यापारियों में उनके पिता का बड़ा मान था। गोपीनाथ के दो बड़े भाई थे। वह भी दलाली करते थे। परस्पर मेल था, पग था, पताने की। अगर न थी तो सिखा और शिक्षित मनुष्य में गणना। वह बात गोपीनाथ की पदीलग प्राप्त हो गयी। इंग्लिश उनकी स्वच्छता पर किसी ने आपत्ति नहीं की, किसी ने उन्हें मनोपार्जन के लिए मजदूर नहीं किया। इनएच गोपीनाथ निर्दिष्ट और निर्द्वेष हो कर राष्ट्रसेवा में कहीं किसी अनायास के लिए चंदे जमा करते, कहीं किसी कन्या-गाठमाफा के लिए भिक्षा माँगते फिरते। अगर वो काँग्रेस कमेटी ने उन्हें अपना यही नियुक्त किया। उस समय तक काँग्रेस ने वर्मसेक्टर में पदार्पण नहीं किया था। उनकी कार्य-शीलता ने इस जीर्णमंथना का मानो पुनरुद्धार कर दिया। वह प्रातः से मध्याह्न और बहुधा पहर रात तक इन्हीं कामों में मग्न रहते थे। चंदे का रजिस्टर हाथ में लिपे उन्हें नित्यप्रति साँझ-सबरे अमीरों और रईमों के द्वार पर खड़े दिखना एक साधारण दृश्य था। घीरे-धीरे कितने ही युवक उनके भवा हो गये। लोग कहते, कितना निस्वार्थ, कितना आदर्शवादी, रूपांगी, जाति-सेवक है। कौन मुद्रह से शाम तक निस्वार्थ भाव से केवल जनता का उपकार करने के लिए यो दौड़-बूप करेगा? उनका आत्मोत्सर्ग प्रायः डेपियों को भी अनुरक्त कर देता था। उन्हें बहुधा रईमों की अमरता, अमरत्वता, यही तक कि उनके कटु शब्द भी महने पड़ते थे। उन्हें अब विदित होता जाता था कि

जातिमेवा बड़े अज्ञो तक केवल चंदे मांगता है। इसके लिए, धनिकों की दर्वारदारी या दूसरे गच्छों में सुशामद भी करनी पड़नी थी, दर्शन के उम गोरवयुक्त अदृश्य और इस धानजालुसता में बिना अतर था ! वहाँ मिल और कैंट, स्पेन्सर और किट के साथ एकान्त में बैठे हुए जीव और प्रकृति के गहन गूढ़ प्रिय पर वानप्रस्थ और कहाँ इन अभिमानी, अगम्य, मूर्ख व्यापारियों के सामने मिर झुकना। यह अनं करण में उनमें घुणा करने थे। वह धनी थे और केवल धन कमाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उनमें और कोई विशेष गुण न था। उनमें अधिवास ऐसे थे जिन्होंने बपट-व्यापार में धनोपार्जन किया था। पर गोपीनाथ के लिए वह सभी पूज्य थे, क्योंकि उन्हीं की कृपादृष्टि पर उनकी राष्ट्रमेवा अवलम्बित थी।

इन प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये। गोपीनाथ नगर के मान्य पुरानों में गिने जाने लगे। वह दीनजनों के आधार और दुसियारों के मददगार थे। अब वह बहुत कुछ निर्भीक हो गये थे और कभी-कभी रईमों को भी कुमार्ग पर चलने देख कर फटकार दिया करते थे। उनकी तीव्र आलोचना भी अब बंदे जमा करने में उनकी सहायक हो जाती थी।

अभी तक उनका विवाह न हुआ था। वह पहले ही से ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर चुके थे। विवाह करने में माऊ इन्कार किया। मगर जब पिता और अन्य बंधुजनों ने बहुत आग्रह किया, और उन्होंने स्वयं कई विज्ञान-ग्रंथों में देखा कि इन्द्रिय-दमन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, तो अवयव में पड़े। कई हप्ते सोचने लगे और वह मन में कोई बात पक्की न कर सके। स्वार्थ और परमार्थ में संघर्ष हो रहा था। विवाह का अर्थ था अपनी उदारता की हत्या करना, अपने विस्तृत हृदय को संकुचित करना, न कि राष्ट्र के लिए जीना। वह अब इतने ऊँचे आदर्श का त्याग करना, निच और उपहास्यजनक ममझते थे। इसके अतिरिक्त अब वह अनेक कारणों से अपने को पारिवारिक जीवन के अयोग्य पाने थे। जीविका के लिए जिस उपयोगशीलता, जिस अनवरत परिश्रम और जिस मनोवृत्ति की आवश्यकता है, वह उनमें न रही थी। जातिमेवा में भी उपयोगशीलता और अध्यवसाय की कम जरूरत न थी, लेकिन उममें आत्मगौरव का हनन न होता था। परोपकार के लिए भिक्षा मांगना दान है,

अपने लिए पान का एक बोझ भी बिछा है। स्वभाव में एक प्रकार की स्वच्छंदता था गयी थी। इन त्रुटियों पर परदा डालने के लिए जातिमेवा का वहाना बहुत अच्छा था।

एक दिन वह गैर करने जा रहे थे कि रास्ते में अच्युतक अमरनाथ से मुलाकात हो गयी। यह महाशय अब म्युनिमिषल बोर्ड के मंत्री हो गये थे और आज-कल इन दुविधा में पड़े हुए थे कि शहर में मादक वस्तुओं के बेचने का ठीका लें या न लें। लाभ बहुत था, पर बदनामी भी कम न थी। अभी एक कुछ निश्चय न कर सके थे। इन्हें देख कर बोले—कहिए लाला जी, मिजाज अच्छा है न! आपके विवाह के विषय में क्या हुआ?

गोपीनाथ ने दुःखता से कहा—मेरा इरादा विवाह करने का नहीं है।

अमरनाथ—ऐसी भूल न करना। तुम अभी नवयुवक हो, तुम्हें समार का कुछ अनुभव नहीं है। मैंने ऐसी कितनी मिमाले देखी हैं, वहाँ अविवाहित रहने से लाभ के बदले हानि हो चुकी है। विवाह मनुष्य को सुमार्ग पर रखने का सबसे उत्तम साधन है, जिसे अब तक मनुष्य ने आविष्कृत किया है। इन बातों से क्या फायदा जिसका परिणाम छिछोरापन हो।

गोपीनाथ ने प्रत्युत्तर दिया—आपने मादक वस्तुओं के ठीके के विषय में क्या निश्चय किया?

अमर—अभी तक कुछ नहीं। जी हिचकता है। कुछ न कुछ बदनामी तो होगी ही।

गोपी—एक अच्युतक के लिए मैं इन पेरों को अपमान समझता हूँ।

अमर—कोई पैसा सराय नहीं है, अगर ईमानदारी से किया जाए।

गोपी—यहाँ मेरा आपसे भयभेद है। बिजने ऐसी व्यवसाय है—जिसे एक भुविहित व्यक्ति कभी स्वीकार नहीं कर सकता। मादक वस्तुओं का ठीका उनमें एक है।

गोपीनाथ ने आ कर अपने पिता से कहा—मैं, कदापि विवाह न करूँगा। आप लोग मुझे विवश न करें, वरना पछताइएगा।

अमरनाथ ने उसी दिन ठीके के लिए प्रार्थनापत्र भेज दिया और वह स्वीकृत भी हो गया।

दो गाल हो गये हैं। लाना गोपीनाथ ने एक बन्धा-पाठशाला खोली है और उमके प्रबन्धक हैं। शिक्षा की विभिन्न पद्धतियों का उन्होंने खूब अध्ययन किया है और इन पाठशाला में वह उनका व्यवहार कर रहे हैं। शहर में यह पाठशाला बहुत ही सर्वप्रिय है। इनके बहुत अंगों में उस उद्यमीनता का परिणाम कर दिखा है जो माना-पिना को पुत्रियों की शिक्षा की ओर होती है। शहर के समाज-पुरुष अपने-अपने पक्षों को सहज पक्ष में रखते हैं। यही की शिक्षाशैली कुछ ऐसी मनोरञ्जक है कि बालिकाएँ एक बार जा कर मानी मगमग हो जाती हैं। फिर उन्हें घर पर चैन नहीं मिलता। ऐसी बन्धन की गयी है कि तीन-चार वर्षों में ही बन्धनों को गुरुद्वी के मुह पर लामो से परिचय हो जाय। सबसे बड़ी बात यह है कि यही धर्मशिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध किया गया है। अबरी माल में प्रबन्धक महोदय ने अंगरेजी को बंधनों भी खोल दी है। एक सुविधित गुजराती महिला को सम्बन्धित बुला कर पाठशाला उनके हाथ में दे दी है। इन महिला का नाम है आनदी बाई। विधवा है। हिंदी भाषा में भली-भाँति परिचित नहीं है, किंतु गुजराती में बड़ी पुस्तकें लिख चुकी है। कई बन्धा-पाठशालाओं में काम कर चुकी है। शिक्षा-सम्बन्धी विषयों में अच्छी गति है। उनके जाने में मद्रास में और भी रौनक आ गयी है। कई प्रतिष्ठित मगमगी ने जो अपनी बालिकाओं को मगुरी और मैनीनाल भेजना चाहते थे, अब उन्हें यही भरती करा दिया है। आनदी बाई के घरों में जाती है और स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करती है। उनके बन्धा-भूषणों में गुरुचि का बोध होता है। है भी उच्चवर्ण की, इसलिए शहर में उनका बड़ा सम्मान होता है। लड़कियाँ उन पर आन देती हैं, उन्हें माँ कह कर पुकारती हैं। गोपीनाथ पाठशाला की उत्पत्ति देख-देख कर फूले नहीं समाने। जिसमें मिलने हैं, आनदी बाई का ही गुणगान करने हैं। बाहर में कोई भविष्यवाणी पुरख आता है, तो उमके पाठशाला का निर्माण अवश्य कराते हैं। आनदी की प्रशंसा से उन्हें बड़ी आनंद प्राप्त होता है, जो स्वयं अपनी प्रशंसा में होता। बाई जी को भी दर्शन में प्रेम है, और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें गोपीनाथ पर असीम श्रद्धा है। वह हृदय में उनका सम्मान करती है। उनके त्याग और

निष्काम जातिभक्ति ने उन्हें बलीभूत कर लिया है। वह भुँह पर तो उनकी बड़ाई नहीं करती; गर रईमों के घरों में बड़े प्रेम से उनका यशोगान करती है। ऐसे सच्चे सेवक आजकल कहाँ? लोग कीर्ति पर जान देते हैं। जो मोड़ी-बहुत सेवा करते हैं, दिखावे के लिए। सच्ची लगन किसी में नहीं। मैं लाला जी को पुरुष नहीं देवता समझती हूँ। कितना गरल, संतोषमय जीवन है। न कोई व्यसन, न पिलास। भोर में सायंकाल तक सोड़ते रहते हैं, न खाने का कोई समय, न सोने का समय। उस पर कोई ऐमा नहीं, जो उनके आराम का ध्यान रखे। विचारे पर गये, जो कुछ किसी ने सामने रख दिया, चुपके से खा लिया, फिर छड़ी उठायी और किसी तरह चल दिये। दूसरी औरत कदापि अपनी पत्नी को भीति सेवा-सात्कार नहीं कर सकती।

दशहरे के दिन थे। कल्या-नाटशाळा में उत्सव मचाने की तैयारी हो रही थी। एक नाटक खेलने का निश्चय किया गया था। भवन खूब सजाया गया था। शहर के रईमों को निमंत्रण दिये गये थे। यह कहना कठिन है कि किसका उत्साह बढ़ा हुआ था, याई जी का या लाला गोपीनाथ का। गोपीनाथ सामग्रियाँ एकत्र कर रहे थे, उन्हें अच्छे ढंग से सजाने का भार आनदी ने लिना था। नाटक भी इन्हीं ने रचा था। नित्य प्रति उत्सव अभ्यास करती थीं और स्वयं एक पार्ट ले रखा था।

विजयादशमी आ गयी। दोपहर तक गोपीनाथ फर्श और कुर्चियों का ईश्वरान करने रहे। जब एक बज गया और अब भी वह वहाँ गे न टूले तो आनदी ने कहा—लाला जी, आपको भोजन करने को देर हो रही है। अब सब काम हो गया है। जो कुछ बन रहा है, गुप्त पर छोड़ दीजिए।

गोपीनाथ ने कहा—सा लूंगा। मैं ठीक समय पर भोजन करने का पारबंद नहीं हूँ। फिर धर तक मौन जाय। घंटो लग जायेंगे। भोजन के उपरांत आराम करने को जी चाहेंगा। शाम हो जायगी।

आनदी—भोजन तो मेरे यहाँ तैयार है, ब्राह्मणों ने बनाया है। चल कर खा लीजिए और यहाँ परा देर आराम भी कर लीजिए।

गोपीनाथ—यहाँ क्या खा लूँ ?! एक वक्त न खाऊँगा, सो ऐसी कौन-सी हानि हो जायगी ?

आनंदी—अब भोजन नैवार है, तो उपवास क्यों कीजिएगा ?

गोपीनाथ—आप जानें, आपको अस्वस्थ देर हो रही है । मैं नाम में ऐसा भूना कि आपकी मुक्ति हो न रही

आनंदी—मैं भी एक जून उपवास कर लूंगी तो क्या हानि होगी ?

गोपीनाथ—नहीं-नहीं, इसकी बजा अक्षरत है ? मैं आपमें गच घटना हूँ, मैं बहुत एक ही जून खाता हूँ ।

आनंदी—अच्छा, मैं आपके इनकार का मानें समझ गयी । इतनी मोटी बात अब यह मुझे न सूती ।

गोपीनाथ—बड़ा समझ गयी ? मैं छुनछान नहीं मानता । पर तो आपको माफ़ूम ही है ।

आनंदी—इतना जानती हूँ, किन्तु जिस कारण से आप मेरे यही भोजन करने से इत्कार कर रहे हैं, उसके विषय में केवल इतना निवेदन है कि भूखें आपने केवल स्वामी और गुरु का सम्बन्ध नहीं है । भूखें आपने आत्मीयता का सम्बन्ध है । आपका मेरे पान-पूज को अस्वीकार करना अपने एक सच्चे भक्त के धर्म को आघात पहुँचाना है । मैं आपको इसी दृष्टि से देखती हूँ ।

गोपीनाथ को अब कोई अपत्ति न हो सकी । जा कर भोजन कर लिया । वह जब तक आसन पर बैठे रहे, आनंदी बैठी पत्ता मचती रही ।

इस घटना की लाला गोपीनाथ के मित्रों ने यो आलोचना की—“महाशय जो अब तो यही ( “बड़ी” पर मुँह जोर दे कर ) भोजन भी करते हैं ।”

४

रुन-रुन परदा हटने लगा । लाला गोपीनाथ को अब परवशता ने साहित्य-मेयी बना दिया था । घर से उन्हें आवश्यक सहायता मिल जाती थी, किन्तु पत्रों और पत्रिकाओं तथा अन्य अनेक कामों के लिए उन्हें घरवालों से कुछ माँगते हुए बहुत संकोच होता था । उनका आत्मसम्मान जरा-जरा सी बातों के लिए भाइयों के सामने हाथ फैलाना अनुचित समझता था । यह अपनी अक्षरों आप पूरी करना चाहते थे । घर पर भाइयों के रुढ़के इतना कोजाहल मचाते कि उनका जी कुछ लिखने में न लगता । इसलिए जब उनकी कुछ

लिखने की इच्छा होती तो बेंचटके पाठशाला में चले जाते । आनंदी बाई भी वही रहती थी । वहाँ न कोई शोर था, न गुल । भूतान में काम करने में जो लगता । भोजन का समय आ जाता तो वही भोजन भी कर लेते । कुछ दिनों के बाद उन्हें बैठ कर लिखने में कुछ अमुविधा होने लगी ( अर्थात् कमजोर हो गयी थीं ) तो आनंदी ने लिखने का भार अपने मिर ले लिया । ताला माहव बोलने से, आनंदी लिखती थी । गोपीनाथ की प्रेरणा से उन्होंने हिंदी सीखी थी और छोटे ही दिनों में अपनी अभ्यस्त हो गयी थी कि लिखने में जरा भी हिचक न होती । लिखते समय कभी-कभी उन्हें ऐसे शब्द और मुहावरे सूझ जाते कि गोपीनाथ फड़क-फड़क उठते, उनके लेंच में जान-सी पड़ जाती । वह कहते, यदि तुम स्वयं कुछ लिखो तो मुझमें बहुत अच्छा लिखोषी । मैं तो बेगारी करता हूँ । तुम्हें परमात्मा की ओर से यह दणित प्रदान हुई है । गगर के लाल-बुझाकड़ों में इन गहकारिता पर टीका-टिप्पणियाँ होने लगीं पर विद्वज्जन अपनी आत्मा को धुपिता के मामले ईर्ष्या के व्याप की ब्य पगवाह करते हैं । आनंदी कहतीं—यह तो संसार है, जिनके मन में जो आये, कहे; पर मैं उस पुण्य का निराशर नहीं कर सकती जिस पर मेरी श्रद्धा है । पर गोपीनाथ इतने निर्भीक न थे । उनकी सुकीर्ति का आधार लोकमत था । वह उसकी भर्त्सना न कर सकते थे । इसलिए वह दिन के बदले रात को रचना करने लगे । पाठशाला में इस समय कोई देखनेवाला न होता था । रात की सीखता में खूब जी लगता । आराग-कुरंगी पर लोट जाते । आनंदी मेज के सामने कानन हाथ में लिये उनकी ओर देखा करतीं । जो कुछ उनके मुख से निकलता तुरंत लिय लेती । उनकी आँखों से विनय और शील, यत्ना और प्रेम की किरण-भी निकलती हुई जान पड़ती । गोपीनाथ जब किसी भाव की मन में व्यक्त करने के बाद आनंदी की ओर ताकते कि वह लिखने के लिए तैयार है या नहीं, तो दोनों व्यक्तियों की गिराहें मिलती और आप ही आप झुक जाती । गोपीनाथ को इस तरह काम करने की ऐसी आश पड़ती जाती थी कि जब-किसी कार्यवश यहाँ आने का अवसर न मिलता तो वह बिकल हो जाते थे ।

आनंदी से मिलने के पहले गोपीनाथ को स्त्रियों का जो कुछ ज्ञान था, यह केवल पुस्तकों पर अवलम्बित था । स्त्रियों के विषय में—प्राचीन और वर्तमान—

प्राज्य और पान्थात्म्य, सभी विद्वानों का एक ही मन था—यह मायावी, आत्मिक उन्नति की बाधक, परमात्म्य की विरोधिनी वृत्तियों की कुमार्ग की ओर ले जानेवाली, हृदय को संकोच बनानेवाली होती है। इन्हीं कारणों से उन्होंने इस मायावी जाति में अलग रहना ही ध्येयस्वरूप समझा था; वितु अब अनुभव बतला रहा था कि स्त्रियाँ सम्मार्पण की ओर भी ले जा सकती हैं। उनमें सद्गुण भी हो सकते हैं। वह कर्तव्य और सेवा के भावों को जागृत भी कर सकती हैं। तब उनके मन में प्रबल उठता कि यदि आनंदी से मेरा विवाह होता तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी। उसके साथ तो मेरा जीवन बड़े आनंद से कट जाता। एक दिन वह आनंदी के यहाँ गये तो मिर में दर्द हो रहा था। कुछ लिखने की इच्छा न हुई। आनंदी को इसका कारण मालूम हुआ तो उसने उनके मिर में धीरे-धीरे तेल मलना शुरू किया। गोपीनाथ को उम समान अलौकिक सुख मिला रहा था। मन में प्रेम की तरंगें उठ रही थीं—नेत्र, मुख, बाणो—सभी प्रेम में पगे जाने थे। उसी दिन उन्होंने आनंदी के यहाँ आना छोड़ दिया। एक सप्ताह बीत गया और न आये। आनंदी ने लिखा—आपसे पाठशाला सम्बन्धी कई विषयों में राय लेनी है। अग्रदूत आइए। तब भी न गये। उसने फिर लिखा—मालूम होता है आप मुझसे नाराज हैं। मैंने जान-बूझ कर तो कोई ऐसा काम नहीं किया, लेकिन यदि वास्तव में आप नाराज हैं तो मैं द्वितीय अध्यात्मिका को धार्त्र दे कर चली जाऊँगी। गोपीनाथ पर इन धमकी का भी कुछ असर न हुआ। अब भी न गये। अग में दो महीने तक निषे रहने के बाद उन्हें आत हुआ कि आनंदी बीमार है और दो दिन से पाठशाला नहीं आ सकी। तब वह किसी तरह या युक्ति से अपने को न रोक सके। पाठशाला में आये और कुछ जितकते, कुछ मकुवाने, आनंदी के कमरे में बराम रखा। देखा तो चुपचाप पड़ी हुई थी। मुख पोला या धरीर धुल गया था। उसने उनके ओर दयापार्थी नेत्रों से देखा। उठना चाहा पर अधनिद्र ने उठने न दिया। गोपीनाथ ने आर्द्र कंठ से कहा—‘लेटी रहो, लेटी रहो, उठने की जरूरत नहीं, मैं बैठ जाता हूँ। डाक्टर साहब आये थे?’

• मिथ्यात्म ने कहा—‘जी हाँ, दो बार आये थे। दवा दे गये हैं।’



गोपीनाथ ने नुमसा देखा। डाक्टरों का साधारण ज्ञान था। नुमसे मे ज्ञान हुआ—हृदयरोग है। औषधियाँ सभी पुष्टिकर और बलवर्द्धक थीं। आनंदी की ओर फिर देखा। उसकी जीवों से अधुंधारा बह रही थी। उनका गन्ध भी भर आया। हृदय मनोमने लगा। मनुष्य हो कर बोले—आनंदी, तुमने मुझे पहले इसकी सूचना न दी, नहीं तो रोग इतना न बढ़ने पता।

आनंदी—कोई बात नहीं है अच्छी हो जाऊँगी जरूर ही अच्छी हो जाऊँगी। मर भी जाऊँगी तो कौन रोनेवाला बँटा हुआ है? यह कहते-कहते वह फूट-फूट कर रोने लगी।

गोपीनाथ दार्शनिक थे, पर अभी तक उनके मन के कोमल भाव मिश्रित न हुए थे। नम्रित स्वर से बोले—आनंदी, संसार में कम से कम एक ऐसा आदमी है जो मुझारे लिए अपने प्राण तक दे देगा। यह कहते-कहते वह रुक गये। उन्हें अपने दाँद और भाव कुछ भदे और उच्छ्वस्स में जान पड़े। अपने मनोभावों को प्रकट करने के लिए वह इन सारहीन शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक कान्यमशर संपूर्ण अनुरक्त शब्दों का व्यवहार करना चाहते थे, पर वह इस वक्त दाँद ने पटे।

आनंदी ने दुःखित हो कर कहा—बो महीने तक किम पर छोड़ दिया था?

गोपीनाथ—दो हों महीनों में मेरी जो दगा थी वह मैं ही जानता हूँ। यही समझ को कि मैंने आपमहत्वा नहीं की, यही वड़ा आत्मवर्ष है। मैंने न समझा था कि अपने वक्त पर स्थिर रहना मेरे लिए इतना कठिन हो जायगा।

आनंदी ने गोपीनाथ का हाथ धीरे से अपने हाथ में रीकर कहा—अब तो कभी इतनी कठोरता न कीजिएगा?

गोपीनाथ—(मचिंत हो कर) अंत क्या है?

आनंदी—कुछ भी हो!

गोपी—कुछ भी हो?

आनंदी—हाँ, कुछ भी हो।

गोपी—अनाम, निद्रा, उपहास, आत्मवेदना।

आनंदी—कुछ भी हो, मैं सब कुछ सह सकती हूँ, और आपको भी भेरे हेतु सहना पड़ेगा।

गंगो—जानदी, मैं अपने को प्रेम पर बलिदान कर सकता हूँ, लेकिन अपने नाम को नहीं। उस नाम को अकर्मिण रख कर मैं भगवान् की बहुत कुछ सेवा कर सकता हूँ।

जानदी—न कौटिल्य। जानने सब कुछ त्याग कर यह कौटिल्य लाभ की है, मैं जानने सब को नहीं दियता स्वयं (गोरीनाथ का हाथ हृदयस्थल पर रख कर), इनको चाहता हूँ। उसमें अधिक त्याग की आवश्यकता नहीं रहती?

गंगो—दोनों जाने एक साथ समभव है?

जानदी—समभव है। मेरे लिए समभव है। मैं प्रेम पर अपनी आत्मा को भी बलिदान कर सकता हूँ।

छोड़ कर जाने का जो नहीं चाहता । आश्चर्य था कि और किसी को पाठशाला की दशा में अवनति न दीसती थी, वरन् हालत गहले से अच्छी थी ।

एक दिन पंडित अमरनाथ की लाजा जो से बँट हो गयी । उन्होंने पूछा—  
बहिए, पाठशाला खूब चल रही है न ?

गोपी—कुछ न पूछिए । दिनों-दिन दशा गिरनी जा रही है ।

अमर—आनंदी बाई की ओर से बोल रहे क्या ?

गोपी—जी हाँ, सरामर । अब काम करने में उनका जी ही नहीं लगता । बैठी हुई योग और ज्ञान के ग्रंथ पढ़ा करती है । कुछ कहता हूँ तो कहती है, मैं अब हमसे और अधिक कुछ नहीं कर सकती । कुछ परलोक की भी चिंता कहूँ कि बीबीसों घंटे पेट के घघों ही में लगी रहूँ ? पेट के लिए पाँच घंटे बहुत है । पहले कुछ दिनों तक पाछू घंटे करती थीं, पर वह दशा स्वागी नहीं रह सकती थी । यहाँ जा कर मैंने स्वास्थ्य खो दिया । एक बार कठिन रोग में ग्रस्त हो गयी । क्या कुमेंटी ने मेरा यथा-दर्पण का खर्च दे दिया ? कोई बात पूछने भी आया ? फिर अपनी जान क्यों दूँ ? सुना है, घरों में मेरी बशर्गाई भी किता करती है । अमरनाथ मामिक भाव से बोले—गह बापें मुझे पहले ही मालूम थी ।

दो माल और गुजर गये । रात का समय था । कच्चा-पाठशाला में ऊपरवाले कमरे में लाला गोपीनाथ मेज के सामने कुर्सी पर बैठे हुए थे, सामने आनंदी कोच पर लटो हुई थी । मुख बहुत म्लान हो रहा था । कई मिनट तक दोनों विचार में मग्न थे । अंत में गोपीनाथ बोले—मैंने पहले ही महीने में मुममे कहा था कि मयुरा चली जाओ ।

आनंदी—वहाँ दण महीने बपोंकर रहती । मेरे पास इतने रुपये कहीं थे और न तुम्हीं ने कोई प्रबंध करने का आश्वासन दिया । मैंने सोना, तीन-चार महीने यहाँ और रहूँ । तब तक किरायात करके कुछ बचा लूँगी, तुम्हारी किताब से भी कुछ रुपये मिल जायेंगे । तब मयुरा चली जाऊँगी; मगर यह क्या मालूम था कि बीमारी भी इसी अवसर की ताक में बैठी हुई है । मेरी दशा दो-चार दिन के लिए तो सँभली और मैं चली । इस दशा में तो मेरे लिए जाना करना असम्भव है ।

गोपी—मुझे मय है कि कहीं बीमारी तुम न खींचे। रायहणी असाध्य रोग है महीने दो महीने यहाँ और रहने पड़ गये तो जान खुल जायगी।

आनंदी—( चिड़ कर ) खुल जायगी, खुल जाय। अब हमसे कहाँ तक इहे ?

गोपी—मैं भी न डरता, जब मेरे कारण नगर की कई छोरवालों का भीत मरुट में न पड़ जाता। इसलिए मैं बदनामी में डरता हूँ। समाज के यह बंधन मोरे पावड हैं। मैं उन्हें सम्पूर्णतः अन्धकार समझता हूँ। इस विषय में तुम मेरे विचारों को भरो-भरोति जाननी हो, पर कलें बना ? तुमों-गदगद मेने जाति-पेना का भार जाने ऊपर ले लिया है और उसी से फल है कि आज मुझे जाने माने हुए विद्वानों को तोड़ना पड़ रहा है और जो बन्धु मुझे प्राणों में भी त्रिप्त है, उसे यों निर्वाचन करता पड़ रहा है।

किन्तु आनंदी को दशा सँभलने की जाह दिना-दिन मिलती ही नहीं। कमजोरी से खटना-बैठना कठिन हो गया। किसी वैद्य या डाक्टर को उसको परीक्षा न दिमागी जानी थी। गोपीनाथ दयारों खाने थे, आनंदी उनका भक्षण करती थी और दिन-दिन दुर्बल होती जाती थी। पाठनाम में उठाने छुड़ी ले ली थी। किसी से मिलती-जुलती भी न थी। बार-बार चेष्टा करती कि मधुरा बची जाऊँ, किन्तु एक अनजान नगर में अकेले कैसे रहूँगी, न कोई जागे, न पाले। कोई एक घूँट पानी देनेवाला भी नहीं। यह मंत्र मोन कर उनकी हिम्मत टूट जाती थी। इसी मोष-विचार और हँस-बैठ में दो महीने और गुजर गये और अंत में विवश हो कर आनंदी ने निश्चय किया कि अब बाहे कुछ सिर पर धीने, यहाँ से चल ही हूँ। अगर मरुट में मर भी जाऊँ तो क्या बिना है। उसकी बदनामी तो न होगी। उनके यश को धलक तो न लगेगा। मेरे पीछे जाने को न मुनने पड़ेंगे। मरुट की वैयाधियाँ करने लगी। रात को जाने का मूर्त था कि गहवा संध्याकाल हो से प्रसवपीड़ा होने लगी और गवाह बरने-बबले एक नन्हा-ना दुर्बल सतवाँसा बालक प्रसव हुआ। बच्चे के होने का आवाज मुनते ही लाला गोपीनाथ नेतहाला ऊपर से उतरे और गिरते-पड़ते घर भागे। आनंदी ने इस भेद को बत तक छिपाये रखा, अपनी दाएन प्रसवपीड़ा का हाल किसी से न कहा। दाई का भी भूखता न दी, मगर

जब बच्चे के रोने की ध्वनि मंदरसे में गूँजी तो क्षणमात्र में दारि मांमने जा कर खड़ी हो गयी। भौकरानियों को पहले ही से शंकाएँ थी। उन्हें कोई आनन्द नहीं हुआ। जब दारि ने आनदी को पुकारा तो वह भक्ते हो गयी। देखा तो बालक रो रहा है।

६

दूसरे दिन एक बजते-बजते यह समाचार सारे शहर में फैल गया। घर-घर खर्चा होने लगी। कोई आश्चर्य करता था, कोई धुणा करता, कोई हँसी उड़ाता था। लाला गोपीनाथ के छिद्रावेपियों की सकल कथा थी। पेशित अमरनाथ उनके मुखिया थे। उन लोगों ने समस्त जी की निंदा करनी शुरू की। 'यहाँ देखिए वही दो-चार सज्जन बैठे गोपीनाथ भाव से इसी घटना की आलोचना करते नजर आते थे। कोई कहता था, 'उम स्त्री के लक्षण पहले ही से विदित हो रहे थे। अधिकांश आदमियों की राय में गोपीनाथ ने यह शुरु किया। यदि ऐसा ही प्रेम ने जोर मारा था तो उन्हें निरुद्ध हो कर विवाह कर लेना चाहिए था। यह काम गोपीनाथ का है, 'दममे किसी को भ्रम न था। केवल कुशल-अमांचार पूछने के बहाने में लोग उनके घर आते और दो-चार अश्लीलता सुना कर चले आते थे। इनके विरुद्ध आनंदी पर लोगों को दया आती थी। पर लाला जी के ऐसे भक्त भी थे, जो लाला जी के साथे यह वक्तव्य मंजूर पार समझते थे। गोपीनाथ ने स्वयं मौन धारण कर लिया था। सबको भर्त्ता-बुरी बातें सुनते थे, पर मुँह न खोलते थे। इतनी हिम्मत न थी कि जड़ने मिलना छोड़ दें।

प्रश्न था, अब क्या हो? आनंदी दारि के विषय में तो जनता ने फैसला कर दिया। मरुत यह थी कि गोपीनाथ के साथ क्या व्यवहार किया जाये। कोई कहता था, उन्होंने जो कुर्म किया है, उसका काज भोगें। आनंदी दारि को निर्गमिष्ठ रूप से घर में रखा। कोई कहता, हमें 'दममे क्या मतलब, आनंदी जानें और कह जानें। दोनों जैसे के तैम है, जैसे उदय वंस भान, न उनके चोटी न उनके कान। लेकिन 'इस महासभ्य को पाठशाला के अंदर अब 'कदम न रखने देना चाहिए जनता के फैसले साथी नहीं छोड़ते। अनुमान ही उनके लिए गवने यही बचाही है।

लेकिन प० अमरनाथ और उनके गोष्ठों के लोग गोपीनाथ को इतने सस्ते न छोड़ना चाहते थे। उन्हें गोपीनाथ से पुराना द्वेष था। यह बल का लौंडा, दर्शन की दो-चार घुंत्तों उलट-फुलट कर, गवनीति में कुछ सुदबुद करके लीडर बना हुआ दिचरे, मुनहरो ऐनड लपाये, रेशमी चादर गले में डाले, यों गर्व से ताके, माना मन्त्र और प्रेम का पुत्रा है। ऐसे रंगे मिश्रा की बिनती कटई खोनी जाय, उतना ही अच्छा। जानि को ऐसे दगावान, चरित्रहीन, दुर्गलात्मा मेनको से सचेत कर देना चाहिए। पंडित अमरनाथ पाठशाळा की अध्यापिकाओं और नौकरों से तहकीकात करते थे। लात्ता जी कब जाने थे, कब जाने थे, बितनी देर रहने थे, यहाँ क्या किया करते थे, तुम लोग उनकी उपस्थिति में वहाँ जाने पाते थे या रोक थी? लेकिन ये छोटे-छोटे आदमी, जिन्हें गोपीनाथ से संतुष्ट रहने का कोई कारण न था (उनकी सख्तों का नाँकर लोग बहुत शिकायत किया करते थे) इस दुरवस्था में उनके ऐसी पर परदा डालने लगे। अमरनाथ ने बहुत प्रलोभन दिया, उपास घमकामा, पर किसी ने गोपीनाथ के दिवङ्ग साक्षी न दी।

उधर लाला गोपीनाथ ने उसी दिन से आनदी के घर आना-जाना छोड़ दिया। दो हफ्ते तक तो वह अध्यापिकाओं किमी तरह बच्चा पाठशाळा में रहा। पंद्रह दिन प्रबन्ध समिति ने उसे भोजन खाली कर देने को मोटिव दे दिया। महीने भर की मुजलत देना भी उचित न समझा। अब वह बुढ़िया एक तंग मकान में रहती थी, कोई पूछनेवाला न था। बच्चा कमजोर, खुद बीमार, कोई आगे, न पीछे, न कोई दुख का संगी, न साथी। शिशु को गोद में लिये दिन के दिन बेसला-पानी पड़ी रहती थी। एक बुढ़िया महरी मिल गयी थी, जो बर्तन धो कर बटो जाती थी। कनो-कमी शिशु को छाती से लगाये रान को रान रह जाती; पर धन्य है उसके घरे और मतोय को! लात्ता गोपीनाथ से मुँह में शिकायत थी न दिल में। मोचनी, इन परिस्थितियों में उन्हें मुजने पराङ्मुन हो रहना चाहिए। उनके अतिरिक्त और कोई उपास नहीं है। उनके बदनाम होने से नगर की कितनी बड़ी हानि होनी। सभी उन पर संदेह करने हैं, पर किसी को यह साहम तो नहीं हो सकता कि उनके विपक्ष में कोई प्रमाण दे सके!

यह सोचते हुए उसने स्वामी अभेदानंद की एक पुस्तक उठायी और उसने एक अध्याय का अनुवाद करने लगी। अब उसकी जीविका का एकमात्र यही आधार था। महसा किमो ने धीरे से द्वार मटखटखाया। यह चौक पड़ी। लाला गोपीनाथ की आवाज मालूम हुई। उसने तुरंत द्वार खोल दिया। गोपीनाथ आ कर गड़े हो गये और सोते हुए बालक को प्यार से देख कर बोले—भानंदी, मैं तुम्हें मुँह दिखाने लापक नहीं हूँ। मैं अपनी भीख और नैतिक दुर्बलता पर अत्यंत लज्जित हूँ। परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरी बदनामी जा कुछ होंगी थी, वह हो चुकी। मेरी नाम ने चलनेवाली सस्थाओं की जो हानि पहुँचनी थी, पहुँच चुकी। अब अमम्भव है कि मैं जनता को अपना मुँह फिर दिखाऊँ और न यह मुझ पर विश्वास हो कर सकतो हूँ। इतना जानते हुए भी मुझमें इतना माहस नहीं है कि अपने कुकृत्य का भार सिर ले लूँ। मैं पहले सामाजिक शासन की रत्ती भर परवाह न करता था, पर अब पग-पग पर उसके भय से मेरे प्राण काँपने लगते हैं। धिक्कार है मुझ पर कि तुम्हारे ऊपर ऐसी विपत्तियाँ पड़ी, लोकनिंदा, रोग, दोष, निर्धनता सभी का सामना करना पड़ा और मैं यों अलग-अलग रहा भानो मुझमें कोई प्रयोजन नहीं है, पर मेरा हृदय ही जानता है कि उसको कितनी पीडा होती थी। कितनी ही बार इधर आने का निश्चय किया और फिर हिम्मत हार गया। अब मुझे विदित हो गया कि मेरी सारी धार्शनिकता केवल हाथों का दाँत थी। मुझमें क्रिया-शक्ति नहीं है; लेकिन इसके साथ ही मुझमें अलग रहना मेरे लिए बसड़ा है। तुममें दूर रह कर मैं निराश नहीं रह सकता। प्यारे बच्चे को देखने के लिए मैं कितनी ही बार लालापित हो गया हूँ, पर यह आज्ञा कैसे कहूँ कि मेरी चरित्रहीनता का ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण पाने के बाद तुम्हें मुझसे घृणा न हो गयी होगी।

भानंदी—स्वामी, आपके मन में ऐसी बातों का आना मुझ पर घोर अन्याय है। मैं ऐसी बुद्धिहीन नहीं हूँ कि केवल अपने स्वार्थ के लिए आपको कलंकित करूँ। मैं आपको अपना इष्टेय ममत्रतो हूँ और सदैव समझूंगी। मैं भी अब आपके विरोग-मुक्त को नहीं सह सकती। कभी-कभी आपके दर्शन पाती रहूँ, यही जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा है।

इस घटना को पंद्रह वर्ष बीत गये हैं। लाला गोपीनाथ नित्य बारह बजे

राज की आनदी के साथ बैठे नजर आने हैं। वह नाम पर मग्ने हैं, आनदी प्रेम पर। यदनाम दोनों हैं, लेकिन आनदी के साथ लोगों की महानुभूति है, योरीनाथ सबकी निगाह से पार करते हैं। हाँ, उनके कुछ आभीषण दम घटना की केन्द्र मानवीय समझ कर अब भी उनका सम्मान करते हैं, बिना जनता इतनी महिष्णु नहीं है।

---



## रानी सारंधा -

अँधेरी रात के सघाटे में घसान नदी चट्टानों में टकराती हुई ऐसी मुहावनी मालूम होती थी जैसे धुमुर-धुमुर करती हुई चकिरियाँ । नदी के दाहिने तट पर एक टीला है । उस पर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है, जिसको जंगली वृक्षों ने घेर रखा है । टीले के पूर्व की ओर छोटा-सा गाँव है । यह गद्दी और गाँव दोनों एक बुंदेला सरदार के कीर्ति-चिह्न हैं । सतान्दियाँ ग्यतीत हो गयी, बुंदेलखंड में कितने ही राज्यों का उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और गये, बुंदेला राजा उठे और गिरे—कोई गाँव, कोई इलाका ऐसा न था, जो इन दुर्गवस्याओं से योजित न हो; मगर इस दुर्ग पर किसी अनु की विजय-मठ का न लहुराया और इस गाँव में किसी विद्रोह का भी पसरण न हुआ । यह उसका मोभाव था ।

अनिच्छामिह और रामभूत था । यह जमाना ही ऐसा था जब मनुष्यमान को अपने बाहु-बल और शराक्रम ही का भरोसा था । एक भोर मुसलमान सेनाएँ पैर जमाये गद्दी रहनी थीं, दूसरी ओर बलवान राजा अपने निर्बल भाइयों का गला घोटने पर तत्पर रहते थे । अनिच्छामिह के पास मवारों और पिमादों का एक छोटा-सा, मगर मजबूत दल था । इनसे वह अपने कुन और मर्याद की रक्षा किया करता था । उसे कभी चैन से बैठना मशीब न होता था । तीन वर्ष पहले उसका विवाह गीनला देवी से हुआ था; मगर अनिच्छा विहार के दिन और बिल्लास की रातें पहाड़ों में काटता था और चीतला उसकी जाल की शैर मगाने में । वह बिल्लास की शक्ति से अनुलोष कर चुकी थी, कितनी बार उसके पैरों पर गिर कर रोती थी कि तुम मेरी आँखों में दूर न हो, मुझे हरिश्चर से चलो, मुझे तुम्हारे साथ बनबाम अच्छा है, यह विबोध अब नहीं चला जाता । उसने प्यार में कहा, जिद में कहा, विषय की; मगर अनिच्छा बुंदेला था । चीतला जाने किसी हविमार में चले पराल न कर पायी ।

२

जेंवरी रात थी । मारी दुनिया सोनी थी, नारे बाग़ान में जागने थे । सीतला देवी पलंग पर पड़ी करवटे बदल रही थी और उसकी ननद मारंधा कर्ण पर बैठे झूट मयूर स्वर से गाती थी—

बिनु रघुजीर बटल नहीं रेंग ।

सीतला ने कहा—ओ न जलामो । क्या मुझे भी मौत नहीं आती ?

मारंधा—मुझे सोरो मुना रही हूँ ।

सीतला—मेरी आँखों में जो भीत जोर हो गयी ।

मारंधा—बिबी को हँसने यही होगी ।

दुनो में दार जुगुआ और एक गठे बदन के स्पर्शान् पुरुष ने भीतर प्रवेश किया । वह अनिरुद्ध था । उनसे करीब भोगे हुए थे और बदन पर कोई हडिपार न था । सीतला बारपाई में उतर कर जमीन पर बैठ गयी ।

मारंधा ने पूछा—भैया, यह कपड़े भीने क्यों है ?

अनिरुद्ध—नदी तीर कर आया हूँ ।

मारंधा—हडिपार क्या हुए ?

अनिरुद्ध—छिन गये ।

मारंधा—और साब के आदमी ?

अनिरुद्ध—मगने बीर-गति पायो ।

सीतला ने दबी जवान ने कहा, ईश्वर ने ही कुशल किया, मगर मारंधा के सीनरो पर बल पड़ गये और मुख-भंडल गर्व में गते हो गया । बोली—भैया, तुमने कुल की मर्दादा थी ही । ऐसा कभी न हुआ था ।

मारंधा भाई पर जान देती थी । उनके मुँह ने दाद चिकार सुन कर अनिरुद्ध लज्जा और खेद से विकल हो गया । वह बौराभिनि जिने राग भर के लिए अनुराग ने क्या लिखा था, फिर ज्वलन हो गयी । वह उलटे पाँव लौटा और यह कह कर बाहर बला गया कि “मारंधा, तुमने मुझे सदैव के लिए मंचन कर दिया । यह काँट मुझे कभी न भूलेगी ।”

जेंवरी रात थी । आकाश-मंदिर में सारे को प्रकाश बहुत पुंजला था । अनिरुद्ध रुठे में बाहर निकला । पल भर में नदी के उस पार जा पहुँचा और

फिर अंधकार में लुप्त हो गया। शीतला उसके पीछे-पीछे किले की दीवारों तक आयी; मगर जब अनिरुद्ध छलंग मार कर बाहर बूढ़ पहा तो वह विरहिणी एक चट्टान पर बैठ कर रोने लगी।

उत्ते में सारंधा भी वही आ पहुँची। शीतला ने नागिन की तरह बल आ कर कहा—मर्यादा इतनी प्यारी है ?

सारंधा—हाँ।

शीतला—अपना पति होता तो हृदय में छिपा लेती।

सारंधा—ना, छाती में छुपा चुना देती।

शीतला ने ऐंठ कर कहा—बोली में छिपाती फिरोगी, मेरी बात गिरह में बाध लो।

सारंधा—जिन दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर शिलाऊँगी।

इस घटना के तीन महीने पीछे अनिरुद्ध महराजी को जीत करके लोटा और साल भर पीछे सारंधा का विवाह जोरछा के राजा चम्पतराय से हो गया, मगर उस दिन की बानें दोनों महिलाओं के हृदय-स्वल्प में काँटे की तरह बसकती रहीं।

### ३

राजा चम्पतराय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। सारी बुंदेला जाति उनके नाम पर जान देती थी और उनके प्रभुत्व को मानती थी। गरी पर बैठते ही उन्होंने मुगल बादशाहों को कद देना बंद कर दिया और वे अपने बाहु-बल से राज्य-विस्तार करने लगे। मुगलमनों की मेनाएँ बार-बार उन पर हमले करने लगी थी, पर हार कर लौट जाती थी।

यही समय था जब अनिरुद्ध ने सारंधा का चम्पतराय से विवाह कर दिया। सारंधा ने मुँह-आगी मुगल पायी। उनकी यह अनिलासा कि मेरा पति बुंदेला जाति का कुल-विरुद्ध हो, पूरी हुई। यद्यपि राजा के रनिवास में पाँच रानियाँ थी; मगर उन्हें सोच ही मालूम हो गया कि यह देवी, जो हृदय में मेरी पूजा करती है, सारंधा है।

परंतु कुछ ऐसी घटनाएँ हुई कि चम्पतराय को मुगल बादशाह का आश्रित होना पड़ा। वे अपना राज्य अपने भाई पहाड़ सिंह की सोंप पर देहली

चले गये। यह शाहजहाँ के शासन-काल का अंतिम भाग था। शाहजहाँ चार शिरोह राजकीय कार्यों को सम्भालते थे—सुनराज की आँखों में घील था और चित्त में उदारता। उन्होंने चम्पनराय की बीरता की कथाएँ सुनी थी इसलिए उनका बहुत आदर-सम्मान किया और बाल्यहीन बहूभूषण जागीर उनको भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी। यह पट्टा अवसर था कि चम्पनराय को आगे-दिन के लड़ाई-लंगड़े में निरुति मिली और उसके साथ ही भोग-विलास का प्रादुर्भाव हुआ। रात-दिन आनन्द-प्रमोद की चर्चा करने लगे। रात्रि विजाय में दूबे, रानियाँ जड़ाऊ गहनों पर रिझीं, मगर मारधा इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रहती—यह इन रङ्गों से दूर-दूर रहती, ये गुरु और गान की समझें उसे सूनी प्रतीत होती।

एक दिन चम्पनराय ने मारधा से कहा—मारदा तुम उदास क्यों रहती हो? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता। क्या मुझसे मारदा हो?

मारधा की आँखों में जल भर आया। बोली—स्वामी जी, आप क्यों ऐसा विचार करते हैं? जहाँ आप प्रसन्न हैं, वहाँ मैं भी खुश हूँ।

चम्पनराय—मैं अकने यहाँ आया हूँ, मैंने तुम्हारे मुख-कमल पर कभी मनोहारिणी मुस्कराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथों से मुझे बीड़ा नहीं खिलाया। कभी मेरी दाग नहीं सेवारी। कभी मेरे शरीर पर दस्त न मचाये। वहीं प्रेम-लला सुरमाने तो नहीं लगी?

मारधा—प्रणनाथ, आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है। यथार्थ मैं इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ मगर बीम-भा हृदय पर चरा रहता है।

चम्पनराय स्वयं आनन्द में मग्न थे। इसलिए उनके विचार में मारधा की प्रसन्न रहने का कोई उचित कारण नहीं हो सकता था। वे भीहे सिकोड़ पर बोझ—मुझे तुम्हारे उदास रहने का कोई विशेष कारण नहीं धार्य होता। ओरछे में कौन-सा गुण था जो यहाँ नहीं है?

मारधा का चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो होंगे?

चम्पनराय—नहीं, शोक से कहो।

सारंधा—ओरछे में मैं एक रात्रि की रानी थी। वहाँ मैं एक जागेरदार की चेंरी हूँ। ओरछे में मैं वह थी जो अन्ध में कौशल्या थी; यहाँ मैं वारसाह के एक सेवक की स्त्री हूँ। जिस बादशाह के सामने आज आप आदर से तिर मुकाते हैं, वह कल आपके नाम से काँपता था। रानी से चेंरी हो कर भी प्रसन्न-चित्त होना मेरे बस में नहीं है। आपने यह गद और ये विलास की सामग्रियाँ यहाँ मँहों दामों मोल ली हैं।

चम्पतराय के नेत्रों पर से एक पर्दा-सा हट गया। वे अब तक सारंधा की आत्मिक उच्चता को न जानते थे। जैसे बे-मं-वाग का बालक माँ की चर्चा सुन कर रोने लगता है; उसी तरह ओरछे का पार से चम्पतराय की आँखें सबल हो गयीं। उन्होंने आदरपूक्त अनुराग के साथ सारंधा को हृदय से लगा लिया।

आज मैं उन्हें फिर उसी उजड़ी वस्ती की फिक्र हुई, जहाँ से धन और कीर्ति की अभिलाषाएँ खींच लायी थीं।

४

माँ अपने छोटे हुए बालक को पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतराय के आने से बुदेलखंड निहाल हो गया। ओरछे के भाग जागे। नीबूते लहने लगीं और फिर सारंधा के कमल नेत्रों में जातीय अभिमान का आभास दिखायी देने लगा।

यहाँ रहते-रहते महीने बीत गये। इसी बीच में शाहजहाँ बीमार पड़ा। पेटले ने ईर्ष्या की अग्नि बहक रही थी। यह सबर गुनते ही ज्वाला प्रचंड हुई। मंग्रान की तैयारियाँ होने लगीं। शाहजादा मुग़ल और मुहीउद्दीन अपने-अपने बल सजा कर दक्षिण से चले। वर्षा के दिन थे। उर्वरा भूमि रंग-विरंग के रूप भर कर अपने सौंदर्य को दिखाती थी।

मुग़ल और मुहीउद्दीन उमरों से भरे हुए कदम बढ़ाते चले जाते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुर के निकट चम्बल के तट पर आ पहुँचे; परन्तु यहाँ उन्होंने बादशाही सेना को अपने शुभाग्रमन के निमित्त तैयार पाया।

शाहजादे अब बड़ी चिन्ता में पड़े। सामने अगम्य नदी, लहरें मार रही थी, किनी योगी के त्याग के सङ्घ। विवश हो कर चम्पतराय के पाग पड़िस भेजा कि खुदा के लिए आ कर हमारी दूबती हुई नाव को पार लगाइए।

राजा ने भवन में जाकर सारंधा में पूछा—इनका क्या उत्तर है ?

सारंधा—आपको मदद करनी होगी ।

चम्पतराय—उनकी मदद करना द्वारा शिकोह में बँर लेना है ।

सारंधा—यह गल्य है, परन्तु हाथ फैलाने की मर्जदा भी तो निभानी चाहिए ?

चम्पतराय—प्रिये, तुमने मोच कर जवाब नहीं दिया ।

सारंधा—राजनय, मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मार्ग काटन है । और अब हमें अपने योद्धाओं का रक्त पानी के समान बहाना पड़ेगा, परन्तु हम अपना रक्त बहायेंगे और चम्पवन की लहरों को लाज कर देंगे । विश्वास रखिए कि जब तक नदी की घास बहती रहेगी, वह हमारे वीरों का कीर्तिगान करती रहेगी । जब तक बुंदलों का एक भी नाम उठा रहेगा, ये रक्त-विन्दु उनके माथे पर केशर का तिलक बन कर चमकेंगे ।

वायुमंडल में मेघराज की सेनाएँ उमड़ रही थीं । ओरछे के किले में बुंदलों की एक काफ़ी घटा उठी और बेग के साथ चम्पल की तरफ चली । प्रत्येक निपाही वीर-रम से झूम रहा था । सारंधा ने दोनों राजकुमारों को गले में लगा लिया और राजा को पान का बीड़ा देकर कहा—बुंदलों की लाज अब तुम्हारे हाथ है ।

आज उसका एक-एक अङ्ग मुस्करा रहा है और हृदय ह्वनित है । बुंदलों की यह सेना देख कर शाहजादे फूट न ममाये । राजा वहाँ की अगुल-अंगुल भूमि से परिचित थे । उन्होंने बुंदलों की तो एक बाढ़ में डिग दिया और वे शाहजादे की फौज को सजा कर नदी के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चले । द्वारा शिकोह को भ्रम हुआ कि वास्तु किन्ती अन्य घाट से नदी सनरना चाहता है । उन्होंने घाट पर मेघोचें हटा दिये । घाट में बैठे हुए बुंदले उठी लाज में थे । बाहर निकल पड़े और उन्होंने सुरत ही नदी में घोड़े डाल दिये । चम्पतराय ने शाहजादे द्वारा शिकोह को भुलावा दे कर जानों फौज धुमा दी और वह बुंदलों के पीछे चलता हुआ उम पार उत्तर लाज । इन वज्रि 'बाल में सात घंटों का विलम्ब हुआ, परन्तु जा कर देखा तो सात सौ बुंदलों की लाज उड़ रही थी ।

राजा को देखते ही बुंदेलों की हिम्मत खो गई। शाहजादों की सेना ने भी 'अन्लाहो अकबर' की ध्वनि के साथ धावा किया। बादशाही सेना में हलचल पड़ गई। उनको पकियाँ छिन्न-भिन्न हो गयी, हाथोहाथ लड़ाई होने लगी, यहाँ तक कि शाम हो गयी। रणभूमि रुधिर से लाल हो गयी और आकाश में खँबेरा हो गया। घमामान की मार हो रही थी। बादशाही सेना शाहजादों को दबाते आती थी। अकस्मात् पश्चिम से फिर बुंदेलों की एक लहर उठी और इस घेरे में बादशाही सेना पुश्त पर टकरायी कि उसके कदम जख्म हो गये। जीता-हुआ मैदान हाथ से निकल गया। लोगों को कुतूहल था कि यह सब सहायता कहाँ से आयी। मरल स्वभाव के लोगों की धारणा थी कि यह पतल के करिब है, शाहजादों की मदद के लिए आये हैं; परंतु जब राजा चम्पतराय निकट गये तो सारंधा ने घोड़े से उतर कर उनके पैरों पर सिरे झुका दिया। राजा को 'असीम आनंद' हुआ। यह सारंधा थी।

समर-भूमि का दृश्य इस समय अत्यंत दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहाँ सजे हुए वीरों के दल थे वहाँ अब बेजान शराबें लटकी थीं। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए अनादि काल से ही भाइयों की हत्या की है।

अब विजयी सेना छूट पर टूटी। पहले मर्द मर्दों से लड़ते थे। वह वीरता और पराक्रम का चित्र था, यह नीचता और दुर्बलता की स्तानिग्रह तस्वीर थी। उस समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशु से भी बड़ गया।

इस नीच-जमोटे में लोगों की बादशाही सेना के मेधापति चलो। पहादुर खाँ की लाश दिखायी दी। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अरनी। दुम से भवियता उड़ा रहा था। राजा को घोड़े का शोक था। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। यह एककी जाति का बति गुंदर घोड़ा था, एक-एक ओर सवै में उठा हुआ, सिंह की सी छती; नीते की सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामि-भक्ति देख कर लोगों को बड़ा कुतूहल हुआ। राजा ने हुक्म दिया—खबरदार! इस प्रेमी पर कोई हथियार न चलाये, इस जीता पकड़ लो, यह मेरे अस्तबल की शोभा बढ़ायेगा। जो इसे मेरे पास ले आयेगा, उसे धन से निहाल कर दूँगा।

। योदागण चारों ओर से लाके; परंतु किमी को माह्य ■ होता था कि उसके निकट जा सके। कोई घुमकारना था, कोई फंदे में फँसाने को फिर में था, पर कोई उधार मफ़्त न होता था। वहाँ मिपाहियों का मेला-मा लगा हुआ था।

तब मारंधा अपने खेमे से निकली और निर्भय हो कर घोड़े के पाम-बली गयी। उसकी आँखों में प्रेम का प्रकाश था, छल का नहीं। घोड़े ने मिर झुका दिया। रानी ने उसकी गर्दन पर हाथ रखा और वह उसकी पीठ सहलाने लगी। घोड़े ने उसके अचल में मुँह छिगा रखा। रानी उसकी राम पकड़ कर खेमे की ओर चली। पोदा इन तरह चुपचाप उनके पीछे चला मानां सदैव से उसका भेवक है।

पर बहुत अज्ज्ञा होना कि घोड़े ने सारवा से भी निष्ठुरता की होती। यह गुरुर पोदा आगे चल कर इन राज-परिशर के निमित्त स्वर्णजटित मृग साबित हुआ।

## ५

समार एक रण क्षेत्र है। इस मैदान में उभी सेनापति को विजय-लाम होता है जो अरार को पहचानता है। वह अक्सर पर जितने वस्माह से आगे बढ़ता है, उतन ही उत्साह से आपत्ति के समय पीछे हट जाता है। वह बीर पुरुष राष्ट्र का निर्माता होता है और इतिहास उसके नाम पर यश के फूलों की वर्षा करता है।

पर इस मैदान में कभी कभी ऐसे सिपाही भी जाते हैं, जो अक्सर पर कदम बढ़ाना चाहते हैं, लेकिन सकट में पीछे हटना नहीं जानने। ये रणवीर पुरुष विजय की नीति की भेंट कर देते हैं। वे अपनी सेना का नाम मिटा देंगे, किन्तु जहाँ एक बार पहुँच गये हैं, वहाँ से कदम पीछे न हटावेंगे। उनमें कोई विरला ही समार-क्षेत्र में विजय प्राप्त करता है, किन्तु प्रायः उसको हार विजय से भी अधिक गौरवात्मक होती है। अगर अनुभवी सेनापति राष्ट्रों की नींव डालना है, तो आन पर जान देनेवाला, मुँह न मोड़नेवाला सिपाही राष्ट्र के नामों को उच्च करता है, और उसके हृदय पर नैतिक गौरव को अंकित कर देता है। उसे इस कार्यक्षेत्र में चाहे सफलता न हो, किन्तु जब किसी बाध्य या सभा में उसका नाम अबान पर आ जाता है, तो योदागण एक स्वर से



उसके कीर्ति-गौरव को प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारंधा 'आन पर जान देने-वालों' में थी।

साहजादा मुहीउद्दीन चम्बल के किनारे से आकर की आर-बला तो सोभाग्य उसके मिर पर मोछल-हिलाता था। जब वह आगे पहुँचा तो विजयदेवी ने उसके लिए सिंहासन भजा दिया।

औरंगजेब गुणज था। उसने बाबताड़ी सरदारों के बग़ायर क्षमा कर दिये, उनके राज्य-पद सौदा दिये और राजा जम्पतराय को उसके बहुमुख्य कृत्यों के उपलक्ष्य में बारह हजार मन्तव्य प्रदान किया। औरछ से बनारस और बनारस से जमुना तक उसको जागीर नियत की गयी। बुंदेला राजा फिर राज-मेवक बना, वह फिर मुल्ल विलास में दूबा और रानी सारंधा फिर पराधीनता के शोक में घुलने लगी।

बली बहादुर खाँ पडा बाबत-बतुर मनुष्य था। उसकी मृत्यु ने खीम ही उसे बादशाह आलमगीर का विश्वामयान बना दिया। उस पर राज मना में सम्मान की दृष्टि पड़ने लगी।

खाँ साहब के मन में अपने छोटे के हाथ से निकल जाने का बड़ा शोक था। एक दिन कुँवर छत्राल उसी छोटे पर सवार हो कर तैर को गया था। वह खाँ-साहब के महल की तरफ जा निकला। बली बहादुर ऐसे ही अग्रसर की ताक में था। उसने तुरंत अपने सेवकों को इजारा किया। राजकुमार अकेला क्या करता? पाँव-गाँव पर आया और उसने सारंधा से सज मनाचार बयान किया। रानी का चेहरा लमतमा गया। बोली, "मुझे इसका शोक नहीं कि थोड़ा हाथ से गया, शोक इसका है कि तू उसे लो कर जीता बने लौटा? क्या तेरे शरीर में बुंदेलों का रक्त नहीं है? थोड़ा न मिलता, न सही, किंतु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुंदेला बालक से उसका थोड़ा छीन लेना हँसो नहीं है।"

यह कह कर उसने अपने पञ्चोम योद्धाओं को तैयार होने को आता दी। स्वयं अस्त्र धारण किये और योद्धाओं के साथ बली बहादुर खाँ के निवास स्थान पर जा पहुँची। खाँ साहब उसी छोड़े पर सवार हो कर चरघार चले गये थे, सारंधा दरवार की तरफ बली, और एक क्षण में किन्ती बेबबती नदी के सहाय

मोझाग चारों ओर से छाके, परंतु किमी को माहम न होता था कि उससे निकट जा सके । कोई चुनकारता था, कोई फड़े में फँसाने को फिर में था, पर कोई उगान सफ़्त न होता था । वहाँ सिपाहियों का मेला-मा लगा हुआ था ।

तब सारधा अपने खेमे से निकली और निर्भय हो कर घोड़े के पास चली गयी । उनकी आँखों में प्रेम का प्रकाश था, छठ का नहीं । घोड़े ने मिर झुका दिया । सारी ने उनकी गर्दन पर हाथ रखा और वह उसकी पीठ सहलाने लगी । घोड़े ने उनके अंशु में मुँह छिगा दिया । सारी उनकी राग पकड़ बर खेमे की ओर चली । थोड़ा हम तरह चुपचाप उनके पीछे खला मानों सदैव से उसका शिक है ।

पर बहुत प्रयत्न होता कि घोड़े ने सारधा ने भी निष्कृता की होती । यह सुँहर मोझा जाने बंद कर हम राज-गरिबार के निमित्त स्वयंभूति भूग सावित हुआ ।

## ५

संगार एक रण क्षेत्र है । हम मैदान में उसी मेताति की विजय-शाम होता है जो जंगल को पहचानता है । वह जंगल पर बितने उत्साह में आगे बढ़ता है, जंगल ही उत्साह में आगति के समय पीछे हट जाता है । वह वीर पुरुष राष्ट्र का निर्माता होता है और इतिहास उनके नाम पर पद्य के कूनों की बर्ण करता है ।

पर हम मैदान में कभी कभी ऐसे निपारी भी जाते हैं, जो जंगल पर कदम बढ़ाना जाते हैं, लेकिन संकट में पीछे हटना नहीं जानते । ये रणवीर पुरुष विजय को नीति की भेंट कर देते हैं । वे अपनी मेता का नाम मिटा देंगे, किन्तु जहाँ एक बार पहुँच गये हैं, वहाँ से कदम पीछे न हटावेंगे । उनमें कोई बिरला ही संगार-क्षेत्र में विजय प्राप्त करता है, किन्तु प्रायः उनकी हार विजय से भी अधिक गौरवात्मक होती है । अगर अनुभवों मेताति राष्ट्रों की नींव टालता है, तो खान पर खान देनेवाला, मुँह न मोड़नेवाला सिपाही राष्ट्र के मानों को उच्च करता है, और उसके हृदय पर नैतिक गौरव की अंकित कर देता है । उसे हम कार्यक्षेत्र में चाहें मरुस्थल न हो, किन्तु जब किसी बार या सभा में उसका नाम खान पर आ जाता है, तो श्रोतागण एक स्वर से

उसने कीर्ति-गौरव को प्रतिष्पन्नित कर देते हैं। सारंधा 'आन पर जान देने-वालों' में थी।

साहजादा मुहीउद्दीन चम्बल के किनारे से आगरे की ओर चला तो सोभाग्र्य उगके गिर पर गोछंड हिलता था। जब वह आगरे पहुँचा तो विजयदेवी ने उसके लिए सिंहासन सजा दिया।

औरंगजेब गुप्त था। उसने बादशाही सरदारों के अरुण धना कर दिये, उनके राज्य-पद सौदा किये और राजा चम्पतराय को उसके बहुसूय कुर्यों के उपलक्ष्य में बारह हजारी मन्त्र प्रदान किया। धोरछा से बनारस और बनारस से जमुना तक उसकी आगौर नियत की गयी। बुंदेला राजा फिर राज-नेषक बना, वह फिर मुज्ज पिलास में डूबा और रानी सारंधा फिर पराधीनता के शोक से धुलने लगी।

बली बहादुर खाँ बड़ा धावत्र-चतुर मनुष्य था। उसकी महुता ने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीर का विश्रामपाद बना दिया। उस पर राज सभा में सम्मान की दृष्टि पड़ने लगी।

खाँ साहब के मन में अपने घोड़े के हाथ से निकल जाने का बड़ा शोक था। एक दिन कुँवर छनताल उसी घोड़े पर सवार होकर सैर को गया था। वह खाँ साहब के महल की तरफ जा निकला। बली बहादुर-ऐसे ही अरुण की ताक में था। उसने तुरंत अपने सेवकों को इशारा किया। 'जमुनार अकेला क्या करता? पाँच-पाँच पर आया और उसने सारंधा से सप ममाचार क्या किया। रानी का चेहरा तमतमा गया। बोली, "मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा हाथ से गया, शोक इसका है कि तू उसे खो कर जोता क्यों लीटा? क्या तेरे शरीर में बुंदेलों का रक्त नहीं है? घोड़ा न मिलता, न सड़ी, किंतु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुंदेला बालक से उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।"

यह कह कर उसने अपने पन्वीस घोड़ाओं को सैरार होने की आज्ञा दी। स्वयं अस्त्र धारण किये और घोड़ाओं के साथ बली बहादुर खाँ के निवास स्थान पर जा पहुँची। खाँ साहब उसी घोड़े पर सवार होकर दरबार चले गये थे, सारंधा दरबार की तरफ चली, और एक क्षण में कितनी बेगबजी नदी के सद्गुण

बादशाही दरबार के सामने जा पहुँची, यह कैफियत देखने ही दरबार में हलचल मच गयी। अधिकारी बगैर इधर उधर में आ कर जमा हो गये। आलमगीर भी महल में निकल आये। लंबे बफ़्तो-अफ़्तो तलवारें गँभालने लगे और चारों तरफ़ घोर मच गया। कितने ही नेत्रों ने इसी दरबार में अमरनिह की तलवार की चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर घट आ गयी।

तारखा ने उच्च स्वर से कहा—हाँ साहब, बड़ी लज्जा की बात है, आपने वही बीरता, जो चम्बल के तट पर दिवानी चाहिए थी, आज एक अशेष बालक के सम्मुख दिखायी है। क्या यह उचित था कि आप उससे थोड़ा छीन लेंते ?

वली बहादुर खाँ की आँखों ने अग्नि-ज्वाला निकल रही थी। वे कड़ो जावाब से बोले—किसी पैर को क्या मजाल है कि मेरी चीज अपने काम में लाये ?

रानी—वह आपकी चीज नहीं, मेरी है। मैंने उसे रण भूमि में पाया है और उस पर मेरा अधिकार है। क्या रणनीति की इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते ?

खाँ साहब—वह थोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदले में मारा अस्तबक आपकी जरूर है।

रानी—मैं अपना थोड़ा लूँगी।

खाँ साहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूँ, परन्तु थोड़ा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवार से होगा, बुनिया मोढाओं ने तलवारें मौन की और निकट था कि दरबार की भूमि रक्त से प्लावित हो जाय, बादशाह आलमगीर ने बीच में आ कर कहा—रानी साहबा, आप सिपाहियों को रोकें थोड़ा आपकी मिला आकर; परन्तु इसका मुख्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व देने को तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मन्सब भी ?

रानी—जागीर और मन्सब कोई चीज नहीं।

बादशाह—अन्ना-राज्य भी ?

रानी—हाँ, राज्य भी।

बादशाह—एक थोड़े के लिए ?

रानी—नहीं, उस पदार्थ के लिए जो संसार में सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानी ने छोड़े के लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज और राज-सम्मान सब हाथ से खोया और केवल इतना ही नहीं, मर्त्य के लिए काँटे बोये; इस घड़ी से अंत वशा तक चम्पतराय को शांति न मिले।

६

राजा चम्पतराय ने फिर ओरछे के किले में पदार्पण किया। उन्हें भग्न और जागीर के हाथ से निकल जाने का अत्यंत शोक हुआ; किंतु उन्होंने अपने मुँह से शिकायत का एक शब्द भी नहीं निकाला, वे सारंघा के स्वभाव को भली-भाँति जानते थे। शिकायत इस समय उनके आत्म-नौरस पर फुटार का काम करती।

कुछ दिन, यहाँ शांतिपूर्वक व्यतीत हुए; लेकिन बादशाह सारंघा की कठोर बात भूला न था, वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्यों ही माइयों की ओर से निर्दिष्ट हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतराय का गर्व पूर्ण करने के लिए भेजी और वाईम् अनुभवनील सरदार इस महीम पर नियुक्त किये। शुभकरण बुंदेला बादशाह का सूवेदार था। वह चम्पतराय का वचन का मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतराय को परास्त करने का योद्धा उठाया। और भी कितने बुंदेला सरदार राजा से विमुख हो कर बाबशाही सूवेदार से आ मिले। एक गोर संग्राम हुआ। माइयों की सलवारें रक्त से लाल हुईं। यद्यपि इस समय में राजा को विजय प्राप्त हुई, लेकिन उनकी शक्ति संशय के लिए क्षीण हो गयी। निकटवर्ती बुंदेला राजा जो चम्पतराय के यादुबल थे, बादशाह के कृपाकाशी बन बैठे। साधियों में कुछ तो काम आये, कुछ दगा कर गये। यहाँ तक कि निज सम्बन्धियों ने भी आँखें चुरा लीं; परन्तु इन कठिनाइयों में भी चम्पतराय ने हिम्मत नहीं हारी, धीरे-धीरे को न छोड़ा। उन्होंने ओरछा छोड़ दिया और वे तीन वर्ष तक बुंदेलखंड के सचन नरती पर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएँ निकाली, जानवरों की भाँति सारे देश में भटक रही थीं। आधे-दिन राजा का किसी न किसी से सामना हो जाता था। सारंघा सदैव उनके साथ रहती

और उनका साहज बढ़ाया भरती । बड़ी-बड़ी आपत्तियों में जब कि धैर्य लुप्त हो जाना—और जाना माय छोड़ देनी—आत्मरक्षा का धर्म उसे संभाले रहता था । तीन मास के बाद अंत में बादशाह के सूबेदारों ने आलमगीर को सूचना दी कि इस शेर का निकार आपके मित्राय और किमो मे न होमा । उत्तर आया कि सेना को हटा लो और घेरा उठा लो । राजा ने समझा, सकट से निवृत्त हुई, पर वह बात सीधे ही भ्रमात्मक मिट्ट हो गयी ।

७

तीन मन्साह में बादशाही रजा ने ओरछा घेर रखा है । जिस तरह कठोर बचन हृदय को छेद डालने हैं, उसी तरह तापों के गोली ने दीवारों को छेद डाला है । किले में २० हजार आदमी घिरे हुए हैं लेकिन उनमें आधे से अधिक स्त्रियाँ और उनसे कुछ ही कम बालक हैं । मर्दों की संख्या दिनों-दिन घटती जाती है । आने-जाने के मार्ग चारों तरफ से बंद हैं । हवा का भी गुजर नहीं । खान का सामान बहुत कम रह गया है । स्त्रियाँ पुरपो और धातवों को जीविण खान के लिए भाप उगवाम करती हैं । लोग बहुत हताश हो रहे हैं । औरों मूर्खानागमन की ओर हाथ उठा-उठा कर शत्रु को कोसती हैं । मालकमुन्द भारे क्रोध के दीवारों की आड़ से उन पर पत्थर फेंकते हैं, जो मुस्लिम ने दीवार के उभे पार जा पाने हैं । राजा चम्पलखण स्वयं खबर से पीड़ित है । उन्होंने कई दिन से चारपाई नहीं छोड़ी । उन्हें देख कर लोगों को कुछ डराने होता था, लेकिन उनकी बीमारी से सारे किले में मैराय छाया हुआ था ।

राजा ने सारंग से कहा—आज शत्रु खबर किले में घुस आयेंगे ।

सारंग—दखर न करे कि इन आँकों से वह दिन देखना पड़े ।

राजा—मूखे बड़ी चिंता इन अनाथ स्त्रियों और बालकों की है । मेरे के साथ यह घुन भी गिन आयेंगे ।

सारंग—हम लोग यहाँ से निकल आने तो कैसा ?

राजा—इन अनाथों को छोड़ कर ?

सारंग—हम समय इन्हें छोड़ देने ही में कुशल है । हम न होंगे तो शत्रु हम पर कुछ दया ही करेंगे ।

राजा—नहीं, यह लोग मुझसे न छोड़े जायेंगे। जिन मदों ने अपनी जान हमारी सेवा में अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और वच्चों को मैं कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारंधा—लेकिन यहाँ रह कर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते ?

राजा—उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं। मैं उनकी रक्षा में अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिए बादशाही सेना की खुशामद करूँगा, कारावास की कठिनाइयाँ मंजूगा किंतु इस संकट में उन्हें छोड़ नहीं सकता।

सारंधा ने कज्जित हो कर मिर झुका लिया और सोचने लगी, निस्मिद्ध प्रिय साधियों की आग की धाँच में छोड़ कर अपनी जान बचाना घोर नीशता है। मैं ऐसी स्वार्थापि क्यों हो गयी हूँ ? लेकिन एकाएक विचार उत्पन्न हुआ।

बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियों के शाय कोई अन्याय न किया जायगा तब तो आपको चलने में कोई बाधा न होगी ?

राजा—( सोच कर ) कौन विश्वास दिलावेगा ?

सारंधा—बादशाह के सेनापति का प्रतिज्ञा-पत्र।

राजा—हाँ, तब मैं सानंद चलूँगा।

सारंधा विचार-मागर में डूबी। बादशाह के सेनापति से क्योंकर यह प्रतिज्ञा कराऊँ ? कौन यह प्रस्ताव ले कर वहाँ जायगा और निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे। उन्हें तो अपनी विजय की पूरी आशा है। मेरे यहाँ ऐसा नीति-मुग्ध, वाक्पटु, चतुर कौन है जो इस दुस्तर कार्य को सिद्ध करे ? छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मन में निश्चय करके रानी ने छत्रसाल को बुलाया। यह उनके चारों पुत्रों में सबसे बुद्धिमान् और मादसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसाल ने आकर रानी को प्रणाम किया तो उसके कमलनेत्र राजल हो गये और हृदय से दीर्घ निश्वास निबल गया।

छत्रसाल—माता, मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

रानी—आज लड़ाई का क्या ढंग है ?

छत्रसाल—हमारे पचास योद्धा अब तक काम बर चुके हैं।

रानी—बुदिलों की आज्ञा अब ईश्वर के हाथ है।

छत्रमाल—हम आज रात छाया मारेंगे ।

रानी ने सशेष में अपना प्रस्ताव छत्रमाल के सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसे सौंपा जाए ?

छत्रमाल—मझको ।

‘तुम इसे पूरा कर दिखाओगे ?’

‘हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है ।’

‘अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे ।’

छत्रमाल जब चला तो रानी ने उसे हृदय से लगा लिया और सब आकाश की ओर दोनों हाथ उठा कर कहा—श्यामिनि, मैंने अपना सत्य और हीनहार पुत्र बुद्धिमान की आज्ञा के आगे झेंट कर दिया । अब इस आज्ञा को निमाना तुम्हारा काम है । मैंने बड़ी मूर्खवान् वस्तु अर्पित की है, इसे स्वीकार करो ।

८

दूसरे दिन प्रातः काल सारथा स्नान करके बाल में पूजा की सामग्री लिये मंदिर को चली । उसका चेहरा पीला पड़ गया था और आँखों तले अँधेरा छाया जाना था । वह मंदिर के द्वार पर पहुँची थी कि उसके बाल में बाहर से आ कर एक तीर गिरा । तीर की मोक पर एक कागज का पुर्जा लिपटा हुआ था । सारथा ने बाल मंदिर के चक्रद्वार पर रुक दिया और पुर्जे की सोल कर देखा तो आनंद से चेहरा चिल गया, लेकिन यह आनंद क्षण-भर का था । हाय ! इस पुर्जे के लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथ से खी दिया । कागज के टुकड़े इतने महँगे दामों किमने लिया होगा ?

मंदिर में लौट कर सांघ्या राजा चम्पतराय के पास गयी और बोली—‘प्रागनाथ, आपने जो वचन दिया था उसे पूरा कीजिए ।’ राजा ने चौंक कर पूछा, “तुमने अपना याज्ञ पूरा कर दिया ?” रानी ने वह प्रतिज्ञापत्र राजा को दे दिया । चम्पतराय ने उसे गौरव से देखा और फिर बोले—अब मैं चलेगा और ईश्वर ने चाहा तो एक बार फिर याज्ञों की खबर लूँगा । लेकिन सारन्, सब बनाओ, इस पत्र के लिए क्या देना पड़ा है ?

रानी ने कुटिल स्वर से कहा—बहुत कुछ ।

राजा—सुनू ?



रानी—एक जवान पुत्र ।

राजा को बाण सा लगा । पूछा—कौन ? अंगदराय ?

रानी—नहीं ।

राजा—रतनसाह ?

रानी—नहीं ।

राजा—छत्रसाल ?

रानी—हाँ ।

जैसे कोई पथी गोली खा कर परों को फड़कड़ाता है और तब बेदम हो कर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलों से उछले ओर फिर अचेत हो कर गिर पड़े । छत्रसाल उनका परमप्रिय पुत्र था । उनके भविष्य की सारी कामनाएँ उसी पर अवलम्बित थी । जब श्वेत हुआ तब बोले, 'सारन्, तुमने बुरा किया ।'

अंधेरी रात थी । रानी सारंधा घोड़े पर सवार चम्पतराय को पालकी में बैठाये किले के गुप्त मार्ग में निकली जाती थी । आज से बहुत काल पहले एक दिन ऐसी ही अंधेरी दुःखमयी रात्रि थी । तब सारंधा ने शीतलादेवी को कुछ कठोर वचन कहे थे । शीतलादेवी ने उस समय कुल भविष्यवाणी की थी, वह आज पूरी हुई । क्या सारंधा ने उसका जो उत्तर दिया था, वह भी पूरा हो कर रहेगा ?

९

मध्याह्न था । सूर्यनारायण सिर पर आ कर अग्नि की वर्षा कर रहे थे । घरीर को झुलसाने वाली प्रचंड, प्रखर वायु बन और पर्वत में भाग लगाती फिरती थी । ऐसा विदित होता था, मानो अग्निदेव की समस्त सेना भरजती हुई चली आ रही है । मगन-मंडल इस भय से काँप रहा था । रानी सारंधा घोड़े पर सवार चम्पतराय को लिये, पश्चिम की तरफ चली जाती थी । ओरछा दस कोम पीछे छूट चुका था और प्रतिक्षण यह अनुमान स्वर होता जाता था कि जब हम भय के क्षेत्र में बाहर निकल बागें । राजा पालकी में अचेत पड़े हुए थे और महारानी ने साराबोर थे । पालकी के पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे, प्यास के मारे मुँह का बुरा हाल था । सीधु सूखा जाता था । किसी वृक्ष को छँह और कुएँ की तलाश में जलिन पारों ओर खोज रही थीं ।

अचानक मारधा ने पीछे की तरफ़ फ़िर कर देखा, तो उसे सवारों का एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा टनका कि अब कुशल नहीं है। यह लोग स्वयं हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आश्रमियों को लिए हमारी महायत्ना को आ रहे हैं। नैराश्र्य में भी आशा साय नहीं छोड़नी। बर्त मिनट तक वह इसी आशा और भय की अवस्था में रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और मित्राहिणों के वन्द्य साक नज़र आने लगे। रानी ने एक छोटी मांस लो, उसका धरोर तुणवन् कापने लगा। यह बादशाही मेला के लोग थे।

मारधा ने बहारों से कहा—डोलो रोक लो। बुंदेला मित्राहिणों ने भी तलवारें खींच लीं। राजा की अवस्था बहुत शोचनीय थी; किन्तु जैसे दबी हुई आग़ हवा जलने ली प्रदीपन हो जाती है, उसी प्रकार इस संकट का ज्ञान होते ही उनसे प्रह्वर शरीर में खीरात्मा चमक उठी। वे पालकी का पर्दा उठा कर बाहर निकल आये। घनूष-श्राण हाथ में ले लिया; किन्तु वह घनूष जो उनके हाथ में इस का बय बल जाना था, इस समय जरा भी न जुका। निर में चक्कर आया, पैर धरोर ओर वे धरती पर गिर पड़े। भावी अममल की मूषजा मिल गयी। उस पंचरहित पक्षी के मदुरा, जो सौंघ को अपनी तरफ़ आने देन कर कर को डबकना और फिर गिर पड़ता है, राजा चम्पनराय फिर संभल कर उठे और फिर गिर पड़े। मारधा ने उन्हें भँभाल कर बैठाया और रो कर बोलने की चेष्टा की, परंतु मुँह से केवल इतना निकला—प्राणनाथ ! इसके आगे मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। आन पर मरनेवाली मारधा इस समय माधारण स्त्रियों की भाँति मकिहान हो गयी, लेकिन एक अंश तक यह निर्बलता स्त्री-जानि की मोमा ॥ ।

चम्पनराय बोले—“मारन, देखो, हमारा एक और बोर जमीन पर गिरा। शोक ! जिस आश्रम ने यावज्जीवन इरता रहा, उसने इस अंतिम समय में आ घेरा। मेरी आत्मा के गामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीर में हाथ लगायेगे, और, मैं जगह में डिल भी न पहुँचा। हाथ ! मृत्यु, तू बल खायेगी !” यह कहते-कहते उन्हें एक विचार आया। तन्सार की तरफ़ हाथ बढ़ाया, मगर हाथों में दम न था। सब मारधा से बोले—प्रिये, तुमने कितने ही अकर्मों पर मेरी आन निभायी है।

इतना सुनते ही सारंधा के मुखसे हुए मुख पर लाली दौड़ गयी। आँसू सूख गये। इस आशा में कि मैं पति के कुछ काम आ सकती हूँ, उसके हृदय में बल का संचार कर दिया। यह राजा की ओर विद्वामोत्पादक भाव से देख कर बोली— ईश्वर ने चाहा तो मरते दम तक निभाऊँगी।

रानी ने समझा, राजा मुझे प्राण देने का मन्त्र कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारंधा—मरते दम तक न टालूँगी।

राजा—यह मेरी अंतिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारंधा ने तलवार को निकाल कर अपने वक्षस्वल पर रख दिया और कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मरते तो यह मस्तक आपके पद-कमलों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिए शत्रुओं के हाथ में छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियाँ पहने हुए बिल्ली की गलियों में निदा का पात्र बनूँ ?

रानी ने जिज्ञासा दृष्टि से राजा को देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—तुमने एक वरदान माँगता हूँ।

रानी—महर्ष माँगिए।

राजा—यह मेरी अंतिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा, करोगी ?

रानी—मिर के बल करूँगी।

राजा—देखो, तुमने बचन दिया है। इनकार न करना।

रानी—( फँस कर ) आपके कहने की देर है।

राजा—अभी तलवार मेरे छाती में चुभा दो।

रानी के हृदय पर बलघात-घा हो गया। बोली—'जीवननाश ! इसके आगे और कुछ न बोल सकती। आँसुओं में नैऋत्य छा गया।

राजा—मेँ बेड़ियाँ पहनने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—मुझे यह कैसे होगा ?

पाँचवीं ओर अंतिम सिपाही घबराती पर गिरा। राजा ने झुंझकार कहा— इसी जीवट पर आज निशाने का गर्व था ?

बादशाह के मिर्जाही राजा की तरफ लगे । राजा ने वैराग्यपूर्ण भाव से राजा की ओर देखा । राजा खग भर अनिश्चित स्व से खड़े रहो, लेकिन संकट में हमारे निश्चयात्मक शक्ति बलवान् हो आते हैं । निकट था कि मिर्जाही लोग राजा की पकड़ से कि मारवा ने दामिनी की भाँति लड़क कर अपनी तलवार राजा के हृदय में चुना दी ।

प्रेम की नाव प्रेम के सागर में डूब गयी । राजा के हृदय में रविवर की धारा निजल रही थी, पर चेहरे पर छाँटि छाँटि हुई थी ।

कैसा हृदय है ! वह स्त्री जो अपने पति पर शान देनी थी आज उसकी प्राण-धानिका है ! जिग हृदय से आलिंगित हो कर उसने जीवनमुक्त लूटा, जो हृदय उसकी अभिप्रायों का केंद्र था, जो हृदय उसके अभिमान का पोषक था, उसी हृदय को मारवा की तलवार छेद रही है ! किम स्त्री की तलवार से ऐसा काम हुआ है ?

आह ! आत्माभिमान का कैसा विनाशमय अंत है । उदयपुर और मारवाड़ के इतिहास में भी आत्म-वीर्य की ऐसी घटनाएँ नहीं मिलती ।

बादशाही सिपाही मारवा का यह माहल और बर्य देव कर धंग रह गये ।

मरशर ने आगे बढ़ कर कहा—राजी माहिवा, मुश गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं । आगवा जो हुक्म हों, उसे हमसे चरम बना लायेंगे ।

मारवा ने कहा—अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो, तो मैं दानी दानों उसे मौत देना ।

यह कह कर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुना ली । अब वह अचेत हो कर धरती पर गिरा, जो उसका मिर राजा चम्पनराय की छाँटि पर था ।

## शाप

मैं दलित नगर का निवासी हूँ। मेरे पूज्य पिता भौतिक विज्ञान के सुविख्यात ज्ञाता थे। भौगोलिक अन्वेषण का शौक मुझे भी बाल्यावस्था ही से था। जून के स्वर्णयाम के बाद मुझे यह धुन सवार हुई कि पैदल पृथ्वी के गमस्त देश-देशान्तर की सैर करूँ। मैं विपुल धन का स्वामी था। मैं सब शायें एक बैक में जमा कर दिये और उससे धर्म कर ली कि मुझे यथा गमय रुपये भेजता रहे। इस कार्य से निवृत्त हो कर मैंने सफर का सामान पूरा किया। आवश्यक वैज्ञानिक यंत्र साव लिये और ईश्वर का नाम उठे कर चल खड़ा हुआ। उस समय यह कल्पना मेरे हृदय में गुदगुदी पैदा कर रही थी कि मैं वह पहला प्राणी हूँ जिसे यह बात सूझी है कि पैरों से पृथ्वी को नापे। अन्य मानवियों ने रेल, अहाज और मोटरकार की शरण ली है। मैं पहला ही वह बीर-आत्मा हूँ, जो अपने पैरों के झूते पर प्रकृति के विराट् उपवन की सैर के लिए उद्यत हुआ है। अगर मेरे माहुर और उत्साह ने यह कह साध्य यात्रा पूरी कर ली तो भद्र-मंसार मुझे सम्मान और शौर्य के मसनद पर बैठावेगा और अनन्त काल तक मेरी कीर्ति के राग बलापे जायेंगे। उस समय मेरा मस्तक इन्हीं विचारों से भरा हुआ था। और ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि सहली कठिनाइयों का सामना करने पर भी धैर्य ने मेरा साथ न छोड़ा और उत्साह के एक क्षण के लिए भी निरत्माह न हुआ।

मैं यहाँ ऐसे स्थानों में रहा हूँ, जहाँ निर्जनता के अतिरिक्त कोई हमरा साथी न था। यहाँ ऐसे स्थानों में रहा हूँ, जहाँ की पृथ्वी और आकाश हिम की शिलाएँ थी। मैं भयंकर अंतुओं के पहलू में सोया हूँ। पक्षियों के घोंमलों में रातें काटी हैं; चित्तु में सारी आवाहें कट गयीं और वह, समय अत्र दूर नहीं है, कि साहित्य और विज्ञान-समार मेरे चरणों पर सौंघ नवाये।

मैंने इस यात्रा में बड़े-बड़े अद्भुत दृश्य देखे और कितने ही जातियों के आहार-व्यवहार, रहन-सहन का अवलोकन किया। मेरा यात्रा-बुसांत, विचार,

अनुभव और निरीक्षण का एक अवलम्ब रहन होया। मैंने ऐमी-ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएँ आँवों में देखी हैं, जो अल्पकाल की कथाओं से कम मनोरंजनकारी होंगी। परन्तु वह घटना जो मैंने ज्ञानसरोवर के तट पर देखी, उसका उद्गारण मुश्किल में मिलेगा, मैं उसे कभी न भूलूँगा। यदि मेरे इस तथाम परिश्रम का उपज्जर यही एक श्रृंखला होता तो मैं उसे पर्याप्त समझता। मैं यह बताना देना आश्चर्यक समझता हूँ कि मैं मिथ्यावादी नहीं और न मिथियो तथा विभूतियों पर मेरा विश्वास है। मैं उस विद्वान् का भक्त हूँ जिसका आधार तर्क और न्याय पर है। यदि कोई दूसरा प्राणी यहाँ घटना मुझसे बखान करता तो मुझे उस पर विश्वास करने में बहुत संकोच होता, किन्तु मैं जो कुछ बयान कर रहा हूँ, वह गहरा घटना है। यदि मेरे इस आश्वासन पर भी कोई उत्तर पर अविश्वास करे, तो उसकी भानसिक दुर्बलता और विचारों की सकीर्णता है।

प्राण का मालवी वर्ष था और ज्येष्ठ का महीना। मैं हिमालय के दामन में ज्ञानसरोवर के तट पर हरी-हरी पान पर लेटा हुआ था, अनु व्यर्थ सुहावनों थी। ज्ञानसरोवर के स्वच्छ निर्मल जल में आकाश और पर्वत धेणी का प्रतिबिम्ब, जलपक्षियों का पानी पर तैरना, गुह्य हिमश्रृंखला का सूर्य के प्रकाश से चमकना आदि दृश्य ऐसे मनोहर थे कि मैं आत्मोन्मत्त में विलुप्त हो गया। मैंने स्विटजरलैंड और अमेरिका के बहुप्रसंगित दृश्य देखे हैं, पर उनमें यह शांतिप्रद सोभा नहीं। मानव बुद्धि ने उनके प्राकृतिक सौंदर्य को अपनी वृद्धिमत्ता से बरबाद कर दिया है। मैं तल्लीन हो कर इस स्वर्गीय आनन्द का उपभोग कर रहा था कि नहमा मेरी दृष्टि एक सिंह पर आ पड़ी, जो मशगल में कश्म बखाना हुआ मेरी ओर आ रहा था। उसे देखते ही मेरा खून मून गया, होम उड़ गये। ऐसा बृहदाकार भयंकर अनु मेरी नज़र से न गुज़र था। वहाँ ज्ञानसरोवर के अनिर्विकल कोई ऐसा स्थान नहीं था जहाँ भाग कर अपनी जान बचाता। मैं तैरने में कुशल हूँ, पर मैं ऐसा भयभीत हो गया कि अपने स्थान से हिल न गया। मैं अक-प्रत्यक्ष मेरे पात्र से बाहर थे। समझ गया कि मेरी जिंदगी यहाँ तक थी। इस घोर के पंने से बचने की कोई आशा न थी। अस्मान् मुझे स्मरण हुआ कि मेरी जेब में एक पिलौल गोलियाँ से भरी हुई रखी है, जो मैंने आत्मरक्षा के लिए बल्ले समय हाथ ले ली थी, और अब तक प्राणपण

मे इगकी रक्षा करना आया था। आश्चर्य है कि इनको देर तक मेरी स्मृति कहाँ सोयी रही। मैंने पुरत हो पिस्तौल निकाली और निकट था कि सेर पर बार बरस कि मेरे कानों में यह शब्द गुनायो दिये "मुनाफिर, ईश्वर के लिए बार न करना अन्यथा मुझे दुःख होगा। मिहिराज से मुझे हानि न पहुँचेगी।"

मैंने शक्ति हो कर पीछे को धोर देखा तो एक युवती रमणी आती हुई दिनायी थी। उसके हाथ में सोने का लोटा था और दूसरे में एक तदनरी। मैंने जर्मनी की दूरें और कोहकाफ को परियाँ देखी हैं; पर हिमाचल पर्वत की यह अम्परा मैंने एक ही बार देखा और उसका चित्र आज तक हृदय-गट पर लिखा हुआ है। मुझे स्मरण नहीं कि 'रफेल' या 'कोरेजियो' ने भी कभी ऐसी चित्र लीखा हो। 'बैडाइक' और 'रेमब्रांड' के आकृति चित्रों में भी ऐसी मनोहर छवि नहीं देखा। पिस्तौल मेरे हाथ में गिर पड़ी। कोई दूसरी शक्ति इस समय मुझे अपनी भगवत् परिस्थिति से विक्षिप्त न कर सकती थी।

मैं उस सुंदरी की ओर देख ही रहा था कि वह सिंह के पाम आयी। सिंह उगे देखने ही लडा हो गया और मेरी ओर सशक्त नेत्रों से देख कर मेरा को भ्रांति मर्जा। रमणी ने एक स्नाय निकाल कर उसका मुँह पोछा और फिर लोटे से दूध डँडेल कर उसके मागने रज किया। सिंह दूध पीने लगा। मेरे विस्मय की अव कोई मोया न थी। शक्ति था कि यह कोई निलिस्म है या जादू। व्यवहार-लोक में हूँ अथवा विचार-लोक में सोता हूँ या जागता। मैंने बहुधा मरकत्तों में गालतू घोर देखे हैं, किन्तु उन्हें काबू में रखने के लिए किम-किन रक्षा-विधानों में से काम लिया जाता है! उसके प्रतिकूल यह मासाहारी पशु उग रमणी के मम्सुल इस भ्रांति लेटा हुआ है मानो वह सिंह को योनि में कोई मृग-यावक है। मन में प्रश्न हुआ, सुंदरी ने कौन सा शक्तकारक शक्ति है जिसने सिंह को इस भ्रांति बन्धीमूत कर लिया है? क्या पशु भी अपने हृदय में कोमल और रसिक-भाव छिपाये रखते हैं? कहते हैं कि महुअर का अलाप काले नाग को भी मस्त कर देता है। जब ध्वनि में यह-सिद्धि है तो सौंदर्य की शक्ति-का अनुमान कौन कर सकता है। स्व-लालित्य संसार का सबसे-अमूल्य रत्न है, प्रकृति के रचना-नैपुण्य का सर्वश्रेष्ठ अंश है।

जब सिंह दूध पी चुका तो सुंदरी ने स्नाय से उसका मुँह पोछा और

उमका मिर अपने जाँघ पर रख उसे धपकियाँ देने लगी। मिह्र पूँछ हिलाता था और मुंदरी की अस्थिर हथेलियों को चाटना था। थोड़ी देर के बाद दोनों एक गुफा में अंतर्हित हो गये। मुझे भी धुन मवार हुई कि किनी प्रचार इस तिलिम्म को माँट्टे, इस रहस्य का उद्घाटन करे। जब दोनों अदृश्य हो गये तो मैं भी उठा और दबे पाँव उस गुफा के द्वार तक जा पहुँचा। भय मेरे शरीर की बोटी-बोटी काँप रही थी, मगर इस रहस्यपट को खोलने की उत्सुकता भय को दबाये हुए थी। मैंने गुफा के भीतर झाँका तो बना देखा कि पृथ्वी पर जरी का फर्श बिछा हुआ है और बारबोर्बा गावगविये लगे हुए हैं। मिह्र समनद पर गर्ब से बैठा हुआ है। मोले-बाँदी के पात्र, मुंदर चित्र, फूलों के गमले सभी अपने-अपने स्थान पर सजे हुए हैं, यह गुफा राजभवन की भी सज्जित कर रही है।

द्वार पर मेरी परछाईं देख कर वह मुंदरी बाहर निकल आयी और मुझसे बोली—“यात्री, तू कौन है और इपर क्यों कर आ निकला?”

किनी मनोहर ध्वनि थी। मैंने जबकी बार समीप से देखा तो मुंदरी का मुख कुम्हलारा हुआ था। उसके नेत्रों में निराशा झलक रही थी, उसके स्वर में भी कठग और व्या की लटक थी। मैंने उत्तर दिया—“देवी, मैं यूरोप का निवासी हूँ, यहाँ देगाटन करने आया हूँ। मेरा परम सौभाग्य है कि जारसे सम्भाषण करने का गौरव प्राप्त हुआ।” मुंदरी के मुलावने ओठों पर मधुर मुस्काह की झलक दिखायी दी, उसमें कुछ कुटिल हास्य का भी अंश था। बशर्तित यह मेरे इस अस्वाभाविक वाक्य-प्रगल्भी का चोतक था। “तू विदेश में यहाँ आया है। आतिथ्य-सत्कार हमारा कर्तव्य है। मैं आज तेरा निमंत्रण करती हूँ, स्वीकार कर।”

मैंने अवसर देख कर उत्तर दिया—“आपकी यह कृपा मेरे लिए गौरव की बात है; पर इस रहस्य ने मेरी भ्रम-व्याम बंद कर दी है। क्या मैं आशा करूँ कि आप इस पर कुछ प्रकाश डालेंगी?”

मुंदरी ने टंडी साँस से बर कहा—“मेरी रामकहानी विपत्ति की एक बड़ी कथा है; तुझे सुन कर दुःख होगा।” किन्तु मैंने जब बहुत आग्रह किया तो उसने मुझे फर्श पर बैठने का सकेत किया और अपना वृत्तान्त सुनाने लगी—



“मैं काश्मीर देश की रहनेवाली राजकन्या हूँ। मेरा विवाह एक राजपूत पौंड्रा ने हुआ था। उनका नाम मुनिह-देव था। हम दोनों बड़े आनंद से जीवन व्यतीत करते थे। संसार का सर्वोत्तम पदार्थ रूप है, दूसरा स्वास्थ्य और तोमरा घन। परमात्मा ने हमको ये दोनों ही पदार्थ प्रचुर परिमाण में प्रदान किये थे। खेद है कि मैं उनमें मुल्लाकात नहीं करा सकती। ऐसा साहसी, ऐसा सुंदर, ऐसा विद्वान् पुरुष मेरे काश्मीर में न था। मैं उनकी आराधना करती थी। उनका मेरे ऊपर अपार स्नेह था। कई वर्षों तक हमारा जीवन एक जलज्योत की भाँति वृक्ष-पुंजों और हरे-हरे भँसनों में प्रवाहित होता रहा।

मेरे पड़ोस में एक मंदिर था। पुजारी एक पंडित श्रीधर थे। हम दोनों प्रातःकाल तथा राध्या समय उस मंदिर में उपासना के लिए जाते। मेरे स्वामी कृष्ण के भक्त थे। मंदिर एक सुख्य मानर के तट पर बना हुआ था। वहाँ की परिष्कृत मंद समीर चित्त को पुलकित कर देती थी। इसीलिए हम उपासना के पश्चात् भी वहाँ घंटों वायु-मग्न करती रहते थे। श्रीधर बड़े विद्वान्, वैदों का ताता, शास्त्रों को जाननेवाले थे। कृष्ण पर उनकी भी अविचल भक्ति थी। समस्त काश्मीर में उनके पांडित्य की चर्चा थी। वह बड़े संयमी, संतोषी, आत्मजानी पुरुष थे। उनके नेत्रों में शांति की ज्योतिरेखाएँ निकलती हुई मालूम होती थी। सदैव परोपकार में मग्न रहते थे। उनकी वाणी ने कभी किसी का हृदय नहीं दुखाया। उनका हृदय नित्य परवेदना से पीड़ित रहता था।

पंडित श्रीधर मेरे पतिदेव से लगभग दस वर्ष बड़े थे; पर उनकी धर्मपत्नी विद्याधरी मेरी समवयस्क थी। हम दोनों सहोदरियाँ थी। विद्याधरी अत्यंत गंभीर, शांत प्रकृति की स्त्री थी। यद्यपि रंग-रूप में वह रानी थी, पर वह अपनी अवस्था से संतुष्ट थी। अपने पति को वह देवतुल्य समझती थी।

धायण का महीना था। आकाश पर काले-काले बादल भँडला रहे थे, मानो काजल के पर्वत उड़े जा रहे हैं। शरनों से दूध की धारें निकल रही थी और धारें और हरियाली छापी हुई थी। नन्ही-नन्ही फुहारें पड़ रही थी, मानो स्वर्ग से अमृत की बूँदें टपक रही हैं। जल की बूँदें फलों और पत्तियों के गले में पमक रही थी। चित्त को अभिलाषाओं से ज्वालातेवाला सपना घाया हुआ

था । यह वह समय है जब रमणियों को विदेशगामी प्रियतम की याद रखने लगती है, जब हृदय किसी से आलिप्त करने के लिए व्यग्र हो जाता है । जब सूनी सेज देख कर बलेजे में हूँ-सी उठती है । इसी क्षण में विरह की मारी वियोगिनियाँ अपनी बीमारी का बहाना करती हैं, जिसमें उसका प्रति उम्र देखने आवे । इसी क्षण में भाली की कन्या धानी माटी पहन कर बजारियों में अठिपानी हुई चम्पा और बेले के फूलों से आँचल भरती हैं, क्योंकि हार और गजरा की माँग बहुत बढ़ जाती है । मैं और विद्याधरी ऊपर छत पर बैठी हुई वर्षाक्षतु की बहार देख रही थी और बालिदास का जलजहार पट्टी थी कि इतने में मेरे प्रति ने आ कर कहा—“आज बड़ा सुहावना दिन है । झूला झूलने में बड़ा आनन्द आयेगा ।” भावन में झूला झूलने का प्रस्ताव करोकर वह बिया आ सकता था । इन दिनों प्रत्येक रमणी का चित्त आप ही आप झूला झूलने के लिए विकल हो जाता है । जब वन के वृक्ष झूला झूलने लगे, जल की तरंगें झूला झूलती हों और गगन-अङ्ग के मेघ झूला झूलते हों, जब सारी प्रकृति आन्दोलित हो रही हो तो रमणी का कोमल हृदय क्यों न चंचल हो जाय ! विद्याधरी भी राजी हो गयी । रसम की डोरियाँ वरम की दान पर पड़ गयीं, चदन का पटरा रख दिया गया और मैं विद्याधरी के साथ झूला झूलने चली । जिस प्रकार ज्ञानमयोंवर पवित्र जल में परिपूर्ण हो रहा है उसी भाँति हमारे हृदय पवित्र आनन्द से परिपूर्ण थे । किन्तु शोक ! वह कदाचिन् मेरे सीमावर्द्ध की अंतिम झलक थी । मैं झुके के पास पहुँच कर पटरे पर आ बैठी; किन्तु कोमलांगी विद्याधरी ऊपर न आ सकी । वह कई बार उषकी, परन्तु पटरे तक न आ सकी । तब मेरे पतिदेव ने सहाय देने के लिए उसकी बांह पकड़ी ली ! उस समय उनके नेत्रों में एक विचित्र तृष्णा की झलक थी और मुख पर एक विचित्र आनुराग । वह घीमे स्वरो में मन्हार गा रहे थे; किन्तु विद्याधरी जब पटरे पर आयी तो उसका मुख झुकते हुए सूर्य की भाँति लाल हो रहा था, नेत्र अरणवर्ण हो रहे थे । उसने पतिदेव की ओर क्रोधोन्मत्त हो कर कहा—

“तूने काम के बंध हो कर मेरे शरीर में हाथ लगाया है । मैं अपने पतिव्रत के बल से तुझे साथ देती हूँ कि तू दम्भी शपथ पनु हो जा ।”

यह कहते ही विद्याधरी ने अपने गले से ध्वाज की माला निकाल कर मेरे

‘पतिदेव के ऊपर फेंक दिया और उत्क्षेप’ हो पटरे के समीप पतिदेव के स्थान पर एक विशाल सिंह दिखलायी दिया ।

२

ऐ मुसाफिर, अपने प्रिय पतिदेवों की यह पनि देख कर मेरा रक्त मूल गया और कलेजे ‘पर विजली-सी आ गिरी । मैं विद्याधरी के पैरों में लिपट गयी और फूट फूट कर रोने लगी । उम समय अपनी आँखों में देख कर अनुगृह्य हुआ कि पतिव्रत की महिमा कितनी प्रबल है । ऐसी घटनाएँ मैंने पुराणों में पढ़ी थी, परंतु मुझे विश्वास न था कि वर्तमान काल में जबकि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में स्वार्थ की भाषा दिनों-दिन अधिक होती जाती है, पतिव्रत धर्म में यह प्रभाष होगा; परंतु यह नहीं कह सकती कि विद्याधरी के बिचार कहाँ तक ठीक थे । मेरे पति विद्याधरी को नईद बहिन कह कर संबोधित करते थे । यह अत्यंत स्वरूपवान् थे और रूपवान् पुरुष की स्त्री का जीवन बहुत सुखमय नहीं होता, पर मुझे उन पर संशय करने का अवसर कभी नहीं मिला । वह स्त्रीश्रत धर्म का वैसा ही पालन करते थे जैसे मनी अपने धर्म का । उनकी दृष्टि में कुचेष्टा न थी और विचार अत्यंत उज्ज्वल और पवित्र थे । यहाँ तक कि कामिद्रोह को शृंगारमय कविता भी उन्हें प्रिय न थी, मगर काम के मर्मभेदी वाणों में कौन बचा है ! जिस काम ने शिव, ब्रह्मा जैसे तपस्वियों की तपस्या भंग कर दी, जिस काम ने नारद और विश्वामित्र जैसे ऋषियों के माथे पर कलक का टीका लगा दिया, वह काम तब कुछ कर सकता है । सम्भव है कि मुरापाण ने उद्दीपक ऋतु के गाय मिक कर उनके चित्त को विचलित कर दिया हो । मेरा गुमान तो यह है कि यह विद्याधरी को केवल आनि थी । ओ कुछ भी हो, उसने घाप दे दिया । उम समय मेरे मन में भी उत्तेजना हुई, कि जिग शक्ति की विद्याधरी को गर्व है, क्या वह ध्वनि मुझमें नहीं है ? क्या मैं पतिव्रता नहीं हूँ ? किन्तु हाँ ! मैंने कितना ही चाहा कि घाप के शब्द मुँह में निकालूँ, पर मेरी अद्यावत बंद हो गयी । अखंड विश्वास जो विद्याधरी को अपने पतिव्रत पर था, मुझमें न था ? विश्वास ने मेरे प्रतिकार के आवेग को पात कर दिया । मैंने बड़ी दीनता के साथ कहा—बहिन तुमने यह क्या किया ?

विद्याधरी ने निर्दय हो कर कहा—मैंने कुछ नहीं किया। यह उसके कर्मों का फल है।

मैं—तुम्हें छोड़ कर और किसकी शरण जाऊँ, क्या तुम इतनी दया न करोगी ?

विद्याधरी—मैंने किये अब कुछ नहीं हो सकता।

मैं—देवि, तुम पातिव्रतधारिणी हो, तुम्हारे वाक्य की महिमा अपार है। तुम्हारा क्रोध यदि मनुष्य से पशु बना सकता है, तो क्या तुम्हारी दया पशु से मनुष्य न बना सकेगी ?

विद्याधरी—प्रायश्चित्त करो। इनके अतिरिक्त उधार का और कोई उपाय नहीं।

ऐ मुसाफिर, मैं राजपूत की कन्या हूँ। मैंने विद्याधरी से अधिक अनुनय-विनय नहीं की। उसका हृदय दया का आगार था। यदि मैं उसके घरणों पर पीस रख देती तो कदाचित् उसे भुज पर दया आ जाती; किन्तु राजपूत की कन्या इतनी अपमान नहीं सह सकती। वह घृणा के धाव सह सकती है, क्रोध की अग्नि सह सकती है, पर दया का मोक्ष उससे नहीं उठाया जाता। मैंने पट्टे से उतर कर पतिदेव के घरणों पर खिर मुकाया और उन्हें साथ लिंबे हुए अपने मकान चली आयी।

३।

वह महीने गुजर गये। मैं पतिदेव की सेवा-शुश्रूषा में तन मन से व्यस्त रहती। यद्यपि उनकी विज्ञा वाणीविहीन हो गयी थी, पर उनकी आकृति में स्पष्ट प्रकट होता था कि वह अपने कर्म से सज्जन थे। यद्यपि उनकी रूपांतर हो गया था; पर उन्हें वाक से अत्यंत पूजा थी। मेरी पशुशाला में सैकड़ों गायें भैंरें थीं, किन्तु दोरमिह ने कभी किसी की ओर आँख उठा कर भी न देखा। मैं उन्हें दोनों बेल दूध पिलाती और संध्या समय उन्हें साथ ले कर पहाड़ियों की ओर कशती। मेरे मन में न जाने क्यों और साहस का इतना संस्कार हो गया था कि मुझे अपनी दशा अगह्य न जान पड़ती थी। मुझे निश्चय था कि शीघ्र ही इस विपत्ति का अंत भी होगा।

दही जिनों हठिदार में भया स्नान का मेला लगा। मेरे नगर से दानियों

का एक समूह हरिद्वार चला । 'मैं भी उनके साथ हो ली ।' दीन-दुखीजनों को दान देने के लिए रुपयों और वस्त्रियों की बैलियाँ साथ ले ली । मैं प्राप्रचित्त करने जा रही थी, इसलिए पैदल ही यात्रा करने का निश्चय कर लिया । लगभग एक महीने में हरिद्वार जा पहुँची । यहाँ भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत से असंख्य यात्री आते हुए थे । संन्यासियों और तपस्वियों की संख्या गृहस्थों से कुछ ही कम होगी । पुर्वशास्त्रों में रहने का स्थान न मिलता था । गंगातट पर, पर्वतों की गोद में, मैदानों के वन-स्वल पर, जहाँ देखिए आदमी ही आदमी नजर आते थे । दूर से वह छोटे-छोटे खिलौने की भाँति दिखायी देते थे । मीलों तक आदमियों का कर्त-सा विछा हुआ था । भजन और कीर्तन की ध्वनि नित्य कानों में आती रहती थी । हृदय में असीम शुद्धि गंगा की लहरों की भाँति लहरें मारती थी । वहाँ का जल, वायु, आकाश सब शुद्ध था ।

मुझे हरिद्वार आते तीन दिन व्यतीत हुए थे । प्रभात का समय था । मैं गंगा में खड़ी स्नान कर रही थी । सहसा मेरी दृष्टि ऊपर की ओर उठी तो मैंने किसी आदमी को पुल की ओर हाँकते देखा । अकस्मात् उस मनुष्य का पाँव ऊपर उठ गया और संकड़ों गज की ऊँचाई से गंगा में गिर पड़ा । सहसा मैंने यह दृश्य देख रही थी, पर किसी का साहस न हुआ कि उस अभागि मनुष्य की जान बचावे । भारतवर्ष के आतिरेक ऐसा सहवेदना शून्य और कौन देश होगा और यह वह देश है जहाँ परमार्थ मनुष्य का कर्तव्य बताया गया है । लोग बैठे हुए अंगुओं की भाँति समाधा देख रहे थे । सभी हतबुद्धि से हो रहे थे । धारा प्रबलबल से प्रवाहित थी और जल रफ से भी अधिक शीतल । मैंने देखा कि वह धारा के साथ बहता चला जाता था । यह हृदय-विदारक दृश्य मुझसे न देखा गया । मैं तैरने में अभ्यस्त थी । मैंने ईश्वर का नाम लिया और मन को दृढ़ करके धारा के साथ तैरने लगी । ज्यों-ज्यों मैं आगे बढ़ती थी, वह मनुष्य मुझसे दूर होना जाता था । वहाँ तक कि मेरे गले अंग ठंड से झुगुग हो गये ।

मैंने कई धार धट्टालों को पकड़ कर बस लिया, कई धार पथरों से टकरायी । मेरे हाथ ही न छूटते थे । माथे की रफ का डंका मारा हुआ था । मेरे अंग ऐसे गतिहीन हो गये कि मैं धारा के साथ बहने लगी और मुझे विदवा

हो गया कि गंगामाता के उदर ही मैं मेरी जल-समाधि होगी। अकस्मात् मैंने कम पुष्प की लात को एक चट्टान पर टकते देखा। मेरा होमला बँध गया। शरीर में एक दिचित्र स्फूर्ति का अनुभव हुआ। मैं जोर लगा कर प्राणपण से कम चट्टान पर जा पहुँची और उसका हाथ पकड़ कर खींचा। मेरा कलेजा धक्के से हो गया। यह शोधर पंक्ति ये।

ऐ मुसाफिर, मैंने यह नाम प्राणों की हथेली पर रख कर पूरा किया। जिस समय मैं पंडित शोधर की अर्ध मूत्र देह लिये गट पर आयी तो सहस्रों मनुष्यों की जयध्वनि से अज्ञात गुँज उठा। कितने ही मनुष्यों ने मेरे चरणों पर मिर झुकाये। अभी लोग शोधर को होश में आने के उपाय कर ही रहे थे कि विद्याधरी मेरे सामने आ कर खड़ी हो गयी। उसका मुख, प्रभात के चंद्र की भाँति कातिहीन हो रहा था, होठ सूखे हुए, बाल बिखरे हुए। आँतों से जामुओं की झड़ो लगी हुई थी। वह जोर से हाँफ रही थी, दौड़ कर मेरे पैरों से चिमट गयी, किन्तु शिल धौल कर नहीं निर्मल भाव में नहीं। एक आँखें गर्व से भरी हुई थीं और दूसरे की मग्नता से धुकी हुई। विद्याधरी के मुँह से बात न निकलती थी। केवल इतना बोली—‘बहिन, ईश्वर तुमको इस सत्यकार्य का फल दें।’

४

ऐ मुसाफिर, यह क्षणकामना विद्याधरी के अंतःस्वयल में निकली थी। मे उसके भुँज से यह आशीर्वाद मुन कर फूली व ममायी। मुझे विस्वाम हो गया कि अबकी बार जो मैं अपने मकान पर पहुँचूँगी तो पतिदेव मुस्कराते हुए मुझसे गले मिलने के लिए द्वार पर आने। इस विचार से मेरे हृदय में गुदगुदी-भी होने लगी। मैं शीघ्र ही स्वदेश को चल पड़ी। उत्कंठा मेरे कदम बढ़ाये जाती थी। मैं दिन में भी चलती और रात को भी चलती, भयर दूर भक्ता ही न जानते थे। यह आशा कि वह मोहनी मूर्ति द्वार पर मेरा स्वागत करने के लिए तड़ी होगी, मेरे पैरों में भर-सा लगाये हुए थी। एक गहने की मजिल मैंने एक गप्ताह में तय की। पर शोक। जब मकान के पास पहुँची, तो उस पर को देस कर दिल बँठ गया और हिम्मत न पड़ी कि अंदर कदम रखूँ। मैं चौकट पर बैठ कर देर तक विचार करती-रही। न किसी नौकर का पता,

न कहीं, पाले हुए पशु ही -दिखायी देते थे। द्वार पर घूल उड़ रही थी। जान पड़ता था कि पक्षी घोंसले से उड़ गया है, नलेजे पर पत्थर की गिल रख कर भीतर गयी तो क्या देखती हूँ कि मेरा प्यारा मिह आंगन में मोटी-मोटी जंजीरो से बँधा हुआ है। इतना दुर्बल हो गया है कि उसके कूल्हों की हड्डियाँ दिखायी दे रही है। ऊपर-नीचे जिघर देखती थी, उल्लास-सा मालूम होता था। मुझे देखते ही शेरसिंह ने पूँछ हिलायी और महसा उनकी आँखें दीपक की भाँति चमक उठीं। मैं दौड़ कर उनके गले से छिपट गयी, समझ गयी कि नौकरो ने दगा की। घर की सामग्रियों का कहीं पता न था। सोने-चाँदी के बहुमूल्य पात्र, फर्श आदि सब गायब थे। हाय ! हमारे मेरे आभूषणों की संदूक भी उठा ले गये। इस अपहरण ने मुसीबत का प्याला भर दिया। शायद पहले उन्होंने शेरसिंह को जकड़ कर बाँध दिया होगा, फिर खूब दिल खोल कर मोच-बमोट की होगी। कौसी बिडम्बना थी कि धर्म लूटने गयी थी और धन नुदा बैठे। सखिता ने पहली बार अपना भयंकर रूप दिखाया।

ऐ मुसाफिर, इन प्रकार लुट जाने के बाद वह स्थान आँखों में जटि की तरह खटकने लगा। यही वह स्थान था, जहाँ हमने आनंद के दिन काटे थे। इन्हीं ग्यारहियों में हमने जूनों की भाँति कलोल बिसे थे। प्रत्येक वस्तु से कोई न कोई स्मृति सम्बन्धित थी। उन दिनों की याद करके आँखों से रक्त के आँसू बहने लगते थे। वसंत की ऋतु थी, और की महक से वायु सुगंधित हो रही थी। महुए के वृक्षों के नीचे परियों के भ्रमन करने के लिए मोतियों की शय्या बिछी हुई थी, करोंदों और नींबू के फूलों की सुगंधि से जित प्रसन्न हो जाता था। मैंने अपनी जन्म-भूमि को सदैव के लिए त्याग दिया। मेरी आँखों से आँसुओं की एक बूँद भी न गिरी। जिस जन्म-भूमि की याद यावज्जीवन हृदय को व्यथित करती रहती है, उससे मैंने जो मुँह थोड़ा किया मानो कोई बंदी कारागार में मुक्त हो जाय। एक सप्ताह तक मैं चारों ओर भ्रमण करके अपने भावी निवासस्थान का निदेष्य करती रही। अंत में सिंधु नदी के किनारे एक निर्जन स्थान मुझे पसंद आया। यहाँ एक प्राचीन मंदिर था। शायद किमी समय में वहाँ देवताओं का वास था; पर दूर समय यह विलकुल उजाड़ था। देवताओं ने करल को विजय किया हो; पर समय-

चक्र की नहीं। शनै-शनै, मुझे ईश स्थान से प्रेम हो गया और वह स्थान पयिकों के लिए धर्मशाला बन गया।

मुझे यहाँ रहते तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। वर्षा ऋतु में एक दिन संध्या के समय मुझे मंदिर के सामने से एक पुरुष छोटे पर गवार जाता दिखायी दिया। मंदिर से प्रायः दो सौ गज की दूरी पर एक रमणीक गागर था, उसके किनारे चना-अंशों के झुरमुट थे। वह सवार उस झुरमुट में जा कर अदृश्य हो गया। अंधकार बढ़ता जाता था। एक क्षण के बाद मुझे उस ओर किमी मनुष्य का चीत्कार सुनायी दिया, फिर बंदूकों के शब्द सुनायी दिये और उसकी ध्वनि में पहाड़ गूँज उठा।

ऐ मुमाकिर, यह दृश्य देख कर मुझे किमी भीषण घटना का सबेह हुआ। मैं तुरंत उठ खड़ी हुई। एक कटार हाथ में ली और उस गागर की ओर चल दी।

अब भूगलापार वर्षा होने लगी थी, मानों आग के बाद फिर कमी न बरसेगा। रह-रह कर गर्जन की ऐसी अचक ध्वनि उठनी थी, मानों सारे पहाड़ आग में टकरा गये हों। बिजली की चमक ऐसी तीव्र थी, मानों मसार-अग्नी प्रकाश मिम्ट कर एक हो गया हो। अंधकार का यह हाल था मानों महलों अभावस्था की रातें गले मिल रही हो। मैं कमर तक पानी में डूबती दिल् की मन्हाले हुए आगे बढ़ती पाती थी। अंत में सागर के समीप आ पहुँची। बिजली की चमक ने दीपक का काम किया। सागर के किनारे एक बड़ी-सी गुंफा थी। इस समय उस गुंफा में मे प्रकाश-ज्योति बाहर आती हुई दिखायी देती थी। मैंने भीतर की ओर जीता-तो क्या देखनी है कि एक बड़ा अलाव जल रहा है। उसके चारों ओर बहंत में आदमी खड़े हुए हैं और एक स्त्री आग्नेय नेत्रों से धूर-धूर कर कह रही है, "मैं अपने पति के साथ उसे भी जला कर भस्म कर दूँगी।" मेरे कुतूहल की कोई सीमा न रही। मैंने साँम बढ़ कर ली और हतबुद्धि की भाँति यह कौतुक देखने लगी। उस स्त्री के सामने एक रत्न से लिपटी हुई लाश पड़ी थी और लाश के समीप ही एक मनुष्य रस्मियों से घेरा हुआ सिर झुकाये बैठा था। मैंने अनुमान किया कि यह वही अस्वारोही पयिक है, जिण पर इन दाँतुओं ने आघात किया था। यह शव गोकुल मरदार



का है और यह स्त्री डाकू की पत्नी है। उसके सिर के बाल बिखरे हुए हैं और आँखों से आँसू निकल रहे थे। हमारे चित्रकारों ने क्रोध को मुख्य, कल्पित किया है। मेरे विचार में स्त्री का क्रोध इतने कहीं घातक, नहीं विध्वंसकारी होता है। क्रोधोन्मत्त होकर कोमलांगी सुंदरी ज्वालाखिनर बन जाती।

उस स्त्री ने दाँत पीस कर कहा "मैं अपने पति के साथ उसे भी जला कर भस्म कर दूँगी।" यह कह कर उसने उस रस्सियों के बंधे हुए मुख्य को घसीटा और दहकती हुई चिता में छाल दिया। आह! कितना भयंकर, कितना रोमांचकारी दृश्य था। स्त्री ही अपनी ड्रेप की अग्नि घात करने में इतनी पिशाचिणी हो सकती है। मेरा रक्त सौलने लगा। अब एक क्षण भी विलम्ब करने का अवसर न था। मैंने कटार खींच ली, डाकू चौंक कर तितर-बितर हो गये, समझे मेरे साथ और छोड़ भी होंगे। मैं बेचडक चिता में घुस गयी और क्षणमात्र में उस अभागिनी मुख्य को अग्नि के मुख से निकाल लायी। अभी केवल उसके वस्त्र ही जले थे। जैसे सर्प अपना शिकार छिन जाने से फुफकारता हुआ लपकता है, उसी प्रकार गरजती हुई लपटें मेरे पीछे खड़ी। ऐसा प्रतीत होता था कि अग्नि भी उसके रक्त को प्यासी हो रही थी।

इतने में डाकू, सम्हल गये और आहत सरदार की पत्नी पिशाचिणी की भाँति गूँह खोले मुख पर झपटी। समीप था कि ये हत्यारे मेरी थोड़ियाँ फर दें कि, इतने में गुफा के द्वार पर मेघ गर्जन की-नी ध्वनि सुनायी दी और गेरुमिश्र रौद्ररूप धारण किये हुए भीतर पहुँचे। उसका भयंकर रूप देखते ही डाकू अपनी-अपनी जान ले कर भागे। केवल डाकू सरदार की पत्नी स्तम्भित-सी अपने स्थान पर खड़ी रही। एकाएक उसने अपने पति का शव उठाया और उसे ले कर चिता में बैठ गयी। देखते-देखते उसका भयंकर रूप अग्नि-ज्वाला में विलीन हो गया। अब मैंने उस बंधे हुए मनुष्य की ओर देखा तो मेरा हृदय उछल पड़ा। यह पंडित श्रीधर थे। मुझे देखते ही फिर मुखा लिंगा और रोने लगे। मैं उनके समाचार पूछ ही रही थी कि उसी गुफा के एक कोने से कितों के कराहने का शब्द सुनायी दिया। जा कर देखा तो एक सुंदर युवक रक्त से लथपथ पड़ा था। मैंने उसे देखते ही पहचान लिया। उसका पुरपुरेण उसे लिगा न मना। यह विचारते थी। 'मेरी' के वस्त्र उस पर गूथ

‘मजने थे । वह लम्बा और ग्यानि की मूर्ति बनो हुई थी । वह पैरों पर गिर पड़ी, पर मुँह में कुछ न बोली ।

उम गुफा में घन भर भी छहरना अत्यंत सबाप्रद था । न जाने कब डाकू फिर सशस्त्र हो कर आ जायें । ऊपर चित्तानि भी सात होने लगी और उम मनी की भीषण बाग अत्यंत नेत्र रूप धारण करके हमारे नेत्रों के सामने ताडव प्रीक्षा करने लगी । मैं बड़ी चिंता में पड़ी कि इन दोनों प्राणियों को कैसे वहाँ से निकालूँ । दोनों ही ग्लान से बुर थे । चोरमिह ने मेरे मममंजम को ताड लिया । रूपानर हो जानें के बाद उनकी कुठि बड़ी तीव्र हो गयी थी । उन्होंने मुझे संकेत किया कि दोनों को हमारी पीठ पर बिठा दो । पहले तो मैं उनका आशय न समझी, पर जब उन्होंने संकेत को बार-बार दुहराया तो मैं समझ गयी । गूंगों के पगवाले ही गूंगों की भाँति खूब समझते हैं । मैंने पंडित श्रीधर को मोद में उठा कर चोरमिह को पीठ पर बिठा दिया । उनके पीछे विद्याधरी को भी बिठाया । नन्हा बालक भालु की पीठ पर बैठ कर जितना करता हूँ, उसमें बड़ी ग्यादा वह दोनों प्राणी भयभीत हो रहे थे । चित्तानि ने श्रीग प्रकाश में उनके भयजिबुन मुख देख कर करुण विनोद होता था । भालु मैं इन दोनों प्राणियों को साथ ले कर गुफा में तिकमी और फिर उमी तिमिरमाग को पार करके मशिर आ पहुँची ।

मैंने एक गुफा तक उनका यहाँ यथावकित मेवा-सत्कार किया । जब वह भली-भाँति स्वस्थ हो गई तो मैंने उन्हें विदा किया । ये स्त्री-पुरुष कई आदमियों के साथ टेली जा रहे थे, वहाँ के राजा पंडित श्रीधर के निप्य हैं । पंडित श्रीधर का घोड़ा आगे था ! विद्याधरी मवारी का अम्वास न होने के कारण पीछे थी, उनके दोनों रक्षक भी उनके साथ थे । जब डाकूओं ने पंडित श्रीधर को घेर और पंडित ने पिम्पौल में डाकू सरदार को गिराया तो कोलाहल, मुन-कर विद्याधरी ने घोड़ा बड़ाया । दोनों रक्षक तो जान ले कर भागे, विद्याधरी को डाकूओं ने पुरय समझ कर भागल कर दिया और तब दोनों प्राणियों को बाँध कर गुफा में डाल दिया । सोप दाने मैंने अपनी आँखें देखी । यद्यपि यहाँ से विदा होते समय विद्याधरी का रोम-रोम मुझे आशीर्वाद दे रहा था । पर हाँ ! अभी प्रायश्चित्त पूरा न हुआ था । इतना आत्म-समर्पण करके भी मैं सफल मनोरथ न हुई थी ।

५

ऐं मुसाफिर, उस प्रात में अब मेरा रहना कठिन हो गया । ठाकू बंदूकें लिये हुए शेरसिंह की तलाश में घूमने लगे । विवश हो कर एक दिन मैं वहाँ से चल खड़ी हुई और दुर्गम पर्वतों को पार करती हुई यहाँ आ निकली । यह स्थान मुझे ऐसा पसंद आया कि मैंने इस युद्ध को अपना घर बना लिया है । आज पूरे सौत, बर्ष गुजरे जब मैंने पहले-पहल ज्ञानसरवर के दर्शन किये । उन समय भी यही अश्रु थी । मैं ज्ञानसागर में पानी भरने गयी हुई थी, गहमा क्या बेखती है कि एक युवक मुझी घोड़े पर सवार रत्न जटित आभूषण पहने, हाथ में चमरता हुआ भाला लिये खड़ा आता है । शेरसिंह को देव कर वह ठिठका और भाला सम्हाल कर उन पर चार कर बैठा । शेरसिंह की भी क्रोध आया । उनके गरज की ऐसी गगनभेदी ध्वनि उठी कि ज्ञान-मरीचर का जल आघोषित हो गया और तुरंत घोड़े में भीच कर उसकी छाती पर पंजे रख दिये । मैं घड़ा छोड़ कर दौड़ी । युवक का प्राणात होनेवाला ही था कि मैंने शेरसिंह के गले में हाथ डाल दिये और उनका मिर महुला कर क्रोध शान किया । मैंने उनका ऐसा भयंकर रूप कभी नहीं देखा था । मुझे स्वयं उनके पाम जाते हुए डर लगता था, पर मेरे मृदुवचनों ने अंत में उन्हें वशीभूत कर लिया, वह अलग सटे हो गये । युवक की छाती में गहरा घाव लगा था । उसे मैंने दती, गुफा में ला कर रखा और उसकी मरहम-बट्टी करने लगी । एक दिन मैं कुछ आवश्यक वस्तुएँ लेने के लिए उन कस्बे में गयी जिनके मंदिर के कालन यहाँ से दिखायी दे रहे हैं, मगर वहाँ सब दुबाने बंद थी । बाजारों में श्राक उड़ रही थी । चारों ओर सिखाया छाया हुआ था । मैं बहुत देर तक धर-धर घूमती रही, किन्ती मनुष्य की मूरत भी न दिखायी देती थी कि उसमें वहाँ का सब समाचार पूछूँ । ऐसा विरहित होना था, मानो यह जड़त्व जीवों की वस्ती है । सोच ही रही थी कि वापस चन्द्र कि घोड़ों के टापों की ध्वनि कानों में आयी और एक क्षण में एक स्त्री मिर-ने पैर तक थाले वस्त्र धारण किये, एक काले घोड़े पर सवार आती हुई दिगामी दी । उसके पीछे कई गरार और प्यादे काली बर्दियाँ पहने आ रहे थे । अकस्मात् उन सवार स्त्री की दृष्टि मुझ पर पड़ी । उसने घोड़े को एड, लगाया और मेरे विषट आकर कर्कश

स्वर में बोली—“तू कौन है?” मैंने निर्भीक भाव से उत्तर दिया—“मैं भानुगरोवर के सट पर रहती हूँ। यहाँ बाजार में कुछ सामग्रियाँ लेने जायी थी; किन्तु तहर में किंगी का पत्रा नहीं।” उम स्त्री ने पीछे की ओर देत कर कुछ सकेन किया और दो मबारो ने जाये वड कर मुते पकड लिया और मेरी बाहो में रम्मियां डाल दी। मेरे गमस में न जाता था कि मुझे किंग अपराध का दंड दिया जा रहा है। बहुत मूछने पर भी किनी ने मेरे प्रश्नों का उत्तर न दिया। हाँ, अन्तान में यह प्रकट हुआ कि यह स्त्री यहाँ का रानी है। मुझे अपने विषय में तो कोई चिन्ता न थी पर चिन्ता थी शेरगिहू की, यह भकेले घबरा रहे होंगे। भोजन का समय आ पहुँचा, कौन मिलानेवा। किंग विपत्ति में फँसी। नही मालूम विपत्ति सब मेरी क्या दुर्गति करने। मुझ अभागिन को इस दशा में भी घाति नहीं। दूसरी मन्त्रि विचारो में मग्न में मबारो के साथ आये घटे तक चालती रही कि सामने एक ऊँची पहाड़ी पर एक विशाल भवन दिखायी दिया। ऊपर चढ़ने के लिए पत्थर काट कर चौड़े जीने बनाने गये थे। हम लोग ऊपर चढ़े। वहाँ सैकड़ों ही आरती दिगायी दिये, किन्तु सबके-सब काले वस्त्र धारण किये हुए थे। मैं जिस कमरे में जा कर रुकी गयी, वहाँ एक कुशागल के अतिरिक्त मशवः का और सामान न था। मैं जमीन पर बैठ कर अपने नसीब को रोने लगी। जो कोई यहाँ जाता था, मुझ पर वरुण दृष्टिगत करके लुपचाप चला जाता था। थोड़ी देर में रानी सादृश था कर उमी कुशागल पर बैठ गयी यद्यपि उनकी अवस्था पचाम वर्ष में अधिक थी; परन्तु मुझ पर अद्विष्ट काँति थी। मैंने अपने स्थान में उठ कर उनका सम्मान किया और हाथ बांध कर अपनी किम्मत का फैमला मुनने के लिए मही हो गयी।

६

ऐ भुमादित, रानी महोदया के तैवर देख कर पहले तो मेरे प्राण सूख गये किन्तु जिस प्रकार चदन जैसी कठोर वस्तु में मनोहर गुणधि छिपे होती है, उसी प्रकार उनकी वर्तनता और कठोरता के नीचे मोम के सदृश हृदय छिपा हुआ था। उनका प्यारा पुत्र थोड़े ही दिन पहले युवावस्था ही में दगा दे गया था। उमी के शोक में गारा घर भर मातम मना रहा था। मेरे चढ़ने जाने का कारण यह था कि मैंने काले वस्त्र क्यों न धारण किये थे। यह वृत्तात धुन कर मैं समझ

गयी कि जिन राजकुमार का शोक मनाया जा रहा है वह वही युवक है जो मेरी मुफ्त में गढ़ा हुआ है। मैंने उनसे पूछा, 'राजकुमार मुस्की थोड़े पर तो मवार नहीं थे ?'

रानी—हाँ, हाँ मुस्की थोड़ा था। उसे मैंने उनके लिए अरब देश से मँगवा दिया था। क्या तूने उन्हें देखा है ?

मैं—हाँ, देखा है।

रानी ने पूछा—कब ?

मैं—जिस दिन वह शेर का शिकार खेलने गये थे।

रानी—क्या तेरे सामने ही शेर ने उन पर चोट की थी ?

मैं—हाँ, मेरी आँखों के सामने।

रानी उत्सुक हो कर लड़ी हो गयी और बड़े दीन भाव से बोली—तू उनकी प्राण का पता लगा सकती है ?

मैं—ऐसा न कहिए, वह अमर हो। वह दो सप्ताहों से मेरे यहाँ मेहमान है।

रानी हर्षमय आश्चर्य में बोली—मेरा रणवीर जीवित है ?

मैं—हाँ, अब उनमें चलने-फिरने की शक्ति आ गयी है।

रानी मेरे पैरों पर गिर पड़ी।

तीसरे दिन अर्जुन नगर की कुछ और ही शोभा थी। वायु आनंद के मधुर स्वर से गूँजती थी, दुकानों ने फूलों का हार पहनाया, बाजारों में आनंद के उत्सव मनाये जा रहे थे। शोक के नीले बस्तियों को अगह नैसर का सुहावना रंग बसाई दे रहा था। इधर सूर्य ने उषा-भागर से सिर निकाला। उधर मलामियाँ दगनी आरम्भ हुई। आगे-आगे मैं एक सज्जा घोड़े पर सवार आ रहा था और पीछे राजकुमार का हाथी मुनहरे झूलों से सजा चला आता था। स्त्रियों अटारियों पर, मंगल के गीत गाती थीं और पुष्पों की वृष्टि करती थी। राज-महल के द्वार पर रानी मोतियों से आँचल-जरे गर्दी थी, जो ही राजकुमार हाथी के उत्तरे; वह उन्हें गोद में लेने के लिए सीढ़ी और छाती से लगा लिया।

३

ऐ मुसाफिर, आनंदोत्सव समाप्त होने पर जब मैं बिदा होने लगे, तो रानी महोदया ने सज्जल नयन हो कर कहा—

“बेटो, तूने मेरे साथ जो उपकार किया है उसका फल तुझे भगवान् देगे । तूने मेरे राज-वंश का उद्धार कर दिया, नहीं तो कोई पितरों को जल देनेवाला भी न रहता । मैं तुझे कुछ बिदाई देना चाहती हूँ, वह तुझे स्वीकार करनी पड़ेगी । अगर रणघोर मेरा पुत्र है, तो तू मेरी पुत्री है । तूने हो रणघोर को प्राणदान दिया है, तूने ही इस राज्य का पुनरुद्धार किया है । इसलिए इस माया-बंधन से मेरा गला नहीं छूटेगा । मैं अर्जुननगर का प्रांत जगहार-स्वरूप तेरी भेंट करनी हूँ ।”

रानी की यह असीम उदारता देख कर मैं दग रह गयी । कलियुग में भी कोई ऐसा दानी हो सकता है, इसकी मुझे आशा न थी । यद्यपि मुझे धन-भोग की लालसा न थी, पर केवल इस विचार से कि कदाचित् यह सम्पत्ति मुझे अपने भाइयों की सेवा करने की सामर्थ्य दे, मैंने एक जागीरदार की निम्नेदायिता अपने मिर ली । तब से दो वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, पर भोग-विलास मेरे मेरे मन को एक क्षण के लिए भी चंचल नहीं किया । मैं कभी पलंग पर नहीं सोयी । स्त्री-मूर्खों वस्तुओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाया । पति-वियोग की दशा में स्त्री तपस्विनी हो जाती है, उसकी वासनाओं का अंत हो जाता है, मेरे पास नई विद्यालय भवन है, कई रमणीक वाटिकाएँ हैं, विषय-व्यसन की ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो प्रचुर मात्रा में उपस्थित न हो, पर मेरे लिए वह सब त्याग्य है । भवन भूने पड़े हैं और वाटिकाओं में, खोसने से भी हरियाली न मिलेगी । मैंने उनकी ओर कभी आँस-उठा कर भी न देखा । अपने प्राणाधार के घरणों में लगे हुए । मुझे अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं है । मैं, निश्च-प्रति अर्जुननगर, जानी हूँ और रियासत के आवश्यक काम काम करके लौट आती हूँ । नीकर चाकरी को-कड़ी आज्ञा दे दी गयी है कि मेरी शालि में शरफ न ही । रियासत की सम्पूर्ण आय गुरोपकार में व्यय होगी है । मैं उसकी कोशे, भी अपने स्वर्ण में नहीं लाती । आपको अवकाश हो तो आप मेरी रियासत का प्रवर्ष देख कर बहुत प्रसन्न होंगे । मैंने इन दो वर्षों में बीस बड़े बड़े तालाब बनवा दिये हैं और पालीस गोखलाएँ बनवा दी हैं । मेरा विचार है कि अपनी रियासत में गहरो का ऐसा जाल बिछा दूँ जैसे शरीर में नाडियों का । मैंने एक तो कुछ लक्ष वेध निरूपण कर दिये हैं जो ग्रामों में विचरण करें और रोग

की निवृत्त करें। मेरा कोई ऐसा ग्राम नहीं है जहाँ मेरी ओर से सफाई का प्रबंध न हो। छोटे-छोटे गाँवों में भी आपको लालटेन जलती हुई मिलेगी। दिन का प्रकाश ईश्वर देता है, रात के प्रकाश की व्यवस्था करना राजा का कर्तव्य है। मैंने सारा प्रबंध पंडित थोघेर के हाथों में दे दिया है। सबसे प्रथम कार्य जो मैंने किया वह यह था कि उन्हें ढूँढ़ निकालें और यह मोर उनके सिर रख दें। इस विचार से नहीं कि उनका सम्मान करना मेरा अभिष्ट था, बल्कि मेरी दृष्टि में कोई अल्प-पुरुष ऐसा कर्तव्य-वराण, ऐसा निस्पृह, ऐसा सन्नरिज न था। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह यावज्जीवन रियासत की बागडोर अपने हाथ में रखेंगे। विद्याधरी भी उनके साथ है। वही शांति और सतोष की मूर्ति, बही धर्म और व्रत की देवी। उसका पतिव्रत अब भी ज्ञानसरोवर की भाँति अपार और अथाह है। यद्यपि उनका मोदय-मूर्य अब मय्याह पर नहीं है, पर अब भी वह रनिवास की रानी जान पड़ती है। चिंतार्जुन ने उसके मुख पर शिकन बाल दिये हैं। हम दोनों कभी-कभी मिल जाती है। किंतु बातचीत की नौबत नहीं आती। उसकी आँखें झुंक जाती हैं। मुझे देखते ही उसके ऊपर पड़ो पानी पड़ जाता है और उसके माँसे के जलबिंदु दिखाई देने लगते हैं। मैं आपसे सत्य कहती हूँ कि मुझे पिछाचर से कोई शिकायत नहीं है। उसके प्रति मेरे मन में दिनोदिन प्रेमा और भक्ति बढती जाती है। मैं उसे देखती हूँ, तो मुझे प्रबल उत्कंठा होती है कि उसके पैरों पर बैठूँ। पतिव्रता स्त्री के दर्शन बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। पर केवल इस भय से कि कदाचित् वह इसे मेरी खुशामद समझे, रुक जाती हूँ। जब मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अपने स्वामी के चरणों में पड़ी रहूँ और जब इस संसार से प्रस्थान करने का समय आये तो मेरा मस्तक उनके चरणों पर हो। और अंतिम जो शब्द मेरे मुँह से निकलें वह यही कि—“ईश्वर, दूसरे जन्म में भी इसकी चेरी बनाना।”

पाठक, उम सुंदरी का जीवन-वृत्तांत सुन कर मुझे जितना कुतूहल हुआ वह अकथनीय है। होद है कि जिस जाति में ऐसी प्रतिभाशालिनी देखिया उत्पन्न हो उम पर पाश्चात्य के कल्पनाशील, विश्वासहीन पुरुष उगलियाँ उठावें? समस्त यूरोप में एक भी ऐसी सुंदरी न होनी जिससे इसकी तुलना की जा सके। हमने स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को सांसारिक सम्बन्ध समझ रखा है। उसका आध्यात्मिक

रूप हमारे विचार से कौमों दूर है। यही कारण है कि हमारे देश में शताब्दियों की उन्नति के पश्चात् भी पतिव्रता का ऐसा उज्ज्वल और अलौकिक उदाहरण नहीं मिल सकता और दुर्भाग्य से हमारी सम्प्रदाय ने ऐसा मार्ग ग्रहण किया है कि कदाचित् दूर भविष्य में भी ऐसी देवियों के जन्म लेने की सम्भावना नहीं है। जर्मनी को यदि अपनी सेना पर, फ्रांस को अपनी विलासिता पर और इङ्ग्लैंड को अपने वाणिज्य पर गर्व है तो भारतवर्ष को अपने पतिव्रतों का धर्म है। क्या यूरोप निवासियों के लिए यह कल्पना की बात नहीं है कि होम्स और ब्रिजल, डैट और गेटी, मेकमपियर और ह्यूमो जैसे उष्णकोटि के कवि-एक भी भीना या माबिनी को रचना न कर सके। वास्तव में यूरोपीय समाज ऐसे आदर्शों से वंचित है।

मैंने दूगर दिन मानमरोवर से बड़ी अनिच्छा के साथ विरा मांगी और यूरोप को चला। मेरे मोटने का समाचार पूर्व ही प्रकाशित हो चुका था। जब मेरा अहाज ईम्बरग के बंदर में पहुँचा तो सद्यों गर-गारो, सैकड़ों विद्वान् और राज-कर्मचारी मेरा अभिवादन करने के लिए खड़े थे। मुझे देखते ही सलियाँ बबने लगी, रुमाक और टोप हवा में उछलने लगे और वही से मेरे पर तक जिम समारोह से जुलूम निबला उस पर किसी राष्ट्रपति को भी गर्व हो सकता है। संध्या समय मुझे कैसर की मेज पर भोजन करने का सीमाग्य प्राप्त हुआ। कई दिनों तक अभिनयन पत्रों का ताँता लगा रहा और महीनो रल्ल और भूनिर्वासी की फर्माइशों में दम मारने का अवकाश न मिला। यात्रा-वृत्ताय देश के प्रायः सभी पत्रों में छपा। अन्य देशों से भी बघाई के तार और पत्र मिले। फ्रांस और रूस आदि देशों की कितनी ही समाजों ने मुझे ब्याख्या देने के लिए निमन्त्रित किया। एक-एक बकूता के लिये मुझे कई-कई हजार पौंड दिये जाते थे। कई विद्यालयों ने मुझे उपाधियाँ दीं। आर. ने अपना आदोषाक नेत्र कर सम्मानित किया, किन्तु इन आदर-सम्मान की आधियों से मेरे चित्त की शांति मिलती थी और मानमरोवर का सुरम्भ तट और वह गहरी गुफा और वह मुदुभाषिणी रमणो सदैव आँखों के सामने फिरती रहती। उसके मधुर शब्द कानों में गूँजा करते। मैं थियेट्रों में जाता और स्टेन और जाजिया की मुंदरियों को देखता, किन्तु हिमालय की अजरा मेरे ध्यान से न उतरती। कभी-



कभी कल्पना में मुझे वहाँ देखीं आकाश में उतरती हुई मालूम होती, तब पित्त चंचल हो जाता और बिकल उत्कंठा होती कि किसी तरह पर लगा कर ज्ञान-सरोवर के तट पहुँच जाऊँ। आखिर एक रोज मैंने सफर का सामान दुस्त किया और सगी मित्री के ठीक एक हजार दिनों के बाद जब कि मैंने पानी पार ज्ञान-सरोवर के तट पर कदम रखा था, मैं फिर वहाँ जा पहुँचा।

प्रभात का समय था। गिरिराज सुनहरा मुकुट पहने खड़े थे। मंद समीर के आनंदमय झोंकों से ज्ञानसरोवर का निर्मल प्रकाश से प्रतिबिम्बित जल इस प्रकार लहरा रहा था, मानों अगणित जलप्राएँ जाभूषणों से जगमगाती हुई नृत्य कर रही हो। लहरों के साथ सततल या झकोरे लेते थे जैसे कोई बालक हिडोले में झूल रहा हो। फूलों के बीच में श्वेत हंस तैरते हुए ऐसे मालूम होते थे, मानों आलिंगन से छाये हुए आकाश पर तारावण धमक रहे हो। मैंने उत्सुक नेत्रों से इस गुफा की ओर देखा तो वहाँ एक विशाल राजप्रासाद आसमान से कंधा मिलाये खड़ा था। एक ओर, रमणीक उपवन था, दूसरी ओर एक गगनचुम्बी मंदिर। मुझे यह कायापलट देख कर आश्चर्य हुआ। मुख्य द्वार पर जा कर देखा, तो दो चौबदार ऊँचे मखमल की बरियाँ पहने, जरी के पट्टे बांधे खड़े थे। मैंने उनसे पूछा—“क्यों भाई, यह किस का महल है?”

चौबदार—अर्जुन नगर की महारानी का।

मैं—क्या अभी हाल ही में बना है?

चौबदार—हाँ! तुम कौन हो?

मैं—एक परदेशी यात्री हूँ। क्या तुम महारानी की मेरी सूचना दे दोगे?

चौबदार—तुम्हारा क्या नाम है और कहाँ से आते हो?

मैं—उनसे केवल इतना कह देना कि यूरोप से एक यात्री आया है और आपके दर्शन करना चाहता है।

चौबदार भीतर चला गया और एक क्षण के बाद आ कर बोला, “मेरे साथ आओ।”

मैं उसके साथ हो लिया। पहले एक लम्बी दासान मिली जिसमें नाति-भौति के परी-पिखरों में बैठे चहक रहे थे। इसके बाद एक विस्तृत बारहदारी में पहुँचा जो सम्पूर्ण पापान की ध्वनी हुई थी। मैंने ऐसी सुंदर गुलबारी

ताजमहल के अतिरिक्त और कहीं नहीं देखी। फर्श की पच्चीकारी को देख कर उस पर पाँव धरते संकोच होता था। दीवारों पर निपुण चित्रकारों की रचनाएँ शोभायमान थीं। बारहवरी के बूंगरे गिरे पर एक चतुरा या जित पर मोटी कालीनें बिछी हुई थीं। मैं फर्श पर बैठ गया। इतने में एक लम्बे कद का रूपवान् पुरुष अदर आता हुआ दिखायी दिया। उसके मुख पर प्रतिभा की ज्योति झलक रही थी और आँखों से गर्व टपका पड़ता था। उसकी काली और भाले की नोक के सदृश तंजी हुई मूँछें, उसके भौंर की तरह काले घुँघराले बाल उसकी आकृति को कठोरता को नम्र कर देते थे। विनयपूर्ण शीरता का हमसे मुदर चित्र नहीं खींच सकता था। उसने मेरी ओर देख कर मुस्कराते हुए कहा—‘आप मुझे पहचानते हैं?’ मैं जदब से खड़ा हो कर बोला—‘मुझे आपसे परिचय का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ।’ वह कालों पर बैठ गया और बोला, ‘मैं घोरसिंह हूँ।’ मैं आवाज रह गया। घोरसिंह ने सिर कहा, ‘क्या आप प्रसन्न नहीं हैं कि आपने मुझे पिस्तौल का लय नहीं बनाया? मैं तब पशु था, अब मनुष्य हूँ।’ मैंने कहा, ‘आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ। यदि आज्ञा ही, तो मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहता हूँ।’

घोरसिंह ने मुस्करा कर कहा—मैं समझ गया, पूछिए।

मैं—अब आप समझ ही गये तो मैं पूछूँ क्यों?

घोरसिंह—सम्भव है, मेरा अनुमान ठीक न हो।

मैं—मुझे भय है कि उस प्रश्न से आपको दुःख न हो।

घोरसिंह—कम से कम आपको मुझसे ऐसी धका न करनी चाहिए।

मैं—विद्याधरी के भग में कुछ सार था?

घोरसिंह ने सिर झुका कर कुछ देर में उत्तर दिया—जी हाँ, था। जिस वक्त मैंने उसकी कलाई पकड़ी थी उस समय आवेश से मेरा एक-एक अंग काँप रहा था। मैं विद्याधरी के उस अनुग्रह को मरणपर्यन्त न भूलूँगा। मगर इतना प्रायश्चित्त करने पर भी मुझे अपनी क्लान्ति से निवृत्ति नहीं हुई। संसार की कोई वस्तु स्थिर नहीं, किंतु प्राप की कालिमा अमर और अमिट है। यत्न और कोशित कालान्तर में मिट जाती है किंतु प्राप का धब्बा नहीं मिटता। मेरा विचार है कि ईश्वर भी दाग को नहीं मिटा सकता। कोई तपस्या, कोई दंड, कोई

प्रार्थित इस कालिमा को नहीं धो सकता। पतितोंद्वारा की कपाएँ और सीढ़ियाँ कफ़ेसान करके पाप से मुक्त हो जाने की बातें, यह सब संसार-तिमो पाखंडी धर्मावलम्बियों की वस्तुनाएँ हैं।

हम दोनों यही बातें कर रहे थे कि रानी प्रियंवदा सामने आ कर खड़ी हो गयीं। मुझे आज अनुभव हुआ, जो बहुत दिनों से पुस्तकों में पढ़ा करता था कि सौंदर्य में प्रकाश होता है। आज इसकी सत्यता मैंने अपनी आँखों से देखी। मैंने जब उन्हें पहले देखा था तो निश्चय किया था कि यह ईश्वरीय कलानैपुण्य की पराकाष्ठा है; परंतु अब जब मैंने उन्हें दोबारा देखा तो ज्ञात हुआ कि वह इस अंगल को नकल थी। प्रियंवदा ने मुस्करा कर कहा—“मुसाफिर, तुम्हें स्वदेश में भी कभी हम लोगों की याद आयी थी?” अगर मैं भिन्नकार होता तो उसके मधुर हास्य को चित्रित करके प्राचीन गुणियों को चकित कर देता। उसके मुँह से यह प्रश्न मुनने के लिए मैं तैयार न था। यदि इसी भाँति मैं उसका उत्तर देता तो चापद वह मेरी चुड़ाना होती और धीरे-धीरे के तैवर बदल जाते। मैं यह भी न कह सका कि मेरे जीवन का सबसे मुषद भाग वही था जो ज्ञानमरीचर के तट पर व्यतीत हुआ था; किंतु मुझे इनका सहम भी न हुआ। मैंने दया प्रदान में कहा—“क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ?”

तीन दिन बीत गये। इन तीनों दिनों में खूब मालूम हो गया कि पूर्व की आतिथ्यसेवी कयो कहते हैं। यूरोप का कोई दूसरा मनुष्य जो यहाँ की सभ्यता से परिचित न हो, इन सत्कारों से ऊब जाता। किंतु मुझे इन देशों के एहन-सहन का बहुत अनुभव हो चुका है और मैं इसका आदर करता हूँ।

चौथे दिन मेरी विनय पर रानी प्रियंवदा ने अपनी शीप कपा सुनायी शुरू की—

ऐ मुसाफिर, मैंने तुझसे कहा था कि अपनी रियासत का शासनभार मैंने शीघर पर रख दिया था और जितनी योग्यता और दूरदर्शिता से उन्होंने इस काम को सम्हाला है, उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। ऐसा बहुत कम हुआ है कि एक विद्वान् पंडित जिसका मारा जीवन पठन-पाठन में व्यतीत हुआ हो, एक रियासत का बोझ सम्हाले; किन्तु राजा बीरबल की भाँति पं० शीघर भी

सब कुछ कर सकते हैं। मैंने परिचय उन्हें यह नाम मीसा था-अनुभव ने मित्र कर दिया कि वह इस कार्य के सर्वथा योग्य हैं। ऐसा ज्ञान पड़ता है कि कुलकर्णरा ने उन्हें इस काम के लिए व्यस्त कर दिया। जिस समय उन्होंने इसका नाम अपने हाथ में लिया, यह रियासत एक उजड़ घास के सदाश्री थी। अब वह घनघान्यपूर्ण एक नगर है। घासन का कोई ऐसा विभाग नहीं, जिस पर उनकी मूर्त दृष्टि न पहुँची हो।

चौड़े हो दिनों में लोग उनके शील-स्वभाव पर मुग्ध हो गये और राजा रणधोरमिह भी उन पर कृपा-दृष्टि रखने लगे। गरिब जो पहले शहर से बाहर एक टाकुरद्वारे में रहते थे। किंतु अब राजा साहब से नैल-मोल बढ़ा तो उनके आपस से विवाह हो कर राजमहल में चले आये। यहाँ तक-परस्पर में मैत्री और घनिष्टता बढ़ी कि मान-अतिष्ठा का विचार भी जाता रहा। राजा साहब पंडित जो से सस्त्र भी पढ़ते थे और उनके समय का अधिकांश भाग पंडित जी के मकान पर ही कटता था, किंतु थोड़ा-यह-विद्याप्रेम या कुछ मित्रभाव का आकर्षण न था। यह सौंदर्य का आकर्षण था। यदि उस समय मुझे लक्ष्मण भी संदेह होता कि रणधोरमिह की यह घनिष्टता कुछ और हो पहले लिये हुए है तो उसका अंत इतना खेदजनक न होता जितना कि हुआ। उनकी दृष्टि विद्याधरी पर उस समय पड़ी जब वह टाकुरद्वारे में रहती थी और यह सारी कुपोजनाएँ उसी की करामात थी। राजा साहब-स्वभावतः बड़े ही सञ्चरित्र और समीचीन पुरुष हैं, किंतु जिस रूप ने मेरे पति जैसे देवपुरुष का ईमान डिगा दिया, वह सब कुछ कर सकता है।

भोली-भाली विद्याधरी मनोविकारों की इस कुटिल-नीति से बेतबर थी। जिस प्रकार छात्रों ने मारठा हुआ हिरन व्याघ्र की फँसायी हुई हरी-हरी घास से प्रसन्न हो कर उस ओर बढ़ता है और यह नहीं समझता कि प्रत्येक-पग भूले सर्वनाश की ओर लिये जाता है, उसी नीति विद्याधरी को उसका चंचल मन ध्वंशकार की ओर खींचे लिये जाता था। वह राजा साहब के लिए अपने हाथों से बीड़े लगा कर भोजन, पूजा के लिए चंदन रण्डियाँ। राखी जो से भी उसका बहनापा हो गया। यह एक क्षण के लिए भी उसे अपने पास से न जाने देती। दोनों-माथ-माथ बाण की गैर-नरती, साध-भाष झूठा कृत्यो, माथ-माथ चौपड़

खेतों। यह उनका गुंजार करती-और वह उनकी माँग-मोटी संभारती मानों विद्यापरी ने रानी के हृदय में वह स्वाद प्राप्त कर लिया; जो किसी समय मुक्त प्राप्त था। लेकिन यह गरीब क्या जानती थी कि जब भी बाग की रविशों में बिखरी हूँ, तो शूबासना मेरे तलवे के नीचे आँखें बिछाती हूँ, जब मैं झूल झूलती हूँ तो वह आँखें मेरी आँखों से झूमती हैं। इस-एक एक हृदय अवलोकन के लिए चारों ओर से शब्दबुह रचा था रहा था।

१. इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया, रानी साहब का रक्त-गन्ध दिनों-दिन बढ़ता जाता था। पंडित जी को उनसे वह स्नेह हो गया जो गुरु जी को अपने एक होनहार शिष्य से होता है। मैंने जब देखा कि आठों गृह का यह सद्गुरु पंडित जी के काम में विघ्न डालता है, तो एक दिन मैंने उनसे कहा— यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो दूरस्थ देहाती का दौरा आरम्भ करने और इस बात का अनुसंधान करें कि देहाती में कृषकों के लिए बैंक खोलने में हमें प्रजा से कितनी सहानुभूति और कितनी राहायश की आशा करनी चाहिए। पंडित जी के मन की बात नहीं जानती; पर प्रत्यक्ष में उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की। दूसरे ही दिन प्रातः काल बले गये। किंतु आश्चर्य है कि विद्यापरी उनके साथ न गयी। अब तक पंडित जी वहाँ कहीं आते थे; विद्यापरी परछाई की भाँति उनके साथ रहती थी। अनुविषा या कष्ट का विचार भी उसके मन में न आता था। पंडित जी कितना ही समझार्य, कितना ही उदार, पर वह चतका साथ न छोड़ती थी, पर अबकी बार कष्ट के विचार में उसे कर्तव्य के मार्ग से विमुख कर दिया। पहले उनका पातिव्रत एक ब्रह्म था, जो उसके प्रेम की तपारी में अकेला लड़ा था; किन्तु अब उरी क्यारी में देवी का घास-भान निकल आया था; जिनका पोषण भी उमी भोजन पर अवलम्बित था।

२. ऐ भुमास्ति, छह महीने गुजर गये और पंडित जीपर वापस न आये। पहाड़ों की चोटियों पर लखा हुआ हिम धुल-धुल कर नदियों में बहने लगा, उनकी गोद में फिर रब-बिंब के फूट लहलहाते लगे। अंशुमा को किरणें फिर फूलों की महक भूँपने लगी। सभी पर्वतों के पत्ती अपनी वार्षिक यात्रा समाप्त कर फिर स्वदेश आ पहुँचे, किन्तु पंडित जी विवाह के कामों में ऐसे उलझे

कुछ गवरायो, भगने, अपराधी, हृदय को इन शब्दों से घात किया—‘यह हार मैंने ठाकुर जी के लिए भूँषा है।’ उस समय विद्याधरी की घबराहट का भेद में कुछ न समझी। ठाकुर जी के लिए हार भूँषना क्या कोई लज्जा की बात है? फिर जब वह हार मेरी नज़रों से छिपा दिया गया तो उसका जिक्र ही क्या? हम दोनों ने कितनी ही बार साथ बैठ कर हार भूँषे थे। कोई निपुण मालिन भी हमसे अच्छे हार न भूँष सकती थी; अगर इसमें शर्म क्या? दूसरे दिन वह रहस्य मेरी समझ में आ गया। वह हार राजा रणधीरसिंह को उपहार में देने के लिए बनाया गया था।

यह बहुत सुंदर वस्तु थी। विद्याधरी ने अपना सारा धान्य उसके बनाने में खर्च किया था। कदाचित् यह सबसे उत्तम वस्तु भी जो राजा साहब को भेंट कर सकती थी। वह वाह्यणी थी। राजा साहब की मुस्मता थी। उसके हाथों से यह उपहार बहुत ही नोभा देता था; किंतु यह बात उतने मुझसे छिपायी क्यों?

मुझे उस दिन रात भर नींद न आयी। उसके इस रहस्य-भाव ने उसे मेरी नज़रों में गिरा दिया। एक बार आँखें झपकी तो मैंने उसे स्वप्न में देखा, मानो वह एक सुंदर पुष्प है; किंतु उसकी बातें मिट गयीं हो। वह मुझसे गले मिलने के लिए बढ़ी, किंतु मैं हट गयी और बोली कि तुने मुझसे वह बात छिपायी क्यों?

१०

ऐ मुसाफिर, राजा रणधीरसिंह की उदारता ने प्रजा को मालामाल कर दिया। रईसों और अमीरों ने खिलजतें पायीं। किसी को घोड़ा मिला, किसी को जागीर मिली। मुझे उन्होंने श्री भगवद्गीता की एक प्रति मखमली बस्ते में रख कर दी। विद्याधरी को एक बहुमूल्य जटाऊ कानन मिला। उस कानन में अनमोल हीरे जड़े हुए थे। देहली के निपुण स्वर्णकारों ने इसके बनाने में अपनी कला का चमत्कार दिखाया था। विद्याधरी को अब शक आभूषणों से इतना प्रेम न था, अब एक सादगी ही उसका आभूषण और पवित्रता ही उसका शृंगार थी; पर इस कानन पर वह लोट-पोट हो गयी।

आपाड़ का महीना आया। पटाई गगनमंदल में भंडलाने लगी। पंडित

श्रीधर को घर की मुष्ण जानी। वह किया कि मैं आ रहा हूँ। विद्याधरी ने महान सूत्र साक कराया और स्वयं बनना बनाव-भुंजार दिया। उसके वस्त्रों से बंदन की महक उड़ रही थी। उसने कमल की संदूकसे में निहाला और सोचने लगी कि इसे पहनूँ या न पहनूँ? उसके मन में निश्चय किना कि न पहनूँगी। संदूक बंद करके रुक दिया।

सहसा लौही में आ कर सूचना दी कि पंडित जी आ गये। यह सुनते ही विद्याधरी लफ़फ़ कर उठी, किन्तु पति के दर्जनों की टलुङ्गना उसे द्वार की ओर नहीं ले गयी। उसने बड़ी फुर्ती से संदूकचा खोला, बंगन निहाल पर पहना और अपनी मूर्ख आईने में देखने लगी।

इधर पंडित जी प्रेम की उत्कण्ठा से कदम बढ़ाते दालान से आँगन और आँगन से विद्याधरी के कमरे में आ पहुँचे। विद्याधरी ने आ कर उनके बरसों की अपने मिर से सार्प किया। पंडित जी उसका वह श्रृंगार देख कर दंग रह गये। एकाएक उनकी दृष्टि उस बंगन पर पड़ी। राजा रणधोरामह की मंजूर ने उन्हें रत्नों का पारखी बना दिया था। ध्यान से देखा तो—एक-एक नगीना एक-एक हज़ार का था। चकित हो कर बोले, 'वह बंगन कहीं मिला?'

विद्याधरी ने बधाव पहले ही सोच रखा था। रत्नों प्रियंवदा ने दिया है। यह जीवन में पहला बख़्तर था कि विद्याधरी ने अपने प्रतिदेव से कपट किया। जब हृदय गुड़ न हो तो मुख से मार बमोकर निचले! यह बंगन नहीं, बल्कि एक विपत्ति नाम था।

११

एक सप्ताह गुजर गया। विद्याधरी के चित्त की घाति और प्रसन्नता गुड़ हो गयी थी। यह एहसास कि राजने प्रियंवदा ने दिया है, प्रतिक्षण उसके कानों में गूँबा करती। वह अपने को धिक्कारती कि मैंने अपने प्राणाधार से क्यों कपट किया। बहुधा रोया करती। एक दिन उसने सोचा कि क्यों न चल कर पति से साप मृतांत मुना दूँ। क्या वह मृते समा न करेंगे? यह सोच कर उठी, किन्तु पति के सम्मुख जाते ही उसकी जवान बंद हो गयी। वह अपने कमरे में आती और फूट-फूट कर रोने लगी। बंगन पहन कर उसे बहुत आनंद हुआ था। इसी क्षण ने उसे हँसाया था, अब वही रुका रहा है।

विद्याधरी ने रानी के साथ बागों में सैर करना छोड़ दिया, चीपड़ और शतरंज उसके नाम को रोष करते । वह मारे-दिन अपने कमरे में पड़ी-गया करती और सोचती कि क्या करे । काले-वस्त्र पर काला दाग छिप जाता है, किंतु उज्ज्वल वस्त्र पर कालिया को एक बुँद भी झलकने लगती है । वह सोचती, इसी कंगन ने मेरा सुख हर लिया है, यही कंगन मुझे रक्त के आँगु रत्ना रहा है । सपने जितना सुंदर होता है उतना ही विषाक्त भी होता है । यह सुंदर कंगन बिपक्षर नाग है, मैं उनका सिर कुचल डालूँगी । यह निश्चय करके उसने एक दिन अपने कमरे में कोषले का अलाव जलाया, चारों तरफ के किवाड़ बंद कर दिये और उस कंगन को जिसने उसके जीवन को संकटमय बना रखा था, संदूकचे से निकाल कर आग में डाल दिया । एक दिन वह था कि कंगन उसे प्राणों से भी प्यारा था, उसे यक्षमाली संदूकचे में रखती थी, आज उसे शस्त्री निर्दयता से आग में जला रहो है ।

विद्याधरी अलाव के सामने बैठी हुई थी कि इतने में पंडित धीधर ने द्वार खटखटाया । विद्याधरी को काटो तो सोहू नहीं । उसने उठ कर द्वार खोल दिया और सिर झुका कर खड़ी हो गयी । पंडित जी ने बड़े आश्चर्य से कमरे में निगाह दौड़ायी, पर रहस्य कुछ समझ में न आया । बोले कि किवाड़ बंद करके क्या हो रहा है ? विद्याधरी ने उत्तर न दिया । तब पंडित जी ने छड़ी उठा ली और अलाव कुरेदा तो कंगन निकल आया । उसका संपूर्णतः स्वांतर हो गया था । न वह चमक थी, न वह रंग, न वह आकार । धबका कर बोले, विद्याधरी, तुम्हारी बुद्धि कहाँ है ?

विद्या—भ्रष्ट हो गयी है ।

पंडित—इस कंगन ने तुम्हारा क्या विषाड़ा था ?

विद्या—उसने मेरे हृदय में आग लगा रखी है ।

पंडित—ऐसी अमूल्य वस्तु मिट्टी में मिल गयी !

विद्या—उसने उससे भी अमूल्य वस्तु का अपहरण किया है ।

पंडित—तुम्हारा सिर तो नहीं फिर गया है ?

विद्या—शापद आपका अनुमान सत्य है ।

पंडित जी ने विद्याधरी को जोर धुमनेवाली निगाहों से देखा । विद्याधरी



वे-से शब्द राजा के हृदय में चुभ गये । मुँह में एक शब्द भी न निकला । काल ने न डरनेवाला राजपूत एक स्त्री की आग्नेय श्रुति से काँप उठा ।

१३

एक वर्ष बीत गया, हिमालय पर मनोहर हरियाली छायी, फूली ने पर्वत की गोद में क्रीड़ा करने शुरू की । यह ऋतु घीली, जल-बल ने बर्फ की सुफेद चादर ओड़ी, जलपक्षियों की मालाएँ मैदानों की ओर लड़ती हुई दिखायी देने लगीं । यह मौसम भी गुजरा । नदी-नालों में झूप की पारें बहने लगीं, पर्वतों की स्वच्छ निर्मल ज्योति ज्ञानमरोवर में धिरकने लगी; परंतु पंडित धीधर की कुछ टोह न लगी । विद्याधरी ने राजभवन स्थान दिया और एक पुराने निर्गुण मंदिर में सपत्नियों की भाँति कालसेप करने लगी । उस दुखिया की वशा कितनी कष्टाजनक थी । उसे देख कर मेरी आँखें भर जाती थी । वह मेरी प्यारी माली थी । उसकी संगत में मेरे जीवन के कई वर्ष आनंद से व्यतीत हुए थे । उसका यह अपार दुःख देख कर मैं अपना दुःख भूल गयी । एक दिन वह था कि उसने अपने पातिव्रत के बल पर धनुष्य को पशु के रूप में परिणत कर दिया था, और आज यह दिन है कि उसका पति भी उसे त्याग रहा है । किसी स्त्री के हृदय पर इससे अधिक लज्जाजनक, इससे अधिक प्राणघातक आघात नहीं लग सकता । उसकी सपत्नी ने मेरे हृदय में उसे फिर उसी सम्मान के पद पर बिठा दिया । उसके सतीत्व पर फिर मेरी धडाँ हो गयी, किंतु उससे कुछ पूछते, सात्वता देते मुझे सकोप होता था । मैं बरती थी कि कहीं विद्याधरी यह न समझे कि मैं उससे बदला ले रही हूँ । कई महीनों के बाद जब विद्याधरी ने अपने हृदय का बोझ हलका करने के लिए स्वयं मुझसे यह वृत्तान्त कहा तो मुझे ज्ञात हुआ कि यह सब कांटे राजा रणधीरसिंह के बोधे हुए थे । उन्हीं की प्रेरणा में रानी जी ने पंडित जी के साथ जाने से रोका । उसके स्वभाव ने जो कुछ रंग बदला वह रानी जी की सुमंगलता का फल था । उन्हीं की देखा-देखी उसे वसाव-शृंगार की भाँट पड़ी । उन्हीं के मना करने से उसने कंगन का भेद पंडित जी से छिपाया । ऐसी घटनाएँ स्त्रियों के जीवन में नित्य होती रहती हैं और उन्हें जरा भी संका नहीं होता । विद्याधरी का पातिव्रत आदर्श था । इसलिए यह विवशता उसके हृदय में चुभने लगी । मैं यह नहीं कहती:

सदाके रखो हुई थी। पवित्रता का यह अतीतिक दृश्य देख कर मेरा हृदय पुलकित हो गया। मैंने दौड़ कर विद्यापरी के चरमा पर सिर झुका दिया। उसका शरीर सूख कर काँटा हो गया था और शोक ने कमर झुका दी थी।

विद्यापरी ने मुझे उठा कर छाती में लगा लिया और बोली—बहन, मुझे लज्जित न करो। खूब यादों, बहुत दिनों से जो तुम्हें देखने को तरस रहा था।

मैंने उत्तर दिया—जरा अयोध्या चली गयी थी। जब हम दोनों अपने देश में थी तो जब मैं कही जाती तो विद्यापरी के लिए कोई न कोई उपहार अवश्य लाती। उसे वह बात याद आ गयी। सजल-नयन हो कर बोली—मेरे लिए भी कुछ लायी ?

मैं—एक बहुत अच्छी वस्तु लायी हूँ।

विद्या०—क्या है, देखू ?

मैं—पहले बूझ जाओ।

विद्या०—मुद्गल की पिटाई होगी ?

मैं—नहीं, उससे अच्छी।

विद्या०—डाकुर जी की मूर्ति ?

मैं—नहीं, उससे भी अच्छी।

विद्या०—मेरे प्राणधार का, कोई समाचार ?

मैं—उससे भी अच्छी।

विद्यापरी प्रबल आवेश से व्याकुल हो कर उठी कि द्वार पर जा कर पति का स्वागत करे; किंतु निर्वलता ने मन की अभिलाषा न निकलने दी। तीन बार झेंझली और तीन बार गिरी, तब मैंने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और माँचल से हवा करने लगी।—उसका हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था और पवित्रजन का बानंद आँसु से आँसू बन कर निकलता था।

जब जरा चित्त सावधान हुआ तो उसने कहा—उन्हें बुला लो, उनका दर्शन मुझे रामबाण हो जायगा।

ऐसा ही हुआ। ज्यों ही पंडित जी अंदर आये, विद्यापरी उठ कर उनके पैरों से लिपट गयी। दोनों ने बहुत दिनों के बाद पति के दर्शन पाये हैं। अश्रुधारा से उनके पैर पखार रही हैं।

मैंने वहाँ ठहरना उचित न समझा। इन दोनों प्राणियों के हृदय में कितनी ही बातें आ रही होंगी, दोनों क्या-क्या कहना और क्या-क्या सुनना चाहते होंगे, यह विचार, मैं उठ खड़ी हुई और बोली—बहन, अब मैं जाती हूँ, शाम को फिर आऊँगी। विद्याधरी ने मेरी ओर बाँसों उठायी। पुतलियों के स्थान पर हृदय रखा हुआ था। दोनों बाँसों आकाश की ओर उठा कर बोली—ईश्वर तुम्हें इस यश का फल दे।

१६

मेरे मुसाफिर, मैंने दो बार पंडित धोंधर को मौत के मुँह से बचाया था, किन्तु आज का-सा आनंद कभी न प्राप्त हुआ था।

जब मैं ज्ञानसरोवर पर पहुँची तो दोपहर हो आया था। विद्याधरी की शुभकामना, मुझे पहले ही पहुँच चुकी थी। मैंने देखा कि कोई पुरुष गुफा से निकल कर ज्ञानसरोवर की ओर चला जाता है। मुझे आश्चर्य हुआ कि इस समय यहाँ कौन आया। लेकिन जब समीप आ गया तो मेरे हृदय में ऐसी तरंगें चढ़ने लगीं, जानों छाती से बाहर निकल पड़ेगा। यह मेरे प्राणेश्वर, मेरे पति-प्रेम थे। मैं चरणों पर गिरना ही चाहती थी कि उनका कद-माग मेरे गले में पड़ गया।

पूरे इस वर्षों के बाद आज मुझे यह शुभ दिन देखना नसीब हुआ। मुझे उस समय ऐसा जान पड़ता था कि ज्ञानसरोवर के कमल मेरे ही लिए मिले हैं, गिरिराज ने मेरे ही लिए फूल की, खम्या दी है, हवा मेरे ही लिए झूमती हुई आ रही है।

इस क्षण के बाद मेरा ठकड़ा हुआ शरीर बसा; गये हुए दिन लौटे। मेरे आनंद का अनुमान कौन कर सकता है।

मेरे पति ने प्रेमकण्ठा बरसे आँसों में देख कर कहा—‘प्रियंवदा!’

## मर्यादा की वंदी

यह बड़ा समय था जब चित्तौड़ में घुड़घाघिजी बीरा प्यारी आरमाओं की ईश्वर-प्रेम के प्याले पिऊनी थी। रणछोड़ जी के मंदिर में जब भक्ति में विह्वल हो कर वह अपने मपुर स्वरो में अपने पीयूषपूरित पदों को गाती, तो शोभागण प्रेमानुराग में उन्मत्त हो जाते। प्रतिदिन यह स्वर्गीय आनंद उठाने के लिए मारे चित्तौड़ के लोग ऐसे उत्सुक हो कर दोड़ते, जैसे दिन भर की प्यासी गाने बूंद में किसी मरोवर को देख कर उगकी और थोढ़नी है। इन प्रेम-मुष्ण-मागर में बेचन चित्तौड़वासियों ही की तृप्ति न होनी थी, बल्कि सम्मत् राजपूताना की मरभूमि लाविन हो जानी थी।

॥ एक बार ऐसा संयोग हुआ कि 'सांझवाड के रावमाहब और मंदार-राज्य के कुमार, दोनों ही आठ-गडवर के माय चित्तौड़ आये। रावमाहब के बान राजकुमारी प्रभा भी थी, जिसके रूप और गुण की दूर तक खर्चा थी। यहीं रणछोड़ जी के मंदिर में दोनों की भाँति मिली। प्रेम ने दाण बलाया।

राजकुमार मारे दिन उदासीन भाव से शहर की गलियों में घूमा करता। राजकुमारी विरह में श्रवित्त अपने मूढ़ के मरोवों से मौकाँ करती। दोनों ध्याकुल हो कर संध्या समय मंदिर में आते और वहाँ बइ को देख कर कुम्हुरिनी तिल जाती।

प्रेम-प्रवीण मोग ने कई बार इन दोनों प्रेमियों को मस्तुण नेनों से परस्पर देखने हुए पा कर उनके मन के भावों को लाइ लिया। एक दिन बीरसिंह के पदचात जब सांझवाड के रावमाहब चलते गये तो उसने मंदार के राजकुमार को बुला कर उनके सामने खड़ा कर दिया और कहा—'रावमाहब, मैं प्रभा के लिए यह बर लायी हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिए।

प्रभा लज्जा से गड-सी गयी। राजकुमार के गुण-शून्य पर रावमाहब पहले ही से मोहित हो रहे थे, उन्होंने तुरंत उसे छानी में लगा लिया।

उसी अवसर पर चित्तौड़ के राणा भोजराज भी मन्दिर में आये। उन्होंने प्रभा का मुख-चंद्र देखा। उनकी छानी पर मौँप छोटने लगा।

—२—

शालाबाड़ में बड़ी धूम थी। राजकुमारी प्रभा का आज विवाह होगा। मंदार से बारात आवेगी। मेहमानों की सेवा सम्मान को तैयारियाँ हो रही थी। हुकानें सजी हुई थी। मौलतखाने आमोदालाप से भूँजते थे। मङ्गलों पर मुग़धि छिड़की जाती थी। अट्टालिकाएँ पुष्प-गुताओं से शोभायमान थी। पर जिसके लिए ये सब तैयारियाँ हो रही थी, वह अपनी बाटिका के एक वृक्ष के नीचे उदास बैठी हुई रो रही थी।

रतिवास में डोमिनियाँ आनंदोत्सव के गीत गा रही थी। कहीं मुंदरियों के हाव-भाव थे, कहीं आभूषणों की चमक-दमक, कहीं हाम-परिहास की बहार। नाइन बात-बात पर तेज होती थी। मालिन गर्व से फूली न गमाती थी। घोड़िन आँसें दिखाती थी। कुम्हारिन गडके के सदृश फूली हुई थी। मंडप के नीचे पुरोहित जो बात-बात पर सुवर्ण-मुद्राओं के लिए टुकते थे। रानी मिर के बाल जाले भूली-प्यारी चारों ओर चौड़ती थी। सबकी-बीछारें सहती थी और अपने भाग्य को सराहती थी। दिल खोल कर हीरे-जवाहिर लुटा रही थी। आज प्रभा का विवाह है। बड़े भाग्य से ऐसी बातें सुनने से आती है। सब के सब अपनी-अपनी धुन में मस्त हैं। किसी को प्रभा की फिक्र नहीं है, जो वृक्ष के नीचे अकेली बैठी रो रही है।

एक रमणी ने आ कर नाइन से कहा—बहुत बड़-बड़ कर बानें न कर, कुछ राजकुमारी का भी ध्यान है? बल, उनके बाल गुँथ।

नाइन ने बातों वाले जीभ बचायी। दोनों प्रभा को ढूँढ़ती हुई बाग में पहुँची। प्रभा ने उन्हें देखते ही आँसू ढोछ डाले। नाइन मोतियों के भाँग भरने लगी और प्रभा मिर नीचा किये आँखों में मोती बरसाने लगी।

रमणी ने मजल नेत्र हो कर कहा—बहिन, दिल इतना छोटा मत करो। मुँह-भाँगी मुराद पा कर इतनी उदास क्यों होती हो?

प्रभा ने सहेली की ओर देख कर कहा—बहिन, जाने क्यों दिल बैठा जाता है। सहेली ने छेड़ कर कहा—पिया-गिलन की बेकली है!

प्रभा उदासीन भाव से बोली—कौई मेरे मन में बैठा बह रहा है कि अब उनसे मुलाकाद न होगी।

सहेली उसके बेग मंवार कर बोली—जैसे उप काल से पहले कुछ अंधेरा हो जाता है, उसी प्रकार मिलाप के पहले प्रेमियों का मन अजीर हो जाता है।

प्रभा बोली—नहीं बहिन, यह बात नहीं। मुझे शकुन अच्छे नहीं दिखायी देने। आज दिन भर मेरी आँख फड़कनी रही। रात को मैंने बुरे स्वप्न देखे हैं। मुझे शंका होती है कि आज अवश्य कोई न कोई विघ्न पड़नेवाला है। तुम राणा भोजराज की जानजी हो न ?

मंथ्या हो गयी। आकाश पर सारों के दोषक जले। झालावाड़ में झूठे-जवान सभी लोग वाराण की अवधानी के लिए तैयार हुए। मरदों ने पागें सँवारीं बरख साजे। युवतियाँ शृंगार कर गानों-बजाती रनिवान की ओर खली। हथारों स्त्रियाँ छत पर बैठी वाराण की राह देन रही थी।

अधानक घोर मचा कि वाराण आ गयी। लोग सँभल बैठे, नगाड़ों पर चोट पड़ने लगी, सलामियाँ दगने लगी। जवानों ने घोड़ों को एड रोगी। एक क्षण में सवारों की एक पैना राज-भवन के सामने आ कर खड़ी हो गयी। लोगों को देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि यह मंदार की बरख नहीं थी बल्कि राणा भोजराज की सेना थी।

झालावाड़वाड़े अमो विस्मय खड़े हो थे, कुछ निश्चय न कर सके थे कि क्या करना चाहिए। इनमें से किसी-दुवार्नों ने राज-भवन की घेर लिया। तब झालावाड़ी भी सचेत हुए। सँभल कर तलवारें खींच ली और आक्रमणकारियों पर दूट पड़े। राजा महल में घुन गया। रनिवान में भगदड़ मच गयी।

प्रभा सोलहो शृंगार किने महिलाओं के साम बैठी थी। यह हलचल देख कर पचरायी। इनमें में रावसाहब हाँकते हुए आये और बोले—बेटी प्रभा, राणा भोजराज ने हमारे महल को घेर लिया है। तुम चटपट ऊपर चली जाओ और द्वार को बंद कर लो। अगर हम लाजिब हैं, तो एक चित्तीटी भी यहाँ से जोता न जायगा।

रावसाहब बात भी पूछे-न करने पाये थे कि राणा कई बीरों के साम आ पहुँचे और बोले—चित्तीटीवाले लो मिर कंटाने के लिए आये ही है। पर यदि वे राजपूत हैं तो राजपूतों से बुर हो जायेंगे। बेशर रावसाहब की आँखों से

ज्योत्स्ना निकलने लगी । वे तलवार सींच कर राणा पर झपटे । उन्होंने बार बचा लिया और प्रभा ने कहा—राजकुमारी, हमारे माय चलोगी ?

प्रभा सिर झुकाये राणा के सामने आ कर बोली—हाँ, चलूँगी ।

रावसाहब को कई आदमियों ने पकड़ लिया था । वे तड़प कर बोले—प्रभा, तू राजपूत की कन्या है ?

प्रभा की आँखें मजल हो गयी । बोली—राणा भी तो राजपूतों के कुलतिलक है । रावसाहब ने आ कर कहा—निलंजना !

कटार के नीचे पड़ा हुआ बलिदान का पशु जैसी दीन दृष्टि में देखता है, उसी भाँति प्रभा ने रावसाहब की ओर देख कर कहा—जिम झालाबाड़ की गोद में पली हूँ, क्या उसे रक्त में रँगवा दूँ ?

रावसाहब ने क्रोध में काँप कर कहा—सत्रियों को रक्त इतना प्यारा नहीं होता । मर्यादा पर प्राण देना उनका धर्म है !

तब प्रभा की आँखें लाल हो गयीं । चेहरा तमतमाने लगा ।

बोली—राजपूत-कन्या अपने गतीरब को रक्षा आप कर सकती हैं । इसके लिए अधिर प्रवाह की आवश्यकता नहीं ।

पल भर में राणा ने प्रभा को गोद में उठा लिया । विजली की भाँति झपट कर बाहर निकले । उन्होंने उसे पोड़े पर बिठा लिया, आप मयार हो गये और घोड़े को उछा दिया । अन्य चित्ताड़ियों ने भी घोड़ों की बागें मोड़ दीं, उनके मौ जवान भूमि पर पड़े तड़प रहे थे, पर किसी ने तलवार न उठायी थी ।

रात की दग बने मंदारवाले भी पहुँचे । मगर मूढ़ शोक-गमाचार पाते ही झूट गये । मंदार-कुमार निराशा से अचेत हो गया । जैसे रात को नशे का किनारा मुनसान हो जाता है, उसी तरह सारी रात झालाबाड़ में सपना छाया रहा ।

३

चित्ताड़ के रंग-महल में प्रभा उदाम बैठी सामने के मुंदर पौधों की पत्तियाँ गिन रही थी । मध्याह्न का समय था । रंग-विरंग के पक्षी वृक्षों पर बैठे कलरव कर रहे थे । इतने में राणा ने कमरे में प्रवेश किया । प्रभा उठ कर खड़ी हो गयी ।

राणा बोले—प्रभा, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। मैं बलपूर्वक तुम्हें माता-पिता की गोद से छीन लाया, पर यदि मैं तुमसे कहूँ कि यह सब तुम्हारे प्रेम से विवश हो कर मैंने किया, तो तुम मन में हँसीगी और कहोगी कि यह निराशे, अन्धे दृढ़ की प्रीति है; पर वास्तव में यही बात है। जबसे मैंने रणछोड़ जी के मंदिर में तुमको देखा, तबसे एक क्षण भी ऐसा नहीं बीता कि मैं तुम्हारी मुवि में विकल न रहा होऊँ। तुम्हें अपनाने का अन्य कोई उपाय होता, तो मैं कदापि इस पाशाविक दृग् से काम न लेता। मैंने रावसाहब की सेवा में बारंबार सदेो भेजे, पर उन्होंने हमेशा मेरी उपेक्षा की। अंत में जब तुम्हारे विवाह की अर्चना आ गयी और मैंने देखा कि एक ही दिन में तुम दूसरे की प्रेम-यात्री हो जाओगी और तुम्हारा ध्यान करना भी मेरी आत्मा को दूषित करेगा, तो लाचार हो कर मुझे यह अनौचित्य करनी पड़ी। मैं मानता हूँ कि यह सर्वथा मेरी स्वाधीनता है। मैंने अपने प्रेम के सामने तुम्हारे मनोगत भावों को कुछ न समझा; पर प्रेम स्वयं एक बड़ी हुई स्वायंवरता है, जब मनुष्य को अपने प्रियतम के सिवाय और कुछ नहीं सूझता। मुझे पूरा विश्वास था कि मैं अपने विनीत भाव और प्रेम से तुमको अपना लूँगा। प्रभा, प्यास से मरता हुआ मनुष्य यदि किसी गले में मुँह डाल दे, तो वह दंड का भागी नहीं है। मैं प्रेम का प्यासा हूँ। मोरा मेरी सहर्षाणिनी है। उसका हृदय प्रेम का अबाध सागर है। उसका एक चुन्गू भी मुझे उत्पन्न करने के लिए काफी था, पर जिस हृदय में ईश्वर का वास हो वहाँ मेरे लिए स्थान कहाँ? तुम चाहे कहोगी कि यदि तुम्हारे सिरपर प्रेम का मूत सवार था तो क्या मारे राजपूताने में स्त्रियाँ न थीं। निस्संदेह राज-पूताने में सुदृढ़ता का अभाव नहीं है और न चित्तोऽधिपति की ओर से विवाह की बाध-पीत किसी के अनादर का कारण हो सकती है, पर इसका जवाब तुम आप ही हो। हमका दोष तुम्हारे ही ऊपर है। राजस्थान में एक ही चित्तोऽह, एक ही राणा और एक ही प्रभा। सम्भव है, मेरे भाग्य में प्रेमातंद्र भोगना न लिखा हो। यह मैं अपने कर्म-लेख को मिटाने का बोझ-सा प्रयत्न कर रहा हूँ, परंतु भाग्य के अधीन बैठे रहना पुरुषों का काम नहीं है। मुझे इसमें सफलता होगी या नहीं, इसका फलना तुम्हारे हाथ है।

प्रभा की ललित जमोत की तरफ थी और मन बुदबनेवाली चिरिया की



भाँति धपर-उपर उड़ता फिरता था। वह जालवाड को मारकाट से बचाने के लिए राणा के साथ आया था; मगर राणा के प्रति उसके हृदय में क्रोध की लहरें उठ रही थीं। उसने सोचा कि वे यहाँ आयेँगे तो उन्हें राजसूत कुल-हत्या, अन्याय, दुराजारी, दुरात्मा, कायर कहकर उनका गर्व चूर-चूर कर दूँगी। उसको विश्वास था कि यह अपमान उनसे न महा जायगा और वे मुझे दण्ड अपने काबू में राना चाहेंगे। इस अंतिम समय के लिए उसने अपने हृदय को सूख मजबूत और अपनी कटार को खूब तेज कर रखा था। उसने निश्चय कर लिया था कि इसका एक बार उन पर होगा, दूसरा अपने कलेजे पर और इस प्रकार यह पाप-कांड समाप्त हो जायगा। लेकिन राणा की मन्नता, उनकी कल्याणिक विवेचना और उनके विनीत भाव ने प्रभा को शान्त कर दिया। आग पानी ने बुझ जाती है। राणा कुछ देर वहाँ बैठे रहे, फिर उठ-कर चले गये।

४

प्रभा को बितौड़ में रहते दो महीने गुजर चुके हैं। राणा उसके पास फिर न आये। इस बीच में उनके विचारों में कुछ अंतर हो गया है। जालवाड पर आक्रमण होने के पहले मीराबाई को इनकी बिल्कुल खबर न थी। राणा ने इस प्रस्ताव को गुप्त रखा था। किंतु अब मीराबाई प्रायः उन्हें इस दुराग्रह पर लज्जित किया करती है और धीरे-धीरे राणा को भी विश्वास होने लगा है कि प्रभा इस तरह काबू में नहीं आ सकती। उन्होंने उसके सुख-विलास की सामग्री एकत्र करने में कोई कसर नहीं रख छोड़ी थी। लेकिन प्रभा उनकी तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखती। राणा प्रभा की लौहियों से निरत कर समाचार पूछा करते हैं और उन्हें रोज वही निराशापूर्ण वृत्तान्त सुनायी देता है। मुरझाये हुए कान्धो किसी भाँति नहीं खिलती। जगह्य उनको कभी-कभी अपने इस दुस्साहस पर पश्चात्ताप है। वे पछताते हैं कि मैंने ध्वंस ही यह अग्राप किया। लेकिन फिर प्रभा का अनुपम सौंदर्य मेरी के सामने आ जाता है और वह अपने मन की इन विचार से समझा लेते हैं कि एक मर्मा मुंदरी का प्रेम इनकी जन्मी परिवर्तित नहीं हो सकता। निश्चिह्न मेरा मृदु व्यवहार कभी न कभी अपना प्रभाव दिलावेगा।

प्रभा मारे दिन जकेली बैठी-बैठी उबनाती और जलताती थी। उसके

विनीत के निमित्त कई मानेवाली स्त्रियाँ नियुक्त थीं; किंतु राग-रंग में उसे अरुचि हो गयी थी। वह प्रतिक्षण चिताओं में डूबी रहती थी।

राणा के मन्त्र भाषण का प्रभाव अब मिट चुका था और उनकी अमानुषिक शक्ति अब फिर अपने यथार्थ रूप में दिखायी देने लगी थी। वास्तवचतुरता शक्तिशालक नहीं होती। वह केवल निरंतर कर देती है। प्रमा को अब अपने अवाक् हो जाने पर आश्चर्य होना है। उसे राणा की बातों के उत्तर भी सूझने लगे हैं। वह कभी-कभी उनमें लड़ कर अपनी किस्मत का फैसला करने के लिए विकल हो जाती है।

मगर अब वाद-विवाद किन काम का ? वह सोचती है कि मैं रावसाहब की बन्धा हूँ, पर संसार की दृष्टि में राणा की रानी हो चुकी। अब यदि मैं इस कँद से छूट भी जाऊँ तो मेरे लिए वहाँ ठिकाना है ? मैं कैसे मुँह दिखाऊँगी ? इससे केवल मेरे वंश का ही नहीं, वरन् ममस्त राजपूत-जाति का नाम दूब जायगा। मंदार-कुमार मेरे राज्ञे प्रेमी हैं। मगर क्या वे मुझे अंगीकार करेंगे ? और यदि वे निंदा की परवाह न करके मुझे ग्रहण भी कर लें तो उनका मस्तक सदा के लिए नीचा हो जायगा और कभी न कभी उनका मत मेरी तरफ से फिर जायगा। वे मुझे अपने कुल का बर्ख्श समझने लगेंगे। या यहाँ से किसी तरह भाग जाऊँ ? लेकिन भाग कर जाऊँ वहाँ ? बाप के घर ? वहाँ अब मेरी पैठ नहीं। मंदार-कुमार के पास ? इसमें उनका अपमान है और चेरा भी। तो क्या मिसारिणी बन जाऊँ ? इसमें भी जग-हँसाई होगी और न जाने प्रवास, भावों किस मार्ग पर ले जाय। एक अवला स्त्री के लिए मुंदरणा प्रणयात्मक संघ से कम नहीं। ईश्वर, वह दिन न आये कि मैं क्षत्रिय-जाति का कल्क बनूँ। क्षत्रिय-जाति ने मर्यादा के लिए पानी की तरह रक्त बहाया है। उनकी हजारों देवियाँ परभुरष का मुँह देखने के भय से सूखी लकड़ी के समान जल बरी है। ईश्वर, वह भयो न आये कि मेरे कारण किसी राजपूत का सिर लज्जा से भीचा हो। नहीं, मैं इसी कँद में मर जाऊँगी। राणा के अन्याय गहूँगी, जलूँगी, मरूँगी, पर इसी घर में। विवाह निमित्त होना था, हो चुका। हृदय में उसको उपासना करूँगी, पर कँद के बाहर उसका नाम न निचालूँगी।

एक दिन होतछा कर उसने राणा को मुखा भेजा। न आये। उनका चेहरा

उतरा था। वे कुछ चितित्त-से थे। प्रभा कुछ कहना चाहती थी; पर उनकी मूर्त देख कर उसे उन पर दया आ गयी। उन्होंने उसे बात करने का अवसर न दे कर स्वयं कहना शुरू किया—

“प्रभा, तुमने आज मुझे बुलाया है। यह मेरा सौभाग्य है। तुमने मेरी मुक्ति तो ली, मगर यह मत समझो कि मैं—सूदु-बाणी गुनने की आना ले कर आया हूँ। नहीं, मैं जानती हूँ, जिसके लिए तुमने मुझे बुलाया है। यह लो, तुम्हारा अपराधी तुम्हारे सामने खड़ा है। उसे जो दंड चाहो, दो। मुझे अब तक आने का साहम न हुआ। इसका कारण यही दंड भय था। तुम सत्राणी हो और सत्राणियाँ क्षमा करना नहीं जानती। झालावाड़ में जब तुम मेरे साथ आने पर स्वयं उद्यत हो गयी, तो मैंने उम्मीद की तुम्हारे जोहर परल लिये। मुझे मालूम हो गया कि तुम्हारा हृदय बल और निस्वाम से भरा हुआ है। उसे काबू में राना सहन नहीं। तुम नहीं जानती कि यह एक माम मैंने किमी तरह काटा है। तड़प-तड़प कर मर रहा हूँ, पर जिन तरह चिकारी बकरी हुई—सिंहनी के सम्मुख जाने से डरता है, वही दशा मेरी थी। मैं कई बार आया।—यहाँ तुमकी उदाम तिउरियाँ चढ़ाव बैठे देवा। मुझे अंदर पैर रखने का साहम न हुआ; मगर आज मैं बिना बुलाया मेहमान नहीं हूँ। तुमने मुझे बुलाया है और तुम्हें अपने मेहमान का स्वागत करना चाहिए। हृदय ने—न—गही—जहाँ जनि अवलित हो, वहाँ ठंडक वहाँ?—वातो ही ने मही, अपने भावों को बचा कर ही मही, मेहमान का स्वागत करो। मंगार में राजा का आदर मित्रों से भी अधिक किया जाता है।

“प्रभा, एक क्षण के लिए क्रोध को सात करो और मेरे अपराधों पर विचार करो। तुम मेरे ऊपर यही दोषारोपण कर सकती हो कि मैं तुम्हें माता-पिता की गोद से छीन काया। तुम जानती हो, कृष्ण भगवान् रसिगणों को हर लाये थे। राजपूतों में यह कोई नयी बात नहीं है। तुम कहोगी, हमने झालावाड़वासियों का अपमान हुआ, पर ऐसा कहना कदापि ठीक नहीं। झालावाड़वासियों ने यहो किया, जो मर्दों का धर्म था। उनका पुरुषार्थ देख कर हम चकित हो गये। यदि मैं कृतकार्य नहीं हुए तो यह उनका दोष नहीं है। बीरों की सदैव जीत नहीं होती। हम इसलिए मरल हुए कि—हमारी संख्या अधिक थी

और इस काम के लिए तैयार हो कर गये थे। वे निश्चय थे, इस कारण उनको हार हुई। यदि हम वहाँ से शीघ्र ही प्राण बचा कर भाग न आते तो हमारे गति वही होती जो रावमाहव ने कही थी। एक भी चितोढ़ी न बचना। लेकिन ईश्वर के लिए यह मन मोचो कि मैं अपने अपराध के दूषण को मिटाना चाहता हूँ। नहीं, मुझमें अपराध हुआ और मैं हृदय में उम पर लज्जित हूँ। पर अब तो जो कुछ होना था, हो चुका। अब इस विगड़े हुए खेल को मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ना हूँ। यदि मुझे तुम्हारे हृदय में कोई स्थान मिले तो मैं उसे स्वर्ग समझूँगा। दूबते हुए को तिनके का सहारा भी बहुत है। क्या यह समभव है ?”

प्रभा बोली—नहीं।

रागा—आकाशवाद् जाना चाहती हो ?

प्रभा—नहीं।

रागा—मंदार के राजकुमार के पास भेज दूँ ?

प्रभा—कदापि नहीं।

रागा—लेकिन मुझमें यह तुम्हारा कुठना देखा नहीं जाता।

प्रभा—नाप इस कष्ट से शीघ्र ही मुक्त हो जायेंगे।

रागा ने भयभीत दृष्टि से देख कर कहा—“जैसा तुम्हारे इच्छा” और वे वहाँ से उठ कर चले गये।

५

इस बड़े रात का समय था। रणछोड़ जी के मंदिर में कौनसे समाज हों चुका था और वैष्णव साधु बैठे प्रसाद पा रहे थे। भीरा स्वयं अपने हाथों से घाल ला-ला कर उनके आगे रखती थी। साधुओं और अम्मायनों के आदर-सत्कार में उस देवी की आत्मिक आनंद प्राप्त होता था। साधुगण जिसे प्रेम से भोजन करते थे, उसमें यह शका होती थी कि स्वादपूर्ण समुग्रों में कहीं भक्ति-भजन से भी अधिक सुख तो नहीं है। यह निश्चय हो चुका है कि ईश्वर की दी हुई वस्तुओं का सदुपयोग ही ईश्वरोपामना की मुख्य रीति है। इसलिए ये महात्मा लोग उपामना के ऐसे अच्छे अवसरों को क्यों छोते ? वे कभी घेद पर हाथ फेरने और कभी आमन बदलते थे। मुँह से नहीं कहना तो वे भी

पाप के समान समझते थे। यह भी मानी हुई बात है कि जैसी वस्तुओं का हम ऐक्य करते हैं, वैसी ही आत्मा बनती है। इसलिए वे महात्मागण धी और धोये से उदर को खूब भर रहे थे।

पर इन्हीं में एक महात्मा ऐसे भी थे जो अखिरे बंद किये 'ध्यान' में मग्न थे। याल की ओर साकसे भी न थे। इनका नाम प्रेमानंद था। ये आज ही आये थे। इनके चेहरे पर कांति झलकती थी। अन्य साधु खा कर उठ गये, परंतु उन्होंने धाल छुआ भी नहीं।

मीरा ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज, आपने प्रसाद को छुआ भी नहीं। दासी से कोई अपराध तो नहीं हुआ ?

साधु—नहीं, इच्छा नहीं थी।

मीरा—पर मेरी विनय आपको माननी पड़ेगी।

साधु—मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा, तो तुमको भी मेरी एक बात माननी होगी।

मीरा—कहिए, क्या आज्ञा है ?

साधु—माननी पड़ेगी।

मीरा—मानूँगी।

साधु—वचन देती हो ?

मीरा—वचन देती हूँ, आप प्रसाद पावें।

मीराबाई ने समझा था कि साधु कोई मंदिर बनवाने या कोई यज्ञ पूर्ण करा देने की याचना करेगा। ऐसी बातें निरवश्वि हुआ ही करती थी और मीरा का सर्वत्र साधु-सेवा के लिए अर्पित था, परंतु उसके लिए साधु ने ऐसी कोई याचना न की। वह मीरा के कानों के पास मुँह के आ कर बोला—आज दो घंटे के बाद राज-भवन का घोर दरवाजा खोल-देना।

मीरा विस्मित हो कर बोली—आप गौन हैं ?

साधु—मंदार का राजकुमार।

मीरा ने राजकुमार को भिर से पाँव तक देखा। नेत्रों में आदर की समृद्ध पपा थी। कहा—राजपूत यों छल नहीं करते।

राजकुमार—यह निमग्न उसी अवस्था के लिए है जब दोनों पक्ष समान शक्ति रखते हों ।

मीरा—तैसा नहीं हो सकता ।

राजकुमार—आपने बचन दिया है, उसका पालन करना होगा ।

मीरा—महाराज की आज्ञा के सामने मेरे बचन का कोई महत्त्व नहीं ।

राजकुमार—मैं यह कुछ नहीं जानता । यदि आपको अपने बचन की कुछ भी मर्यादा रखनी है तो उसे पूरा करिए ।

मीरा—( मोच कर ) महल में जा कर क्या करेंगे ?

राजकुमार—नयी रानी में दो-दो बानें ।

मीरा चिन्ता में विमग्न हो गयी । एक तरफ राजा की कड़ी आज्ञा थी और दूसरी तरफ अपना बचन और उसका पालन करने का परिणाम । कितनी ही पौराणिक घटनाएँ उनके सामने आ रही थीं । दशरथ से बचन पालने के लिए अपने प्रिय पुत्र को बलवाम दे दिया । मैं बचन दे चुकी हूँ । उसे पूरा करना मेरा परम धर्म है, लेकिन पति की आज्ञा कैसे माँड़ूँ ? यदि उनकी आज्ञा के विरुद्ध करती हूँ तो लोक परलोक दोनों विगड़ते हैं । क्यों न उनसे स्पष्ट कह दूँ । क्या वे मेरी यह प्रार्थना स्वीकार न करेंगे ? मैंने आज तक उनसे कुछ नहीं माँगा । आज उनसे यह बात माँगींगी । क्या वे मेरे बचन की मर्यादा को रखा न करेंगे ? उनका हृत्प बिना बिनाग है ! निरगन्ध के मुक्त पर बचन टोड़ने का दोष न लगाने देंगे ।

‘इस तरह मन में निश्चय करके वह बोली—कब सोलूँ ?

राजकुमार ने उत्तर कर कहा—आयी रात की ।

मीरा—मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलेगी ।

राजकुमार—नहीं ?

मीरा—तुमने मेरे साथ छल किया है । मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं है ।

राजकुमार ने लज्जित हो कर कहा—जल्दा, तो आप द्वार पर खड़ी रहिएगा ।

मीरा—यदि फिर कोई दाग दिया तो जान से हाथ धोता पड़ेगा ।

राजकुमार—मैं सब कुछ सहने के लिए तैयार हूँ ।

१६

मीरा यही ॥ राणा की सेवा में पहुँची । वे उसका बहुत आदर करते थे । वे सड़े हो गये । इस समय मीरा का जाना एक असाधारण बात थी । उन्होंने पूछा—बाई जी, क्या आता है ?

मीरा—आपसे भिक्षा माँगने आयी हूँ । निरास न कीजिएगा । मैंने आज तक आपसे कोई विनती नहीं की, पर आज एक ब्रह्म-काँस में फँस गयी हूँ । इसमें ॥ मुझे आप ही निकाल सकने हैं ? मंदार के राजकुमार को तो आप जानते हैं ?

राणा—हाँ, अच्छी तरह ।

मीरा—आज उसने मुझे बड़ा धोखा दिया । एक वैष्णव महात्मा का रूप धारण कर रणछोड़ जी के मंदिर में आया और उसने इस करके मुझे वचन देने पर बाध्य किया । मेरा साहम नहीं होता कि उसकी कपट विनय आपसे कहूँ ।

राणा—प्रभा से मिला देने को तो नहीं कहा ?

मीरा—जी हाँ, उसका अभिनय वही है । लेकिन सचाल यह है कि मैं आपी श्रावण रात्रि राजमहल का युष्त द्वार खोल दूँ । मैंने उसे बहुत समझाया ; बहुत धमकाया, पर वह किसी भाँति न माना । निदान विवश हो कर जब मैंने कह दिया तब उसने प्रसाव पाया, अब मेरे वचन की छाज आपके हाथ है । आप चाहें उसे पूरा करके मेरा मान रखें, चाहे उसे तोड़ कर मेरा मान तोड़ दें । आप मेरे ऊपर जो कृपावृष्टि रखते हैं, उसी के भरोसे मैंने वचन दिया । अब मुझे इस फदे से उबारना आप ही का काम है ।

राणा कुछ देर सोच कर बोले—तुमने वचन दिया है, उसकी पालन करना मेरा कर्त्तव्य है । तुम देवी हो, तुम्हारे वचन नहीं टल सकते । द्वार खोल दो । लेकिन यह उचित नहीं है कि वह अकेले प्रभा से मुलाकात करे । तुम स्वयं उसके साथ जाओ । बेरी खानिद ये इतना कष्ट उठाना । मुझे भय है कि वह उसकी जान लेने का इरादा करके न आया हो । ईर्ष्या में मनुष्य अंधा हो जाता है । बाई जी, मैं अपने हृदय की बात तुमसे कहता हूँ । मुझे प्रभा की हर लाने का अत्यंत शोक है । मैंने ममज्ञा था कि यहाँ रहते-रहते वह हिल-मिल आयगी ; किंतु यह अनुमान गलत निकला । मुझे भय है कि यदि उसे कुछ दिन यहाँ

और रहना पड़ा तो यह जीती न बचेगी । मुझ पर एक भबला की हत्या का अपराध लग जायगा । मैंने उसमें आलावाह जाने के लिए कहा, पर वह राजी न हुई । आज तुम उन दोनों की बातें सुनो । अगर वह मंदार-कुमार के साथ जाने पर राजी हो, तो मैं प्रमद्वता-पूर्वक अनुमति दे दूँगा । मुझसे कुछना नहीं देगा जाता । ईश्वर इस मुदरो का हृदय मेरी ओर फेर देता तो जीवन-मफल हो जाता । किंतु जब यह सुख भाग्य में लिखा हो नहीं है तो क्या बरह है । मैंने तुमसे ये बातें कही, इसके लिए मुझे क्षमा करना । तुम्हारे पवित्र हृदय में ऐसे विषयों के लिये स्थान कहाँ ?

मीरा ने आकाश की ओर मनोंच से देख कर कहा—तो मुझे प्राज्ञा है ? मैं चोर-दार जोल हूँ ?

राणा—तुम इस घर की स्वामिनी हो, मुझसे पूछने की जरूरत नहीं । मीरा राणा को प्रणाम कर चली गयी ।

## ७

आधी रात बीत चुकी थी । प्रभा कुपचाप बँधी दीपक की ओर देख रही थी और सोचती थी; इसके घुलने से प्रकाश होता है, यह बती अगर जलती है तो दूसरों को लाभ पहुँचाती है । मेरे जलने से किसी को क्या लाभ ? मैं क्यों घुलूँ ? मेरे जलने की क्या जरूरत है ?

उसने फिर विडकी में मिर निकाल कर आकाश की तरफ देखा । काले पट पर लज्जवल तारे जगमगा रहे थे । प्रभा ने सोचा, मेरे अपकारमय भाग्य में मैं कीर्तिमान तारे कहाँ हूँ, मेरे लिए जीवन के सुख कहाँ हैं ? क्या रोने के लिए जीऊँ ? ऐसे जीने से क्या लाभ ? और जीने में उपहास भी तो है । मेरे मन का हाल कौन जानता है ? मंदार मेरी निंदा करता होगा । आलावाह की स्त्रियों मेरे मृत्यु के दुःख समाचार सुनने की प्रतीक्षा कर रही होंगी । मेरी प्रिय माता लज्जा ने आँसू न उठा सकती होंगी । लेकिन जिस समय मेरे मरने की खबर मिलेगी, गर्व से धनका-मस्तक ऊँचा हो जायगा । यह बेह्याई का बीबा है । ऐसे जीने से मरना कहीं उत्तम है ।

प्रभा ने तलिये के नीचे से एक थपकती हुई कटार निकाली । उसके हाथ काँप-रहे थे । उसने कटार की तरफ बाँस बसायी । हृदय की उसके अभिवादन



के लिए भँबवूत किया। हाथ उठाया, किंतु हाथ न उठा; आत्मा दुर्बल न थी।  
आँखें झपक गयीं। मिर में चक्कर आ गया। कटार हाथ में छूट कर जमीन पर  
गिर पड़ी।

प्रभा झुठ हो कर सोनने लगी—क्या मैं वास्तव में निर्लज्ज ? मैं राज-  
पूतनी हो कर मरने से डरती हूँ ? मान-मर्यादा को कर बेहया लोग ही जिया करते  
हैं। वह कौन-सी आकांक्षा है जिसने मेरी आत्मा को इतना निर्वल बना रखा  
है। क्या राणा की मोठी-मोठी बातें ? राणा मेरे शत्रु हैं। उन्होंने मुझे गद्गु समझ  
रखा है, जिसे फँसाने के पश्चात् हम पिंजरे में बंद करके हिलाते हैं। उन्होंने मेरे  
मन को अपनी वाचन-मधुरता का झोडा-स्वल समझ लिया है। वे इन तरह धुमा-  
धुमा कर बातें करते हैं और मेरी तरफ से युक्तिवाँ निकाल कर डगडग ऐसा  
उत्तर देते हैं कि जवान ही बंद हो जाती है। हाथ ! निर्दोष ने मेरा जीवन नष्ट  
कर दिया और मुझे यों खेलाता है ! क्या इसीलिए जोड़ें कि उनके कपट भावों  
का खिलौना बनूँ ?

फिर वह कौन-सी मनिलापा है ? क्या राजकुमार का प्रेम ? उनकी तो अब  
कलना हो-मेरे लिए घोर पाप है। मैं अब उस देवता के योग्य नहीं हूँ, श्रियतम !  
बहुत दिन हुए मैंने तुमको हृदय से निकाल दिया। तुम भी मुझे दिल से निकाल  
जालो। मृत्यु के निधाम अब कहीं मेरा ठिकाना नहीं है। शंकर ! मेरी निर्वल  
आत्मा को शक्ति प्रदान करो। मुझे कर्तव्य-पालन का बल दो।

प्रभा ने फिर कटार निकाली। इच्छा दृढ़ थी। हाथ उठा और निकट था  
कि कटार उसके शोकातुर हृदय में धुँस जाय कि इतने में किसी के पाँव की  
आहट सुनायी दी। उसने चौंक कर महमूद हुई दृष्टि में देखा। बंदार-कुमार धीरे-  
धीरे पैर धवागा हुआ कमरे में दाखिल हुआ।

प्रभा उसे देखने ही चौंक पड़ी। उसने कटार को छिपा लिया। राजकुमार  
को देख कर उसे आनंद की जगह रोमांचकारी भव उत्पन्न हुआ। यदि किसी को  
जरा भी संदेह हो गया तो इनका प्राण बेचना कठिन है। इनके मुरत, यहाँ से  
निकल जाना चाहिए। यदि इन्हें बातें करने का अवसर दूँ तो विलम्ब होगा और  
फिर मे अवश्य ही फँस जावँगे। राणा इन्हें कदापि न छोड़ेंगे। वे बिचार वायु और

विजली की मधुरता के साथ उनके मस्तिष्क में दोड़ें। वह तीव्र स्वर में बोली—  
भीतर मत आओ।

राजकुमार ने पूछा—मुझे पहचाना नहीं ?

प्रभा—खुब पहचान लिखा; किन्तु यह बातें करने का समय नहीं है। राणा तुम्हारी बात में है। अभी यहाँ से चले जाओ।

राजकुमार ने एक पल और आगे बढ़ाया और निर्भीकता से कहा—प्रभा तुम मुझसे निष्ठुरता करती हो।

प्रभा ने धमका कर कहा—तुम यहाँ टहरोगे तो मैं दूर भगा दूँगी।

राजकुमार ने जड़ता से उत्तर दिया—इसका मुझे भय नहीं। मैं अपनी जान हथेली पर रख कर आया हूँ। आज दोनों में से एक का अंत हो जाएगा। या तो राणा खों या मैं रहूँगा। तुम मरे साध चलोगी ?

प्रभा ने दुश्ता से कहा—नहीं।

राजकुमार व्यर्थ भाव में बोला—कभी, क्या वित्तीर का जकड़ना पसंद आ गया ?

प्रभा ने राजकुमार को ओर निरस्तृत नेत्रों से देख कर कहा—संसार में अपनी मर्त थागाएँ पूरी नहीं होती। जिस तरह यहाँ मैं अपना जीवन काट रही हूँ, वह मैं ही जानती हूँ, किन्तु लोच-निदा भी तो कोई चीज है ! मेमर की दृष्टि में वित्तीर की रानी हो चुकी। अब राणा जिस भाँति रों उसी भाँति रहूँगी। मैं अंत समय तक उनसे मृणा कहूँगी, जर्खूँगी, कुर्खूँगी। जब जलन न सही जायगी, तो फिर ला लूँगी या छापी में कटार मार कर मर जाऊँगी, लेकिन इसी भवन में। इस घर के बाहर कदापि पैर न रखूँगी।

राजकुमार के मन में सदेह हुआ कि प्रभा पर राणा की वसोकरण भय बल गया। यह मुझसे छत्र कर रही है। प्रेम की जगह ईर्ष्या पैदा हुई। वह उसी भाव से बोली—और यदि मैं यहाँ से उठा ले जाऊँ ? प्रभा के तीव्र बदल गये। बोली—तो मैं वहीं कहूँगी जो ऐसे अवस्था में क्षमाश्रिया करती है। अपने गले में धूँती मार लूँगी या तुम्हारे गले में।

राजकुमार एक पल और खाने बसा कर यह कटु-वाक्य बोला—राणा के साथ तो तुम खुशी से चले आओ। उस समय यह धुँती कहाँ गयी थी ?

प्रभा को यह शब्द भर-भा लगा। वह तिलमिला कर बोली—उस समय इसी छूरी के एक बार से खून की नदी बहने लगती। मैं नहीं चाहती थी कि मेरे कारण मेरे भाई-बंधुओं की जान जाय। इसके सिवाय मैं कुंवारी थी। मुझे अपनी मर्यादा के भंग होने का कोई भय न था। मैंने पातिव्रत नहीं लिया। कम से कम संसार मुझे ऐसा समझता था। मैं अपनी दृष्टि में अब भी वही हूँ, किन्तु संसार की दृष्टि में कुछ और हो गयी हूँ। लोक-लाज ने मुझे राणा की आज्ञाकारिणी बना दिया है। पतिव्रता की बेड़ी जबरदस्ती मेरे पैरों में डाल दी गयी है। अब इसको रखा करना मेरा धर्म है। इसके विपरीत और कुछ करना क्षत्राणियों के नाम को कलंकित करना है। तुम मेरे भाव पर व्यर्थ नमक क्यों छिड़कते हो? यह कौन-सी भलमनमो है? मेरे भाग्य में जो कुछ बदा है, वह भाग रही हूँ। मुझे भोगने दो और तुमसे बिनती करती हूँ कि क्षीघ्र हो यहाँ से चले जाओ।

राजकुमार एक पल और बड़ा कर दुष्ट-भाव से बोला—प्रभा, यहाँ आ कर तुम त्रियाचरित्र में निपुण हो गयी। तुम मेरे साथ विश्रामघात करके अब धर्म की आड़ ले रही हो। तुमने मेरे प्रणय को पैरों तले कुचल दिया और अब मर्यादा का बहाना खूँड रही हो। मैं इस नेत्रों से राणा को तुम्हारे सौंदर्य-पुष्प का भ्रमूर बनते नहीं देख सकता। मेरी कामनाएँ मिट्टी में मिलती हैं, तो तुम्हें ले कर जायेंगी। मेरा जीवन नष्ट होना है तो उसके पहिले तुम्हारे जीवन का भी अंत होगा। तुम्हारी बेवक़ाई का यहो दंड है। बोली, क्या निश्चय करती हो? इस समय मेरे साथ चलती हो या नहीं? किले के बाहर मेरे आदमी खड़े हैं।

प्रभा ने निर्भयता से कहा—नहीं।

राजकुमार—सोच लो, नहीं तो पछताओगी।

प्रभा—सूच सोच लिया।

राजकुमार ने तलवार खींच ली और वह प्रभा की तरफ लपके। प्रभा भय से थोड़े दंड क्रिये एक कदम पीछे हट गयी। मालूम होता था, उसे सूँछा जा जायगी।

अकस्मात् राणा तलवार लिये बेग के साथ कमरे में दाखिल हुए। राजकुमार रोबल कर खड़ा हो बना।

राणा ने सिंह के भगवान शरज वर कहा—दूर हट । शत्रिय स्त्रियों पर हाथ नहीं उठाते ।

राजकुमार ने तन कर उत्तर दिया—राजाहीन स्त्रियों की यही मजा है ।

राणा ने कहा—तुम्हारा बैरी तो मैं था । मेरे मामने आते बगो लगते थे । जरा मैं भी तुम्हारी तलवार को काट देवगा ।

राजकुमार ने ऐंठ कर राणा पर तलवार चलायी । दस्त-बिद्या में राणा अति कुशल थे । बार खाकी दे कर राजकुमार पर झपटे । इतने में प्रभा, जो मूर्च्छित अवस्था में दीवार से चिमटी गयी थी, बिजली की तरह भाँप कर राजकुमार के सामने खड़ी हो गयी । राणा बार कर चुके थे । तलवार का पूरा हाथ उसके कंधे पर पड़ा । रक्त की फूहार छूटने लगी । राणा ने एक ठंडी माँस ली और उन्होंने तलवार हाथ से फेंक कर गिरनी हुई प्रभा को संभाल लिया ।

क्षणमात्र में प्रभा का मुखमंडल वर्णहीन हो गया । आँसू बूझ गयीं । दीपक टंडा हो गया । मदार-कुमार ने भी तलवार फेंक दी और वह आँसु में आँसू भर प्रभा के सामने घुटने टेक कर बैठ गया । दोनों प्रेमियों की आँसू मजल थीं । पतिने बुझे हुए दीपक पर जान दे रहे थे ।

प्रेम के रहस्य निचले हैं । अभी एक क्षण हुआ, राजकुमार प्रभा पर तलवार ले कर झनटा था । प्रभा किसी प्रकार उसके माथ चलने पर उद्यत न होती थी । लज्जा का भय, धर्म की बैड़ी, कर्तव्य की दीवार रास्ता रोके खड़ी थी । परंतु उसे तलवार के सामने देख कर उसने उस पर अपना प्राण अर्पण कर दिया । प्रीति की प्रथा निवाह दी, लेकिन अपने वचन के अनुसार उसी घर में ।

हाँ, प्रेम के रहस्य निचले हैं । अभी एक क्षण पहले राजकुमार प्रभा पर तलवार ले कर झपटा था । उसके खून का प्योमा था । ईर्ष्या की अग्नि उसके हृदय में दहक रही थी । वह रश्मि की धारा से सात हो गयी । कुछ देर तक बहुअनंत बैठा रोता रहा । फिर उठा और उसने तलवार उठा कर जोर से अपनी छाती में चुभा ली । फिर रक्त की फूहार निवली । दोनों पारस्परिक मिल गयीं और उनमें कोई भेद न रहा ।

प्रभा उसके साथ चलने पर राजी न थी । किन्तु वह प्रेम के बंधन को तोड़ न सकी । दोनों उस घर ही से नहीं, संसार से एक साथ निधारे ।

## मृत्यु के पीछे

बाबू ईश्वरचंद्र को समाचारपत्रों में लेख लिखने की बात उन्हीं दिनों पड़ी जब वे विद्याभ्यास कर रहे थे। नित्य नये विषयों की चिन्ता में लीन रहते। पत्रों में अपना नाम देख कर उन्हें उमने बड़ी ज्यादा खुशी होती थी जितनी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने या कक्षा में उत्कृष्टस्थान प्राप्त करने से हो सकती थी। वह अपने कालेज के "गरम-दल" के नेता थे। समाचारपत्रों में परीक्षापत्रों की जटिलता या अध्यापकों के अनुचित व्यवहार की शिकायत का भार उन्हीं के मिर था। इसने उन्हें कालेज में प्रतिनिधित्व का काम मिल गया। प्रतिरोध के प्रत्येक अवसर पर उन्हीं के नाम नेतृत्व की गोदी पड़ जाती थी। उन्हें विश्वास हो गया था कि मैं इस परिमित क्षेत्र से निकल कर गंगार के विस्तृत-क्षेत्र में अधिक सफल हो सकता हूँ। सार्वजनिक जीवन को वह अपना भाग्य ममन धीरे थे। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि अभी एम० ए० परीक्षाधियों में उनका नाम निकलने भी न पाया था कि 'गौरव' के सम्पादक महोदय ने घाणप्रस्थ लेने की ठानी और पत्रिका का भार ईश्वरचंद्र दत्त के मिर पर रखने का निश्चय किया। बाबू जी को यह समाचार मिला तो उछल पड़े। धन्य भाग्य कि मैं इस सम्मानित पद के योग्य मगझा गया। इसमें संदेह नहीं कि वह इस दायित्व के गुहत्व में भंजी-भांति परिचित थे, लेकिन कीर्तिलाभ के प्रेम ने उन्हें बाधक परिस्थितियों का सामना करने पर उद्यत कर दिया। वह इस व्यवसाय में स्वातन्त्र्य, आत्मगौरव, अनुशीलन और दायित्व की भाषा को बढाना चाहते थे। भारतीय पत्रों को पश्चिम के आदर्श पर चलाने के इच्छुक थे। इन इरादों के पूरा करने का मुजबवर हाथ जाया। वे प्रेमोत्साह से उत्तेजित हो कर नाचो में कूद पड़े।

ईश्वरचंद्र की पत्नी एक ऊँचे और घनाढ्य कुल की लड़की थी और वह ऐसे कुलों की मर्यादश्रिता तथा मिथ्या गौरवप्रेम से सम्पन्न थी। यह समाचार

पा कर डरो कि पति महाशय कड़ी इन झल्लों में फँस कर कानून से मुँह न मोड़ें। लेकिन जब बाबू साहब ने आश्वासन दिया कि यह कार्य उनके कानून के अन्तर्गत में बाधक न होगा, तो कुछ न बोली।

लेकिन ईश्वरचन्द्र को बहुत जल्द मालूम हो गया कि पत्रसम्पादन एक बहुत ही ईर्ष्यायुक्त कार्य है, जो चित्त की समग्र वृत्तियों का अपहरण कर लेता है। उन्होंने इसे मनोरंजन का एक माध्यम और हानिनिवृत्ति का एक मध्यम समझा था। उसके द्वारा जाति की कुछ सेवा करना चाहते थे। उसमें ईर्ष्या-पात्रता का विचार तक न छिपा था। लेकिन नौका में बँध कर उन्हें अनुभव हुआ कि यात्रा उतनी सुखद नहीं है जितनी समझी थी। लेखों के संग्रोहन, परिवर्तन और परिवर्तन, लेखकगण से पत्र-व्यवहार और चित्ताकर्षक विषयों की खोज और सहयोगियों में आगे बढ़ जाने की चिंता में उन्हें कानून का अध्ययन करने का अवकाश ही न मिलता था। सुबह को किताबें खोल कर बैठते कि १०० पृष्ठ गमनाय किसे बिना बचापि न पढ़ेंगे, किन्तु प्यों ही शक का पुलंदा आ जाता, वे अधीर हो कर उन पर दूध पड़ते, किताबें तुली की तुली रह जाती थी। बार-बार सन्तुष्ट करते कि अब निश्चित रूप से पुनरावलोकन करेंगे और एक निश्चित समय में अधिक सम्पादनकार्य में न लगाऊँगे। लेकिन पत्रिकाओं का बँडल सामने आते ही दिल काबू के बाहर हो जाता। पत्रों की नोक-झोंक, पत्रिकाओं के तर्क-वितर्क, आलोचना-प्रत्यालोचना, कवियों के काव्यचमत्कार, छन्दों का रचनाकौशल इत्यादि सभी बातें उन पर आँकू का काम करती। इस पर छाई की कठिनाइयों, ग्राहकमंड्या बढ़ाने की चिंता और पत्रिका की सर्वांग-मुंदर बनाने की आकांक्षा और भी प्राणों की सक्क में डाले रहती थी। कभी-कभी उन्हें खेद होता कि क्या ही इस शमले में पत्र। यहाँ तक कि परीक्षा के दिन सिर पर आ गये और वे इसके लिए बिल्कुल तैयार न थे। वे उनमें सम्मिलित न हुए। मन को समझाया कि अभी इस काम का थोकावट है, इसी कारण यह सब धोखा है उत्पन्न होती है। अगले वर्ष यह काम एक सुन्दरस्थित रूप में आ जायगा और तब वे निश्चित हो कर परीक्षा में बैठेंगे। पास कर लेना क्या कठिन है। ऐसे बुद्धि-पाश हो जाते हैं जो एक सोचा-सा लेख भी नहीं लिख सकते, तो क्या

में हो रह जाऊँगा ? मानकी ने उनकी यह बातें सुनी तो बुरा दिल के फसले फोड़े—'मैं तो जानती थी कि यह घुन तुम्हें मडियामेट कर देगी। इसीलिए बार-बार रोकती थी; लेकिन तुमने मेरी एक न सुनी। आप तो दूबे ही, मुझे भी ले दूबे।' उनके पूज्य पिता भी विगड़े, हितैषियों ने भी समझाया—'अभी हम काम को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दो, कानून में उत्तीर्ण हो कर निर्दोष देशोद्धार में प्रवृत्त हो जाना।' लेकिन ईश्वरचंद्र एक बार मंदिर में आ कर भावना निष्काम करते थे। हाँ, उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि दूसरे ताल परीक्षा के लिए तन-मन से तैयारी करूँगा।

अनएव नये वर्ष के पदार्पण करते ही उन्होंने कानून की पुस्तकें संग्रह की, पाठपत्रम् निश्चित किया, रोगनामचा लिखने लगे और अपने चंचल और बहानेबाज चित्त को चारों ओर से जकड़ा, मगर चटपटे पदार्थों का आस्वादन करने के बाद मरल भोजन का रुचिकर होता है। कानून में वे घातें कहीं, घह उन्माव कहीं, वे चोटें कहीं, घह उत्तेजना कहीं, वह हलचल कहीं। बाबू साहय अब नित्य एक खोपी हुई दशा में रहते। जब तक अपने इच्छानुकूल काम करते थे, चौबीस घंटों में घंटे दो घंटे कानून भी देख लिया करते थे। इस नये नै मानसिक शक्तियों को निविल कर दिया। स्नायु निर्जीव हो गये। उन्हें शांत होने लगा कि अब मैं कानून के लायक नहीं रहा और उम्र जान मैं कानून के प्रति उदासीनता का रूप धारण किया। मन में सतोषवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। प्रारब्ध और पूर्वसंस्कार के मिढातो की शरण लेने लगे।

• • एक दिन मानकी ने कहा—यह क्या बात है ? क्या कानून से किर जी का उखाट हुआ ?

ईश्वरचंद्र ने दुस्साहपूर्व भाव से उत्तर दिया—हाँ बई, मेरा जी उससे भागता है।

मानकी ने व्यर्थ से कहा—बहुत कठिन है ?

ईश्वरचंद्र—कठिन नहीं है, और कठिन भी होता तो मैं उससे दूरनेवाला न था, लेकिन मुझे कालत का मेरा ही प्रतिष्ठ प्रतीत होता है। उम्र-उम्र बकीलों को आतंरिक दशा का ज्ञान होता है, मुझे उम्र में से घूसा होती जानी है। उम्र शहर में मकड़ों बकौल और बेरिस्टर पड़े हुए हैं, लेकिन एक व्यक्ति, जो

ऐसा नहीं जिसके हृदय में दया हो, जो स्वाभिमता के हाथों बिक न गया हो। छत्र और धूर्तता इन पेरो का मूलतन्त्र है। हमके बिना किसी तरह निर्वाह नहीं। अगर कोई मनुष्य जानीब आदोलन में शरीक भी होते हैं, तो स्वार्थ-सिद्धि करने के लिए, अपना डोल पीटने के लिए। हम लोगों का समग्र जीवन वामना-भक्ति पर अर्पित हो जाता है। दुर्भाग्य से हमारे देश का शिक्षित समुदाय इसी दर्गाह का मुजावर होता जाता है और यही कारण है कि हमारा राष्ट्रीय संस्थाओं की दौध बृद्धि नहीं होती। जिस काम में हमारा दिल न हो, हम केवल श्रुति और स्वार्थ-ज्ञान के लिए उसके कर्गधार बने हुए हों, वह कभी नहीं हो सकता। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का अन्वय है जिसने हम देश को इतना उच्च स्थान प्रदान कर दिया है। यह विदेशी-साम्यता का निष्ठुष्टतम स्वरूप है कि देश का बुद्धिबल स्वयं अनौपचारिक न करके हमारे की पैदा की हुई दील्लत पर खन करना, शहद को मसखी न बन कर, पीटी बनना अपने जीवन का लक्ष्य समझना है।

मानकी बिड़ कर बोली—पहले तो तुम बचीली की इतनी निश न करते थे!

ईश्वरचन्द्र ने उत्तर दिया—तब अनुभव न था। बाहरी टीमटाम ने बचीकरण कर दिया था।

मानकी—क्या जाने तुम्हें पत्रों से क्यों इतना प्रेम है, मैं तो जिसे देखती हूँ, अपनी कठिनाइयों का रोना रोने हुए पाती हूँ। कोई अपने ग्राहकों से लये ग्राहक बनाने का अनुरोध करता है, कोई बस न बमूल होने की शिक्षाप्रप्त करता है। बता दो कि कोई उच्च शिक्षाप्रान्त मनुष्य कभी हम पेरो में आया है। जिसे कुछ नहीं मुझती, जिसके पास न कोई मनेद है, न कोई टिप्पणी, वही पय निवाना बैटना है और भूषों मरवों की अपेक्षा खुसी रोटियों पर ही संतोष करता है। लोग विलासत जाने हैं, वहाँ कोई पटला डाल्टरी, कोई इजिबियरी, कोई सिविल मर्विस, लेकिन आज तक न सुना कि कोई ऐसीटरों का काम सीखने गया। क्यों सीखे? किसी को क्या पड़ी है कि जीवन की महत्वाकांक्षाओं को खान में मिला कर त्याग और विराग में उग्र बाटे? हाँ, जिनको सनक मवार हो गये हो, उनकी बात निराली है।



मे देव कर हतोत्साह ही जात थे। हाँ ! मैंने अपना सारा जीवन सार्वजनिक कार्यों में व्यतीत किया, खेत को बोया, मोचा, दिन को दिन और रात को रात न समझा, धूप में जळा, पानी में भीसा और इतने परिश्रम के बाद जब प्रमथ काटने के दिन आये तो मुझमें हँसिया पकड़ने का भी बूता नहीं। हमारे लोग जिनका उम्र समय कही पता न था, अनाथ काट काट कर खलिहान में लेते हैं और मैं खड़ा मुँह ताकता हूँ। उन्हें पूरा विश्वास था कि अगर कोई उत्साहशील दुबका मेरा शरीर हो जाता तो "गौरव" अब भी अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त कर सकता। सम्य-समाज में उनकी घाक जमी हुई थी, परिस्थिति उनके अनुकूल थी। जरूरत केवल ताजे खून की थी। उन्हें अपने घबरे लड़के से क्यादा उपयुक्त इस काम के लिए और कोई न दीवता था। उनकी रुचि भी इस काम की ओर थी, पर मानकी के भय में वह इस विचार को जवान पर न ला सके थे। इसी चिन्ता में दो मास गुजर गये और यहाँ तक गीबत पहुँची कि या तो "गौरव" का टाट उलट दिया जाय या इसे पुनः अपने स्थान पर पहुँचाने के लिए कटिबद्ध हुआ जाय। ईश्वरचंद्र ने इसके पुनर्धार के लिए अंतिम उद्योग करने का दुःख निश्चय कर लिया। इसके मित्र और कोई उपाय न था। यह पत्रिका उनके जीवन का सर्वस्व थी। हममें उनके जीवन और मृत्यु का सम्बन्ध था। उनकी धंद करने की यह कल्पना भी न कर सकते थे। यद्यपि उनका स्वास्थ्य अच्छा न था, पर प्राणरक्षा की स्वभाविक इच्छा ने उन्हें अपना सब कुछ अपनी पत्रिका पर न्योछावर करने को उत्तेजित कर दिया। फिर दिन के दिन लिखने-पढ़ने में रत रहने लगे। एक क्षण के लिए भी गिर न उठाते। "गौरव" के लेखों में फिर-सजीवता का उद्भव हुआ, विद्वज्जनों में फिर उसकी चर्चा होने लगी, सहयोगियों ने फिर उसके सेलो को उद्घृत करना शुरू किया, पत्रिकाओं में फिर उसकी प्रशंसाभूचक आलोचनाएँ निकलने लगीं। पुराने उस्ताद की ललकार फिर जमाड़े में गूँजने लगीं।

लेटिन पत्रिका के पुनः संस्कार के साथ उनका शरीर और भी जर्जर होने लगा। हृद्रोग के लक्षण दिखायी देने लगे। रक्त की न्यूनता में मृत्यु पर पीछा पड़ गया। ऐसी दशा में वह कुछह से घाम तक अपने काम में तल्लीन रहते। देश, धन और धर्म का संशय छिड़ा हुआ था। ईश्वरचंद्र की सदाय प्रवृत्ति में

उन्हें भ्रम का गपनी बना दिया था। धनवादियों का संठन और प्रतिवाद करते हुए उनके सून में गरमो आ जानी थी, शब्दों से चिनगारियाँ निकलने लगती थी; यद्यपि यह चिनगारियाँ केंद्रस्थ गरमो को छिन्न किये देती थीं।

एक दिन रात के दस बजे गये थे। सरती खूब पड़ रही थी। मानकी दबे पैर उनके कमरे में आयी। दीपक की ज्योति में उनके मुख का पीलापन और भी स्पष्ट हो गया था। वह हाथ में कलम लिये किसी विचार में मान थे। मानकी के जाने की उन्हें जरा भी आहट न मिली। मानकी एक क्षण तक उन्हें वेदना-मुक्त नेत्रों से ताकती रही। तब बोली, 'अब तो यह पोशा बंद करो। आधी रात होने को आयी खाना पानी हुआ जाता है।'

ईश्वरचंद्र ने चौंक कर मिर उठाया और बोले—क्यों, क्या आधी रात हो गयी? नहीं, अभी मुन्किल से दस बजे होंगे। मुझे अभी जरा भी भूख नहीं है।

मानकी—बुछ थोड़ा-आ खा लो न।

ईश्वर०—एक घास भी नहीं। मुझे इसी समय अपना लेख समाप्त करता है।

मानकी—मैं देखती हूँ, तुम्हारी दशा दिन-दिन बिगड़ती जाती है। दवा क्यों नहीं करते? जान खपा कर भोजे ही काम किया जाता है?

ईश्वर०—अपनी जान को देखूँ या इन घोर नयान को? देखूँ जिसने समस्त देश में हलचल मचा रखी है। हजारों-लाखों जातों को हिमायत में एक जान न भी रहे तो क्या चिंता?

मानकी—कोई सुयोग्य सहायक क्यों नहीं रख लेते?

ईश्वरचंद्र ने टंटी साँम ले कर कहा—बहुत सोचता हूँ, पर कोई नहीं मिलता। एक विचार कई दिनों से मेरे मन में उठ रहा है, 'अगर तुम धर्म से मुक्तता चाहो, तो यह है।'

मानकी—क्यों, सुनौली? मानने लगक होगी, तो मानौगी क्यों नहीं!

ईश्वरचंद्र—मैं चाहता हूँ कि कृष्णचंद्र को अपने काम में परीक कर लूँ। शायद तो वह एम० ए० भी हो गया। इस पेजे से उसे रुचि भी है, मादूम होता है कि ईश्वर ने उसे इसी काम के लिए बनाया है।

मानकी ने जवहेलना-भाव से कहा—क्या अपने साथ उसे भी ले दूँगे

का दरादा है ? घर को सेवा करनेवाला भी कोई चाहिए कि सब देश को ही सेवा करेंगे ?

ईश्वर०—कृष्णचंद्र यहाँ किसी से बुरा न रहेगा ।

मानकी—शमा कीजिए । बाज्र आयी । वह कोई दूसरा काम करेगा जहाँ बार पैसे मिले । यह घर-झूक नाम आप ही को मुबारक रहे ।

ईश्वर०—बहालज में भेजोमी, पर देख लेना, पछानना पड़ेगा । कृष्णचंद्र उस पैसे के लिए सबैसा अग्रोम है ।

मानकी—वह चाहे मजूरी करे, पर इस काम में न डालूंगी ।

ईश्वर०—तुमने मुझे देखकर समझ लिया कि इस काम में घाटा ही घाटा है । पर इसी देश में ऐसे भाग्यवान् लोग मौजूद हैं जो पत्नी की बदौलत धन और कीर्ति से मालामाल हो रहे हैं ।

मानकी—इस काम में तो अगर कबन की बरसे, तो मैं उसे न धाने दूँ । साँप जीवन वैराग्य में बट गया । अब कुछ दिन भोग भी करना चाहती हूँ ।

यह बातें को सच्चा सेवक अंत को जातीय कष्टों के साथ रोग के कष्टों को न सह सका । हम-वातालाप के बाज्र मुक्तिक से भी महीने गुजरे थे कि ईश्वरचंद्र ने संसार से प्रस्थान किया । उनका सारा जीवन सत्य के पोषण, ध्यान की रक्षा और प्रजा कष्टों के विरोध में कटा था । अपने सिद्धांतों के पालन में उन्हें कितनी ही बार अधिकारियों की तीव्र दृष्टि का भाजन बनना पड़ा था, कितनी ही बार जनता का अविश्वास, यहाँ तक कि मित्रों की अवहेलना भी सहनी पड़ी थी, पर उन्होंने अपनी आत्मा को कभी हल नही किया । आत्मा के गौरव के सामने धन को कुछ न समझा ।

इस लोकसमाचार के फैलते ही सारे शहर में कुहराम मच गया । बाजारें बंद हो गये, शोक के जलम होने लगे, सहयोगी पक्षों ने प्रतिद्वंद्विता के भाव को त्याग दिया, चारों ओर से एक ध्वनि आयी थी कि देश से एक स्वतंत्र, सत्यवादी और बिनारजोल सम्पादक तथा एक निर्भीक, त्यागी, देश-भक्त उठ गया और उसके स्थान निरकाल तक खाली रहेगा । ईश्वरचंद्र इनके बहुजनप्रिय हैं, इसका उनके घरवालों को ध्यान भी न था । उनका सत्य निराला तो सारा शहर, गण्य-अगण्य, अर्थी के साथ था । उनके स्मारक बनने लगे ।

वह मूर्ति के चरणों पर गिर पड़ी और मुँह ढोप कर रोने लगी। मन के भाव प्रविष्ट हो गये।

वह घर आयी तो नौ बज गये थे। कृष्ण उगे देव कर बोले—अम्मा, भाग आर हय बचन कही गयी थी ?

मानकी ने हृष्य से कहा—गयी थी तुम्हारे बाबू भी थी प्रतिमा के दर्शन करने। ऐसा मानस्य होता है, वही भासात् मरे है।

कृष्ण—जयपुर में घन कर आयी है।

मानकी—पहले तो लोग उनका इतना आदर न करते थे ?

कृष्ण—उनका मारा जीवन गरव और श्राव की बराबर में पुत्रा है। ऐसे ही महात्माओं की पूजा होती है।

मानकी—लेकिन उन्होंने बचालन कर को ?

कृष्ण—हाँ, यह बचालन नदी की ओर से और मेरे दूसरे भाई कर रहे हैं, जिसने स्थाप और धर्म का खून हो रहा है। उनकी बचालन उबककौटि की थी।

मानकी—अगर ऐसा है, तो तुम भी वही बचालन क्यों नहीं करते ?

कृष्ण—बहुत कष्टि है। दुनिया का जहाल अपने मिर लीनिए, दुगरो के लिए रोइए, धीनों की रक्षा के लिए रुद्ध लिये किरिए, और इन कष्ट और अमान और संभवा का पुस्तार बना है ? अपनी जीवनाभिजापाओं की हस्या।

मानकी—लेकिन घर तो होता है ?

कृष्ण—हाँ, यह होता है। लोग आशीर्वाद देते हैं।

मानकी—जब इनका यश मिलता है तो तुम भी वही काम करो। हम लोग उस पवित्र आत्मा की और कुछ सेवा वही कर मरने तो उती। बाटिका को बलाने जायें जो उन्होंने अपने जीवन में इतने उत्सव और भक्ति से लगायी। इसमें उनकी आत्मा की शानि होगी।

कृष्णचंद्र ने माता की श्रद्धांजलि में देव कर कहा—वक्त तो मगर संभव है, तब यह टोम-टाम न निभ सके। सायद फिर वही पहले की-सी दशा हो जाय।

मानकी—कौई हरज नहीं। संसार में भय तो होगा ? आर तो अगर घन की देवी भी मेरे सामने आयें, तो मैं जीब न जीवी करूँ।

## पाप का अग्निकुंड

कुँवर पृथ्वीसिंह महाराज यशवंतसिंह के पुत्र थे। रूप, गुण और विद्या में प्रसिद्ध थे। ईरान, मिस्र, स्वाम आदि देशों में परिचय प्राप्त कर चुके थे और कई भाषाओं के पंडित समझे जाते थे। इनको एक बहिन थी त्रिमला नाम राजनंदिनी था। यह भी जैसी मुरुपवती और सर्वगुणगणप्राप्ति थी वैसी ही प्रेमप्रपन्नता और मृदुभाषिणी भी थी। कड़वी बात कह कर किसी का भी दुखाना उसे पसंद नहीं था। पाप को तो वह अपने पास भी नहीं फटकने देती थी। यहाँ तक कि कई बार महाराज यशवंतसिंह में भी वाद-विवाद कर चुकी थी और जब कभी उन्हें किसी बहाने कोई अनुचित काम करने देखनी, तो उसे यथाशक्ति रोकने की चेष्टा करती। इनका ब्याह कुँवर धर्मसिंह में हुआ था। यह एक छोटी रिपामन का अधिकारी और महाराज यशवंतसिंह की सेना का उच्च पदाधिकारी था। धर्मसिंह बड़ा उदार और कर्मवीर था। उसे होनहार देख कर महाराज ने राजनंदिनी को इसके साथ ब्याह दिया था और दोनों बड़े प्रेम में अपना वैवाहिक जीवन बिताते थे। धर्मसिंह अधिकतर जोधपुर में ही रहता था। पृथ्वीसिंह उसके गाढ़े मित्र थे। इनमें जैसी मित्रता थी, वैसी भाइयों में भी नहीं होती। जिस प्रकार इन दोनों राजकुमारों में मित्रता थी, उसी प्रकार दोनों राजकुमारियाँ भी एक दूसरे पर जान देती थीं। पृथ्वीसिंह की स्त्री दुर्गाकुँवर बहुत सुशीला और चतुर थी। जनक-भाव में जनक होना लोक-रोति है, पर इन दोनों में इतना स्नेह था कि एक के बिना दूसरी को कभी कुल नहीं पड़ता था। दोनों स्त्रियाँ संस्कृत से प्रेम रखती थीं।

एक दिन दोनों राजकुमारियाँ बाग की ओर में गयी थी कि एक दासी ने राजनंदिनी के हाथ में एक कागज ला कर रख दिया। राजनंदिनी ने उसे खोला तो वह संस्कृत का एक पत्र था। उसे पत्र कर अपने दासों से कहा कि उन्हें भेज दे। थोड़ी देर में एक स्त्री सिर से पैर तक एक चादर ओढ़े आती दिखायी दी। इसकी उम्र २५ साल से अधिक न थी, पर रंग पीला था। बर्तन

बड़ी और ओठ सूखी। बाल-शान में योग्यता को और उसके होल-होल का गठन बहुत ही मनोहर थी। अनुमान में जान पटना था कि समय में हमको यह देना कर रहीं हैं। परे एक समय वह भी होंगी, जब यह बड़ी सुंदर होगी। इन स्त्री ने आ कर चौगुट घूमी और आलोचन दे कर फर्श पर बैठ गयी। राजनक्षी ने इसे मिर से पैर तक बड़े ध्यान से देखा और पूछा, "कुम्हार नाक क्या है?"

उमने उत्तर दिया, "मुझे ब्रजविद्यामिनी कहते हैं।"

"कहाँ रहती हो?"

"यहाँ से तीन दिन की राह पर एक गाँव विजयनगर है, वही मेरा घर है।"

"मस्तक कहाँ पड़ी है?"

"मेरे पिता जी मस्तक के बड़े पंडित थे, उन्होंने मोड़ी-बहुन कहा था है।"

"कुम्हार ब्याह तो हो गया है न?"

ब्याह का नाम सुनने ही ब्रजविद्यामिनी की आँखों में आँसू बहने लगे। वह आवाज सम्हाल कर बोली—हमका अभाव है फिर कभी होंगी, मेरी रामबहानी बड़ी दुःखमय है। उसे सुन कर आपको दुःख होना इसलिए इस समय धमा कोजिए।

भ्रातृ से ब्रजविद्यामिनी वहीं रहने लगी। सम्पन्न-माहिर में उमक, बहुत प्रवेश था। वह राजकुमारियों को प्रतिदिन रीचक कविता पढ़ कर सुनाती थी। उमके रंग, रूप और विद्या ने धीरे-धीरे राजकुमारियों के मन में उनके प्रति प्रेम और प्रतिष्ठा उत्पन्न कर दी। यही तक कि राजकुमारियों और ब्रजविद्यामिनी के बीच बहारी-दुहाई उठ गयी और वे सहोदरियों की भाँति रहने लगी।

## २

बड़ी महीने बीत गये। कुँवर धृन्निह और धर्मनिह दोनों महाराज के साथ अफगानिस्तान की गृहीम पर गये हुए थे। यह विजय को घड़ियाँ मेघदूत और रघुवंश के पङ्क्तियों में बटी। ब्रजविद्यामिनी को बालिशों की कविता में बहुत प्रेम था और वह उनके वाक्यों की व्याख्या उत्तमता में करती और उममें ऐसी बारीकियाँ निहालती कि दोनों राजकुमारियाँ मुग्ध हो जातीं।

एक दिन सच्चा का समय था, दोनों राजकुमारियाँ कुलवारी में सेरे करने

यहाँ तो देखा कि ब्रजविलासिनी हरी-हरी पाश पर लेटी हुई है और उसकी आँखों से आँसू बहे रहे हैं। राजकुमारियों के अच्छे बर्ताव और स्नेहपूर्ण बात-चीत से उसकी मुँदरता कुछ चमक गयी थी। इनके साथ अब वह भी राजकुमारी जान पड़ती थी; पर इन सभी बातों के रहते भी वह बेचारी बहुधा एकांत में बंठ कर रोया करती। उसके दिल पर एक ऐसी छोट थी कि वह उसे दम भर भी चैन नहीं लेने देती थी। राजकुमारियाँ उस समय उसे रोते देखा कर बड़ी महानुभूति के साथ उसके पास बैठ गयी। राजनदिनी ने उसका मिर अपनी जाँघ पर रख लिया और उसके गुंलाव-से मासों को थप-थपा कर कहा—सखी, तुम अपने बिल का हाल हमें न बताओगी? क्या अब भी हम गैर हैं? तुम्हारा मो अकेले दुःख की आग में जलना हमसे नहीं देखा जाता।

ब्रजविलासिनी आवाज सम्हाल कर बोली—बहिन, मैं अभ्यासिनी हूँ। मेरा हाल मत सुनो।

राज०—अगर सारा न मानो तो एक बात पूछूँ।

ब्रज०—क्या, कहो?

राज०—वही जो मैंने पहले दिन पूछा था, तुम्हारा ब्याह हुआ है कि नहीं?

ब्रज०—इसका जवाब मैं क्या दूँ? अभी नहीं हुआ।

राज०—क्या किसी का प्रेम-बाण हृदय में चुभा हुआ है?

ब्रज०—नहीं बहिन, ईश्वर जानता है।

राज०—तो इतनी उदास क्यों रहती हो? क्या प्रेम का आनंद उठाने को जी चाहता है?

ब्रज०—नहीं, दुःख के सिवा मन में प्रेम को स्थान ही नहीं।

राज०—हम प्रेम का स्थान पैदा कर देंगी।

ब्रजविलासिनी इसारा समझ गयी और धोली—बहिन, इन बातों की चर्चा न करो।

राज०—मैं अब तुम्हारा ब्याह रचाऊँगी। दीवान जयचंद को तुमने देखा है?

ब्रजविलासिनी आँखों में आँसू भर कर बोली—राजकुमारी, मैं प्रतवारिणी हूँ और अपने ब्रत को पूरा करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। प्रण को निभाने

के लिए मैं भीनी हूँ, नहीं तो मैंने ऐसी आकृति खींची है कि जीने की इच्छा अब नहीं रहो। मेरे बाप विजयनगर के जागीरदार थे। मेरे पिता उनके कोई संतान न थी। वे मुझे प्राणी से अधिक प्यार करने थे। मेरे ही लिए उन्होंने बरमों सम्पत्ति-साहित्य पठाया। पुत्र-विद्या में वे बड़े निपुण थे और कई बार सदाशिव पर गये थे।

एक दिन गोपुत्रि-बेला में सब गाये जंगल में लौट रही थीं। मैं अपने द्वार पर खड़ी थी। इनमें से एक जवान बाँकी पगड़ी बाँधे, हथियार गन्नाये, भूमता आता दिन्नायी दिया। मेरी प्यासी मोहिनी इस समय जंगल में लौटी थी, और उगता बच्चा हथर बन्दों के कर रहा था। संयोगवश बच्चा उस मौखवान में लपका गया। गाव उस आदमी पर झपटी। राजपूत बहा गाहमी था। उगने शास्त्र बोला कि भागता है तो बलक का टीका लगता है, तुरंत सलवार प्यान में सीक ली और वह गाव पर झपटा। गाव सलवारो हुई तो भी ही, कुछ भी न डरी मेरी आँखों के सामने उस राजपूत में उस प्यारी गाव की जान में मार डाला। देखने-देखने सेकड़ों आदमी जमा हो गये और उसको देखी-भीपी मुनाने लगे। इनमें से पिता जी भी आ गये। वे संख्या करने गये थे। उन्होंने आ कर देखा कि द्वार पर सेकड़ों आदमियों की भीड़ लगी है, गाव सज्ज रही है और उसका बच्चा लडा रो रहा है। पिता जी की माहट सुनने ही गाव कराहने लगी और उसकी ओर उसने कुछ ऐसी दृष्टि से देखा कि उन्हें क्रोध आ गया। मेरे बाद उन्हें वह गाव ही प्यारी थी। वे सलवार कर बोले—मेरी गाव किमने मारी है? मवजवान लज्जा में मिर मुकाये सामने जाया और बोला—मैंने।

पिताजी—तुम खत्रिय हो?

राजपूत—हाँ।

पिताजी—तो किमी खत्रिय में हाव मिन्नने?

राजपूत का चेहरा तपनमा आया। बोला—कोई खत्रिय सामने आ जाय। हजारों आदमी खड़े थे, पर किमी कर माहम न हुआ कि उस राजपूत का सामना करे। यह देख कर पिता जी ने सलवार सीक ली और वे उस पर दूट पड़े। उसने भी सलवार निकाल ली और दोनों आदमियों में सलवारें चलने



रणी। पिता जी बूढ़े थे; सीने पर जव्वम महारा लगा। गिर पड़े। उठा कर लोग घर पर लाये। उनका चेहरा पीछा था; पर उनकी आंखों में चिनगारियाँ निकल रही थी। मैं रोती हुई उनके सामने आयी। मुझे देखते ही उन्होंने सब आदमियों को वहाँ से हट जाने का संकेत किया। जब मैं और पिताजी अकेले रह गये, तो मैं बोले—बेटो, तुम राजपुतानी हो ?

मैं—जी हाँ।

पिता जी—राजपुत बात के पत्नी होते हैं ?

मैं—जी हाँ।

पिता जी—इस राजपुत ने मेरी गाय की जान ली है, इसका बदला तुम्हें सेना होगा।

मैं—आपकी आज्ञा का पालन करूँगी।

पिता जी—अगर मेरा बेटा जोता होता तो मैं यह योज तुम्हारी गर्दन पर न रक्ता।

मैं—आपकी जो कुछ आज्ञा होगी, मैं सिर-आँखों में पूरी करूँगी।

पिता जी—सुम प्रतिज्ञा करती हो ?

मैं—जी हाँ।

पिता जी—इस प्रतिज्ञा को पूरा कर दिखाओगी ?

मैं—जहाँ तक मेरा बल चलेगा, मैं निश्चय यह प्रतिज्ञा पूरी करूँगी ?

पिता जी—यह मेरी तलवार लो। जब तक तुम यह तलवार उस राजपुत के कलेजे में न भोंक दो, तब तक भोग-विलास न करता।

यह कहते कहते पिता जी के प्राण निकल गये। मैं उसी दिन से तलवार की कपड़ों में छिपाये उस नौजवान राजपुत की तलाश में घूमने लगी। वर्षों बीत गये। मैं कभी वस्त्रियों में जाती, कभी पहाड़ों-जंगलों की खाक छानती; पर उस नौजवान का कहीं पता न मिलता। एक दिन मैं बैठी हुई अपने फूटे भाग पर रो रही थी कि वही नौजवान आदमी आता हुआ दिखायी दिया। मुझे देख कर उसने पूछा, तू कौन है ? मैंने कहा, मैं बुनिया खाहणी हूँ, आप मुझ पर दया कीजिए और मुझे कुछ पाने की दीजिए। राजपुत ने कहा, अच्छा, मेरे साथ आ।

मैं उठ खड़ी हुई। वह आदमी बेसुध था। मैंने बिजली की तरह रुक कर:

कपड़ों में से तलवार निकाली और उसके सोने में बाँक दी। इनमें में कई आरमी जाने दिखाई पड़े। मैं तलवार छोड़ कर भागी। तीन वर्ष तक गहाड़ों और जंगलों में छिरी रही। बार-बार जो मैं थापा कि कहीं डूब मरूँ, पर जान बड़ी प्यारी होती है। न जाने क्या क्या मुसीबतें और बटिगादियाँ भोगनी हैं, जिनको भोगने को अभी तक ओतो हूँ। अतः मैं जब जंगल में रहते-रहते जो उकता गया, तो जोधपुर चली आयी। यहाँ आपकी दयालुता की चर्चा सुनी। आपकी सेवा में आ पहुँचो और तब से आपकी कृपा से मैं आराम में जीवन बिता रही हूँ। यही मेरी रामकहानी है।

राजनयिनी ने लम्बी साँस ले कर कहा—दुनिया में कैंसे-कैंसे लोग भरे हुए हैं। खैर, तुम्हारी तलवार ने उमका काम तो तयाम कर दिया ?

सजविलासिनी—कहाँ बहिन ! वह बच गया, अक्षय ओछा पड़ा था। उसी राकल के एक तीसवान राजपूत को मैंने जंगल में गिकार छेले देखा था। नहीं मालूम, वह था या और कोई, राकल बिलकुल मिलती थी।

३

कई महीने बीत गये। राजकुमारियों ने जब से सजविलासिनी की रामकहानी सुनी है, उसके साथ वे और भी प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करने लगी हैं। पहले बिना मंकोच कभी-कभी छिन्नाड हो जाती थी, पर अब दोनों हरदम उसका दिल बहलाया करती हैं। एक दिन बादल घिरे हुए थे, राजनयिनी ने कहा—आज बिहारीलाल की 'मनमई' सुनने की भी चाहता है। बर्षाऋतु पर उसमें बहुत अच्छे दोहे हैं।

दुर्गाकुँवरि—यही अनमोल पुस्तक है। मन्वी, तुम्हारी बगल में जो अंलमारी रखी है, उसी में वह पुस्तक है; जरा निकालना। सजविलासिनी ने पुस्तक सतारी और उसका पहला पृष्ठ खोला था कि उसके हाथ में पुस्तक छूट कर गिर पड़ी। उसके पहले पृष्ठ पर एक तस्वीर लगी हुई थी। वह उसी निर्दय युवक की तस्वीर थी जो उसके बाप का हत्यारा था। सजविलासिनी की आँखें लाल हो गयीं। तपोरी पर बल पड़ गये। अपनी प्रसिद्धा याद आ गयी, पर उसके साथ ही वह बिचार उत्पन्न हुआ कि इस आदमी का चिप यहाँ कैसे आया और इसका इन राजकुमारियों से क्या सम्बन्ध है ? कहीं ऐसा न हो कि मुझे

इतना कृतज्ञ हो कर अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़े । राजनंदिनी ने उसकी सूरत देख कर कहा—सखी क्या बात है ? यह क्रोध क्यों ? राजविलासिनी ने माँझों में कहा—कुछ नहीं न जाने क्यों चक्कर आ गया था ।  
आज मे राजविलासिनी के मन में एक खौर निता उत्पन्न हुई—क्या मुझे राजकुमारियों का कृतज्ञ हो कर अपना प्रण तोड़ना पड़ेगा ?

पूरे सोलह महीने के बाद अफगानिस्तान से पृथ्वीमिह और धर्ममिह लौटे । बादशाह की सेना की बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । बर्फ अधिकता में पड़ने लगी । पहाड़ों के दर्रे बर्फ से ढक गये । माने जाने के रास्ते बंद हो गये । रसद के सामान कम मिलने लगे । बिपाही भूखी मरने लगे । अब अफगानों में समय पा कर रात को छाने मारने शुरू किये । आविर शाहजादे मुहीउद्दीन को हिम्मत हार कर छोटना पड़ा ।

दोनों राजकुमार ज्यों-ज्यों जोधपुर के निकट पहुँचते थे, उत्कंठा से उनके मन उमड़ते जाते थे । इतने दिनों के वियोग के बाद फिर भेंट होगी । मिलने की तृप्ति बढ़ती जाती है । रात-दिन भजनों काटते चले आते हैं, न थकावट मालूम होती है, न भौंहों । दोनों पायल हो रहे हैं, पर फिर भी मिलने की खुशी में जलमो की तकलीफ भूलें हुए हैं । पृथ्वीमिह दुर्गादेवरी के लिए एक अफगानी कटार लाये हैं । धर्ममिह ने राजनंदिनी के लिए काश्मीर का एक बहुमूल्य शाल-जोड़ा मोल लिया है । दोनों के दिल उमंग में भरे हुए हैं ।

राजकुमारियों ने जब सुना कि दोनों वीर वापस आने हैं, तो वे पूरी अंगी न समायी । शृंगार किया जाने लगा, शर्मा मोतिपों से भरे जाने लगीं, उनके चेहरे लुखी से बमकने लगे । इतने दिनों के विछोह के बाद फिर मिलान होगा, खुशी भाँखों में उबलने पड़ती है । एक दूसरे को छेड़ती हैं और लुग हो कर गले मिलती हैं ।

अपहन का महीना था, बरगद की ढालियों में मूँगे के दाने लगे हुए थे । जोधपुर के किले में सत्तामियों की घनवरज आवाजें आने लगीं । गारे नगर में धूम मच गयी कि कुँवर पृथ्वीमिह सकुशल अफगानिस्तान से लौट आने । दोनों राजकुमारियाँ घासी में आरली के मापान भिये दरखाने पर मड़ी थीं । पृथ्वीमिह दरबारियों के मुखरे भेजे हुए महल में आये । दुर्गादेवरी ने भारती

उतारी और दोनों एक दूसरे को देख कर खुश हो गये । धर्मसिंह भी प्रसन्नता से हँसते हुए अपने महल में पहुँचे, पर भीतर पैर रखने भी न पाये थे कि ठीक हुई और बायीं थाँल फड़कने लगी । राजनदिनी आरती का ध्यान ले कर लपकी, पर उसका पैर किसल गया और थाँल हाथ से छूट कर गिर पड़ा । धर्मसिंह का माथा ठनका और राजनदिनी का चेहरा पीला हो गया । महल मगुन क्यों ?

ब्रजविलासिनी ने दोनों राजकुमारों के आने का समाचार सुन कर उन दोनों को देने के लिए दो अभिनदन पत्र बना रखे थे । मक्रेरे जब कुँवर पृथ्वीसिंह संध्या आदि निद्रा-त्रिप्ता से निपट कर बैठे, तो वह उनके सामने आयी और उसने एक सुंदर कुश की चोंचेली में अभिनदन-पत्र रख दिया । पृथ्वीसिंह ने उसे प्रसन्नता से ले लिया । बकिना यद्यपि उठनी बजिया न थी, पर वह नयी और बीरता में मरो हुई थी । वे बीररस के प्रेमी थे, उसका पद कर बहुत खुश हुए और उन्होंने मोक्षियों का हार उपहार दिया ।

ब्रजविलासिनी मही से छुट्टी पा कर कुँवर धर्मसिंह के पास पहुँची । वे बैठे हुए राजनदिनी को लड़ाई की घटनाएँ सुना रहे थे; पर ज्यों ही ब्रजविलासिनी की भाँति उन पर पड़ी, वह सन्न हो कर पीछे हट गयी । उसको देख कर धर्मसिंह के चेहरे का भी रंग उड़ गया, होठ गूँघ गये और हाथ-पैर सन्नताने लगे । ब्रजविलासिनी तो उससे पाँच लौटी, पर धर्मसिंह में चारपाई पर लेट कर दोनों हाथों से मुँह ढँक लिया । राजनदिनी ने यह दृश्य देखा और उनका फूल-भा बदन पसीने में तर हो गया । धर्मसिंह सारे दिन पलंग पर चुपचाप पड़े करवटें बदलते रहे । उनका चेहरा ऐसा कुम्हला गया जैसे वे बरसों के रोगी हों । राजनदिनी उनका सेवा में लगी हुई थी । दिन तो यों कटा, रात को कुँवर साहब संध्या ही से बकावट का बहाना करके लेट गये । राजनदिनी हिरान् थी कि मादरा क्या है । ब्रजविलासिनी इन्हीं के खून की प्यानी है ? क्या यह सम्भव है कि मेरा प्यारा, मेरा सुपुत्र धर्मसिंह ऐसा कठोर हो ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । वह यद्यपि चाहती है कि अपने भादों से उनके मन का बीज हलका करे, पर नहीं कर सकती । अंत को नौद ने उसको अपनी गोद में ले लिया ।

४

रात बहुत बीत गयी है। आकाश में अँवैरा छा गया है। मारम की दुःख में भरी चीन्ही कभी-कभी सुनायी दे जाती है और रह-रह कर किन्ने के संतरियों की आवाज कान में आ पड़ती है। राजनदिनी की आँखें एका-एक खुली, तो उसने धर्मसिंह को पलंग पर न पाया। चिंता हुई, वह छट उठ कर ब्रजविलासिनी के कमरे की ओर चली और दरवाजे पर खड़ी हो कर भीतर की ओर देखने लगी। संदेह पुरा हो गया। क्या देखती है कि ब्रजविलासिनी हाथ में तेंगा लिये खड़ी है और धर्मसिंह दोनों हाथ जोड़े उसके सामने दोनों की तरफ घुटने टेके बैठे हैं। वह दृश्य देखते ही राजनदिनी का खून सूख गया और उसके मिर में चक्कर आने लगा, पैर लटखड़ाने लगे। जान पड़ता था कि गिरी जाती है। वह अपने कमरे में आयी और मुँह ठेक कर लेट रही, पर उसको आँखों से एक बूँद भी न निकली।

दूसरे दिन पृथ्वीसिंह बहुत मजेरे ही कुँवर धर्मसिंह के पास गये और मुस्तार कर बोले—भैया, मोसिम बड़ा सुहावना है, शिकार खेलने चलते हो ?

धर्मसिंह—हाँ, चलो।

दोनों राजकुमारों ने छोटे कमजारे और जंगल की ओर चल दिये। पृथ्वीसिंह का चेहरा खिन्ना हुआ था, जैसे कमल का फूल। एक एक भग से तेजी और झुंसी टपकी पड़ती थी; पर कुँवर धर्मसिंह का चेहरा मँला हो गया था, मानो बदन में जान ही गयी है। पृथ्वीसिंह ने उन्हें कई बार छोड़ा; पर जब देखा कि वे बहुत दुरी हैं तो चुन हो गये। चलते-चलते दोनों आदमी झील के किनारे पर पहुँचे। एकाएक धर्मसिंह टिठके और बोले—मैंने आज रात को एक दृढ़ प्रतिज्ञा की है। यह कहते कहते उनकी आँखों में पानी आ गया। पृथ्वीसिंह न पचड़ा कर पूछा—कौसी प्रतिज्ञा ?

‘तुमने ब्रजविलासिनी का हाल सुना है ? मैंने प्रतिज्ञा की है कि जिस आदमी ने उसके साथ को मारा है, उसे भी जहन्नुम में पहुँचा दूँ।’

‘तुमने सचमुच वीर-प्रतिज्ञा की है।’

‘हाँ, यदि मैं पूरे कर सकूँ। तुम्हारे विचार में ऐसा आदमी मारने योग्य है या नहीं ?’

‘ऐसे निर्दयी की बर्देन गूठन छुरी में काटनी चाहिए ।’

‘बेताक, यही मेरा भी विचार है । यदि मैं किसी कारण, यह काम न कर सकूँ, तो तुम मेरी प्रतिज्ञा पूरी कर दोगे ?’

‘बड़ी खुशी से । उसे पहचानते ही न ?’

‘हाँ, अच्छी तरह ।’

‘तो अच्छा होगा, यह काम मुझको ही करने दो, तुम्हें शायद उस पर दया आ जाय ।’

‘बहुत अच्छा, पर यह याद रखो कि वह आदमी बड़ा भावशाली है ! कई बार मौन क मुँह से बब कर निकला है ! क्या आश्चर्य है कि तुमको भी उस पर दया आ जाय । इसलिए तुम प्रतिज्ञा करो कि, उसे जहर जहन्नुम पहुँचाओगे ।’

‘मैं दुर्गा की शपथ खा कर बहता हूँ कि उस आदमी को अवश्य मारूँगा ।’

‘बस, तो हम दोनों मिल कर भायं मित्र कर लगे । तुम अपनी प्रतिज्ञा पर धृष्ट रहोगे न ?’

‘क्यों ? क्या मैं सिपाही नहीं हूँ ? एक बार जो प्रतिज्ञा की, समझ लो कि वह पूरी करूँगा, चाहे इसमें अपनी जान ही क्यों न खली जाय ।’

‘मब अवस्थाओ में ?’

‘हाँ, मब अवस्थाओ में ।’

‘यदि वह तुम्हारा कोई बंधु हो तो ?’

पृथ्वीमिह ने धर्ममिह का विचारपूर्वक देख कर कहा—‘कोई बंधु हो तो ?’

धर्ममिह—‘हाँ, सम्भव है कि तुम्हारा कोई गानेश्वर हो ।’

पृथ्वीमिह—( जोश में ) ‘कोई हो, यदि मेरा भाई भी हो, तो भी जीता चुनवा दूँ ।’

धर्ममिह धोड़े में उतर पड़े । उनका चेहरा उनका हुआ था और ओठ कांप रहे थे । उन्होंने कमर से तैगा मोल कर जमीन पर रख दिया और पृथ्वीमिह को ललवार कर कहा—‘पृथ्वीमिह, तैयार हो जाओ । वह दुष्ट मिल गया । पृथ्वीमिह ने चौंक कर इधर उधर देखा तो धर्ममिह के सिवाय और कोई दिनायी न दिया ।’

धर्मसिंह—तेगा खीचो ।

पृथ्वीसिंह—मैंने उसे नहीं देखा ।

धर्मसिंह—यह तुम्हारे सामने खड़ा है । वह दुष्ट कुकर्मों धर्मसिंह ही है ।

पृथ्वीसिंह—( घबरा कर ) ऐ तुम !—मैं—

धर्मसिंह—राजपूत, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो ।

इतना सुनते ही पृथ्वीसिंह ने बिजली की तरह कमर से तेगा खींच लिया और उसे धर्मसिंह के भीमों में चुभा दिया । मूठ तक तेगा चुभ गया । खून का फव्वारा वह निकला । धर्मसिंह जमीन पर गिर कर धीरे से बोले—पृथ्वीसिंह, मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ । तुम सच्चे वीर हो । तुमने पुरुष का कर्तव्य पुरुष की भाँति प्रकट किया ।

पृथ्वीसिंह यह सुन कर जमीन पर बैठ गये और रोने लगे ।

अब राजनक्षिणी सती होने जा रही है । उसने सौंरहों शृंगार किये हैं और माँग-मोतियों से भरवायी है । कलाई पे मोहरा का कंगन है, पैरों में महलार लगायी है और लाल चुनरो ओढ़े हैं । उसके अंग से सुगंध उड़ रही है, क्योंकि वह आज सती होने जाती है ।

राजनक्षिणी का येहरा सूर्य की भाँति प्रकाशमान है । उसकी ओर देखने से आँखों में जकाबोप लग जाती है । प्रेम-मद में उसका रोया-रोया मस्त हो गया है, उसकी आँखों से अलौकिक प्रकाश निकल रहा है । वह आज स्वर्ग की देवी जान पड़ती है । उसकी चाल बड़ी मदभाती है । वह अपने प्यारे पति का गिर अपनी गोद में लेती है और उस पिता में बैठ जाती है जो बंदन, सत आदि से बनायी गयी है ।

मारि नगर के लोग यह दृश्य देखने के लिए समूहों में चलते जाते हैं । बाने यत्र रहे हैं, फूलों की मृष्टि हो रही है । सती चित्र पर बैठ चुकी थी कि इतने में पुँवर पृथ्वीसिंह आये और हाथ जोड़ कर बोले—महाराजी, मेरा अपराध क्षमा करो ।

सती ने उत्तर दिया—क्षमा नहीं हो सकती । तुमने एक मौखिक राजपूत की जान ली है, तुम भी जवानी में मारे जाओगे ।

सती के वचन कभी झूठे हुए हैं ? एकाएक चिता में आग लप गयी। जपजयकार के शब्द गूँजने लगे। सती का मुख आग में यों चमकता था, जैसे सवेरे की ललाई में सूर्य चमकता है। थोड़ी देर में वही रात के ढेर के निचा और कुछ न रहा।

इस सती के मन में कैसा रात था ! परसों जब उसने वज्रविलासिनी की शिजक कर धर्ममिह के सामने जाते देखा था, उसी समय मे उसके दिल में मंदेह हो गया था। पर जब रात को उसने देखा कि मेरा पति इसी स्त्री के मामने दुखिया की तरह बैठा हुआ है, तब वह मंदेह निश्चय की सीमा तक पहुँच गया और वही निश्चय अपने माथ सत लेता व्याप था। तबरे जब धर्ममिह उठे तब राजनदिनी ने कहा था कि मैं वज्रविलासिनी के शत्रु का सिर चाहती हूँ, तुम्हें लाना होगा। और ऐसा ही हुआ। अपने सती होने के सब कारण राजनदिनी ने जान-बूझ कर पैदा किये थे, क्योंकि उसके मन में रात था पाप की आग कंधी तेज होती है ? एक पाप में कितनी जानें लो ? राजपरा के दो राजकुमार और दो कुमारियाँ बेखने-बेखले इन अग्निकुंड में स्वाहा हो गयीं। सती का वचन सच हुआ। सात ही सप्ताह के भीतर पृथ्वीमिह दिल्ली में कलक किये गये और दुर्गादुमारी सती हो गयी।



## आभूषण

आभूषणों को निशान करना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम असहयोग का उत्पीड़न सह सकते हैं। पर लड़नाओं के निर्दय, घातक मास्टरप्लानों को नहीं जोड़ सकते। तो भी इतना अवश्य कहेंगे इस वृष्णा की पूर्ति के लिए जितना त्याग किया जाता है, उसका समुपयोग करने से महान् पराजय हो सकता है।

यद्यपि हमने किसी रूप-हीना महिला को आभूषणों की सजावट से कल्पना होती नहीं देखा, यद्यपि हम यह भी मान लेते हैं कि रूप के लिए आभूषणों को उतनी ही जरूरत है, जितनी घर के लिए दीपक की। किन्तु शारीरिक शोभा के लिए हम मन को कितना मर्जीन, चित्त को कितना अज्ञात और भावना को कितना कलुषित बना लेते हैं? इसका हमें कदाचित् ज्ञान ही नहीं होता। इस दीपक की ज्योति में आँखें धुँपनी हो जाती हैं। यह धमक-धमक कितनी ईर्ष्या, कितने द्वेष, कितनी प्रतिस्पर्धा, कितनी दुर्निश्चया और कितनी दुराशा का कारण है; इसकी केवल कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन्हें भूषण नहीं, दूषण कहना अधिक उपयुक्त है। नहीं तो यह कब हो सकता था कि कोई नववधू पति के घर आने के तीसरे दिन, अपने पति से कहती कि "मेरे पिता ने तुम्हारे पन्ने घोष कर मुझे तो कुँए में डकेल दिया।" सीतला आन अपने गांव के ताल्लुकदार कुँवर सुरेशसिंह की मङ्गलवाहिता बच्ची को देगने गयी थी। उसके सामने ही वह मन्मथ-भी हो गयी। बट्ट के रूप सावजन पर नहीं, उसके आभूषणों की जगमगाहट पर उसकी टकटकी लगी रही और यह जब से लौट कर घर आयी, उसकी छाती पर साँप छोटता रहा। अंत को ज्यों ही उसका पति घर आया, वह उस पर बरग पड़ी और दिल में भरा हुआ धुत्वार पूर्वोक्त शब्दों में निकल पड़ा। सीतला के पति का नाम विप्लवसिंह था। उनके पुराने किसी जमाने में इससे-दोर थे। इस रात पर जो उन्होंने का मोनहों जाने अधिवार था। लेकिन अब इस घर की दशा होन हो गयी है। सुरेशसिंह

के पिता जमींदारी के काम में दक्ष थे। विमलनिहू का सब इलाका किसी न किसी प्रकार में उनके हाथ आ गया। विमल के पास मयारी का दृष्टि भी न था, उसे दिन में दो बार भोजन भी मुश्किल में मिलता था। उधर सुरेश के पास हाथी, मोटर और कई घोड़े थे, दम-पांच बाहर के आदमी नित्य द्वार पर पड़े रहते थे। पर इतनी विषमता होने पर भी शेषों में भाईचारा निभाया जाता था। तारी-ब्याह में, मूँडन-छेदन में परस्पर आना-जाना होता रहता था। सुरेश विद्या-प्रेमी थे। हिंदुस्तान में ऊँची शिक्षा समाप्त करके वह यूरोप चले गये और मग लोगों की तक़ाओं के विरोध, वहाँ से आर्ज-मर्यादा के परम भक्त बन कर लौटे। वहाँ के जजबाद, इतिहास भोगलिप्या और अमानुषिक सजायता ने उनकी आँखें खोल दी थीं। पहले वह सरपंचों के बहुत शोर देने पर भी विवाह करने को राजी नहीं हुए थे। उसकी से पूर्व-परिचय हुए बिना प्रणय नहीं कर सकते थे। पर यूरोप से लौटने पर उनके वैवाहिक विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उन्होंने उसी पहले की कन्या से, बिना उसके आचार-विचार जाने हुए, विवाह कर लिया। अब वह विवाह को प्रेम का बंधन नहीं, धर्म का बंधन समझते थे। उसी औमाग्यकनी तपू को देखने के लिए आज शीतला, अपनी साम के साथ, सुरेश के घर गयी थी। उसी के आग्रहों की छटा देख कर वह मर्यादित-ही हो गयी है। विमल ने ध्वनित हो कर कहा—जो माता-पिता से कहा होता, सुरेश से श्राव्य कर ले। वह तुम्हें गहनों में आद सक्ते थे।

शीतला—तुम माता क्या देते हो ?

विमल—माता नहीं देता, बान बहना है। तुम जैसी सुरेश को उन्होंने साहक मेरे साथ ब्याहा।

शीतला—उजाने तो हो रही, उल्टे और ताने देते हो।

विमल—भाग्य मेरे वध में बड़ी है। इतना पता भी नहीं है कि कोई बड़ी नीकरी करके रुपये कमाऊँ।

शीतला—यह क्यों बड़ी कहते कि प्रेम ही नहीं है। प्रेम हो, तो कंचन बरपाने लगे।

विमल—तुम्हें गहनों में बहुत प्रेम है ?

शीतला—मर्जी को होता है। मुझे भी है।

३. विमल—आने को अभागिनी समझती हो ?

शीतला—हैं ही, समझना कैसा ? नहीं तो क्या दूसरे को देख कर तरसना पड़ता ?

४. विमल—बहने बनवा दूँ तो अपने को भाग्यवती गणजाने लगोगी ?

५. शीतला—( चिड़ कर ) तुम तो इस तरह पूछ रहे हो, जैसे सुनार दरवाजे पर बैठा है !

६. विमल—नही, मन्त्र कहता हूँ, बनवा दूँगा । हाँ, कुछ दिन सभर करना पड़ेगा ।

२

समय पुरुषों को बान लग जाती है, सों प्राण ले लेते हैं । सामर्थ्यहीन पुरुष अपनी ही जान पर खेल जाता है । विमलसिंह ने घर से निकल जाने को दाजी । निश्चय किया, या तो इसे गहनों में ही लपेट दूँगा या वैद्यक-शोक में । या तो आभूषण ही पहनेगी या सिद्धर को भी तरसेगी ।

दिन भर वह चिन्ता में डूबा पड़ा रहा । शीतला को उसने प्रेम से मंजुष्ट करना चाहा था । आज अनुभव हुआ कि नारी का हृदय प्रेमपात्र तो नहीं बँधता, कंचन के पास ही स बँध सकता है । पहर रात जाते-जाते वह घर से चला हुआ । पीछे फिर कर भी न देखा । ज्ञान से जागे हुए विराग में चाहे मोह का संस्कार हो, पर निराश्रय ने जाना हुआ विराग अवल होता है । प्रयास में झर-झर की वस्तुओं को देख कर मन विचलित हो सकता है । पर अंधकार में कियका साहम है, जो लीक से जी भर भी हट सके ।

विमल के पाग विद्या न थी, कला-कौशल भी न था । उसे बैचन भगने कठिन परिश्रम और कठिन आत्म-स्वाय ही का आधार था । वह पहले कलबत्ते गया । वही कुछ दिन तक एक मेठ की अवधानी करता रहा । वहाँ जो मुन पाया कि रंगून में मजदूरी अच्छी मिलती है, तो रंगून जा पहुँचा और बंदर पर माल चटाने-उतारने का काम करने लगा ।

कुछ तो कठिन थम, कुछ माने-पीने का अपभ्रंश और कुछ जलवायु की बदली के कारण वह बीमार हो गया । धीरे-धीरे दुर्बल हो गया, मुँह की कानि पानी रही, फिर भी उसने ज्वाला में अपनी मजदूर बंदर पर दूँगा न था । और

बताना। मुझे ऐसा विद्वान्मन माननेवाला मन ममज्ञो। अब जी चाहे, पैसे लो।

मजदूरो में यों वाद-विवाद होना ही रहा, विमल आ कर अपनी कौठरी में बैठ गया। वह मोचने लगा—अब क्या करूँ? अब सुरेश-जैसे सज्जन को मोहन बदल गयो, तो अब किसका भरोसा करूँ! नहीं, अब बिना घर गये काम नहीं चलेगा। कुछ दिन और न गया, तो फिर कहीं का न हूँगा। दो साल और रह जाता, तो पान में पूरे ५,००० रु० हो जाते। सीतला को इच्छा कुछ पूरी हो जाती। अभी तो सब मित्रावर ३,००० रु० ही होंगे। इतने में उसकी अभिलाषा न पूरी होगी। खैर, अभी चम्पू, छह महीने में फिर लौट आऊँगा। अपनी आयदाश तो बच आयगी। नहीं छह महीने रहने का क्या काम है? जाने जाने में एक महीना लग जायगा। घर में १५ दिन से ज्यादा न रहूँगा। वहाँ कौन पूछता है, भाऊँ या बहूँ, मरुँ या जिऊँ, वहाँ तो गहनो से प्रेम है।

इस तरह मन में निश्चय करके वह दूसरे दिन रंगून से चल पड़ा।

३

मंसार कहता है कि गुण के मामले रूप की कोई हस्ती नहीं। हमारे नीति-शास्त्र के आचार्यों का भी यही कथन है; पर वास्तव में यह कितना भ्रममूलक है! कुँवर सुरेशसिंह की मन्त्र-वचू भगलकुमारी गृह-कार्य में निपुण, पति के इशारे पर प्राण देनेवाली, अत्यंत विचारशीला, मधुर-भाषिणी और धर्म भीरु स्त्री थी; पर मीट-विहीन होने के कारण पति की आँखों में काँटे के समान छटकती थी। सुरेशसिंह बात-बात पर उस पर मुँसलाते, पर भड़ी भर में पदचाप्ताप के बगीमूठ हो कर उसमें क्षमा माँगने, किन्तु दूसरे ही दिन फिर वही क्रुत्सित व्यापार शुरू हो जाता। विपत्ति यह थी कि उनके आचरण अन्य रईसों की भाँति भ्रष्ट न थे। वह दम्पति जीवन हो में आनन्द, सुख, शांति, विद्वान्मन, प्रायः सभी ऐहिक और पारमार्थिक उद्देश्य पूरा करना चाहते थे। और दाम्पत्य सुगम से बँधित हो कर उन्हें अपना ममस्त जीवन नार्म, स्वाद-हीन और कुटिल जान पड़ता था। फल यह हुआ कि मंगला को अपने ऊपर विद्वान्मन न रहा। वह अपने मन से कोई काम करके हुए हरनी कि स्वामी नाराज होगी। स्वामी को खुश रखने के लिए अपनी नुल्लों को छिपाने, बहाने करती, झूठ बोलती। नौकरी को अपराध समझ कर आभार-पूजा करना चाहती। पति को प्रसन्न रखने

के लिए उसने अपने गुणों की, अपनी आत्मा की अवहेलना की; पर उठने के बदले वह पति की नजरों से गिरती ही गयी। वह नित्य नये शृंगार करती, पर लक्ष्य से दूर होती जाती थी। पति की एक मधुर मुस्कान के लिए, उनके अघरों के एक मीठे शब्द के लिए उसका प्यामा हृदय छड़प-छड़प कर रह जाता था। सावण्य-विहीन स्त्री वह भिसुक नहीं है, जो चंचुल सर आटे से संतुष्ट हो जाए। वह भी पति का सम्पूर्ण, अखंड प्रेम चाहती है, और कदाचित् सुंदरियों से अधिक, क्योंकि वह इसके लिए असाधारण प्रयत्न और अनुष्ठान करती है। मंगला इस प्रयत्न में निष्कल हो कर और भी सतृप्त होती थी।

धीरे-धीरे पति से उसको अद्वैत उठने लगी। उसने तर्क किया कि ऐसे क्रूर, हृदय धूम्य, कल्पना-हीन मनुष्य से मैं भी उसी का-सा व्यवहार करूँगी। जो पुण्य केवल हृद का भक्त है, वह प्रेम-भक्ति के योग्य नहीं। इस प्रत्याघात ने समस्या और भी जटिल कर दी।

मगर मंगला को केवल अपनी रूप-हीनता ही का रोना न था। शीतला का अनुपम रूपकालित्य भी उसकी कामनाओं का वाधक था, बल्कि यही उसकी आशा-लताओं पर पड़नेवाला तुपार था। मंगला सुंदरी न सही, पर पति पर जान देती थी। जो अपने को पाहे, उससे हम विमुख नहीं हो सकते। प्रेम की शक्ति अपार है, पर शीतला की मूर्ति सुरेश के हृदय-शर पर बड़ी हुई मंगला को अंदर न जाने देती थी, चाहे वह कितना ही नेप बदल कर आवे। पुरेश इस मूर्ति को हटाने की चेष्टा करते थे, उसे बलात् निकाल देना चाहते थे, किंतु सौंदर्य का आपिपत्य धन के आपिपत्य से कम दुर्निवार नहीं होता। जिस दिन शीतला इस पर मे मंगला का मुल देखने आयी थी उसी दिन सुरेश की आँखों ने उसकी मनोहर छवि की एक झलक देख ली थी। वह एक झलक मानो एक शक्ति-क्रिया थी, जिसने एक ही घावे में समस्त हृदय-खान को जोत लिया, उस पर अपना आपिपत्य जमा लिया।

सुरेश एकांत में बैठे हुए शीतला के चित्र को भगला से मिलाते यह निश्चय करने के लिए कि उनमें क्या अंतर है? एक क्यों मन को खींचती है, दूसरी क्यों उसे हटाती है? पर उसके मन का यह खिंचावे केवल एक चित्रधार या कवि का रसास्वादन-मात्र था। वह पवित्र और वागनाओं से रक्षित था। वह

मृत्ति केवल-उमके, ममोरजन की मामग्री-मान थी । वह अपने मन को बहूँ गममाने, ममम्य करते कि अब मगला को प्रममन रखूँगा । यदि वह मुंदरों नदी है, तो उसका क्या दोष ? पर उनका यह सब प्रयास मंगला के ममम्य जाने ही विरुद्ध हो- जाता था । वह बड़ी मृदम दृष्टि में मगला के मन के बदलने हुए भावों को देखते थे; पर एक पन्नापान-पीडित मनुष्य की भांति यों के 'पेने' को मुदकते देख कर भी रोकने का कोई उपाय न कर मकते थे । परिणाम क्या होगा, यह सोचने का उन्हें माहम ही न होता था । पर जब मंगला ने धन को बाल-मान में उसकी तीव्र आलोचना करना शुरू कर दिया, वह उनमें उच्छृंखलता का ब्यवहार करने लगी, तो उसके प्रति उनका वह उतना गोहार भी विलुप्त हो गया । घर में आना-जाना छोड़ दिया ।

एक दिन मध्या के समय बड़ी गरमी थी । पंखा चलने में आग और भी दहकती थी । कोई मर करने बगोबो में भी न जाता था । पंगों की भांति शरीर में सारी रक्तुति यह गयी थी, जो जहाँ था, वही मुर्दा-मा पड़ा था । आंग से सके हुए मृदम की भांति लोगों के स्वर बर्कड हो गये थे । माधारण बातचीत में भी लोग उत्तेजित हो जाने थे, जैसे माधारण गंधर्ष से वन के वृक्ष जल उठते हैं । भुरेगमिह बभी बार कदम दहलते थे, फिर हाँक कर बैठ जाते थे । मौकलों पर झूमला रहे थे कि जल्द-जल्द छिडकाव क्यों नहीं करते । महसा उन्हें अंदर से गाने की आवाज सुनायी दी । शीके, फिर कोष आया । मधुर गान बतों को अप्रिय जान पड़ा । यह क्या बेवक्त की सटनाई है ! मही गरमी के मारे 'दम निकल रहा है और इन मक्कों गाने की मूखी है ! मगला ने बुलाया होगा, और क्या ! लोग नाहक कहने हैं कि स्त्रियों का जीवन का आधार प्रेम है । उनके जीवन का आधार वही भोजन-निद्रा, राग-रग, आमोद-प्रमोद है, जो समस्त प्राणियों का है । घटे मर तो गुन चुका । यह गीत बभी बद भी होगा या नहीं । राव ध्यय में गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रही है ।

अंत को न रहे गया । जनानमाने में आ कर बोले—यह तुम लोगों ने क्या काँव-काँव मचा रखा है ? यह गाने-बजाने का कौन-सा समय है ? बाहर बैठना मरकल हो गया !

मन्नाटा छा गया। जैसे शोर-गुल मचानेवाले बालकों में मास्टर पहुँच जाय। सभी ने सिर झुका लिये और गिबट बची।

मंगला तुरंत उठ कर सामनेवाले कमरे में चली गयी। पति को बुलाया और आहिस्ते में बोली—बसो इतना बिगड़ रहे हो ?

“मैं इस वक्त यान्ना नहीं सुनना चाहता।”

“तुम्हें सुनाता ही कौन है ? क्या मेरे कानों पर भी तुम्हारा अधिकार है ?”

“फजूल की बमबल—”

“तुमसे मतलब ?”

“मैं अपने घर में यह कोलाहल न मचाने दूँगा ?”

“तो मेरा घर कही और है ?”

मुरेशमिह इसका उत्तर न दे कर बोले—इन सबसे कह दो, सिर किसी वक्त आवे।

मंगला—इसलिए कि तुम्हें इनका आना अच्छा नहीं लगता ?

“हाँ इसीलिए।”

“तुम क्या रास्ता बही करते हो, जो मुझे अच्छा लगे ? तुम्हारे यहाँ निज आते हैं, हँसी-ठट्टे की आवाज अंदर सुनायी देती है। मैं कभी नहीं कहती कि इन लोगो का आना बंद कर दो। तुम मेरे कामों में दस्तबाजी क्यों करते हो ?”

मुरेश ने तेज हो कर कहा—इसलिए कि मैं घर का स्वामी हूँ।

मंगला—तुम बाहर के स्वामी हो, यहाँ मेरा अधिकार है।

मुरेश—क्यों व्यर्थ को बक-बक करती हो ? मुझे विश्वास से क्या मिलेगा ?

मंगला जरा देर धुपचाप पड़ी रही। वह पति के मनोपल भावों की भीमामा कर रही थी। फिर बोली—अच्छी बात है। जब इस घर में मेरा कोई अधिकार नहीं, तो न रहेंगी। अब तक धम में थी। आज तुमने वह धम मिटा दिया। मेरा इस घर पर अधिकार कमो नहीं जा। जिन स्त्री का पति के हृदय पर अधिकार नहीं, उसका उसकी सम्पत्ति पर भी कोई अधिकार नहीं हो सकता।

मुरेश ने लज्जित होकर कहा—बात का बलबड क्यों बनानी हो ! मेरा यह मतलब न था। कुछ था कुछ भगवान मयी।

मंगला—मन की बात आदमी के मुँह से बनावयास हो निकल जाती है। साँझान हो कर हम अपने भावों को छिपा लेते हैं।

सुरेस को अपनी असज्जनता पर दुःख तो हुआ, पर इम भये थे कि मैं इसे जितना ही मनाऊँगा, उतना ही यह और जली-कटी मुनायेगी, उंग बड़ी छोड़ कर बाहर चले आये।

प्रातः काठ ठंडी हवा चल रही थी। सुरेस सुमारी में पड़े हुए स्वप्न देख रही थे कि मंगला सामने से चली जा रही है। थोके पड़े। देखा, द्वार पर गवमुख मंगला खड़ी है। घर की नौकरानियाँ आँगन में आँसे पोंछ रही हैं। कई नौकर आम-यास खड़े हैं। सभी की आँखें सजल और मुन् उदाग हैं। मानो बहू बिदा हो रही है।

सुरेस समझ गये कि मंगला को कल की रात मग गयी। पर उन्होंने उठ कर कुछ पूछने की, मनाने की या समझाने की चेष्टा नहीं की। यह मेरा अमान कर रही है, मेरा मिर नीचा कर रही है। जहाँ चाहे, जाय। मुझसे कोई मतलब नहीं। यो बिना कुछ पूछे-गछे चले जाने का अर्थ यह है कि मैं इसका कोई नहीं। फिर मैं इसे रोकनेवाला क्यों !

वह यो ही जखन् पड़े रहे और मंगला चली गयी। उनकी तरफ मुँह उठा कर भी न सका।

४

मंगला पाँच-पंदल चली जा रही थी। एक बड़े ताल्लुकदार की औरत के लिए यह मामूली बात न थी। हर किसी को हिम्मत न पड़ती थी कि उसने कुछ कहे। पुरुष उसकी राह छोड़ कर किनारे खड़े हो जाते थे। नारियाँ द्वार पर खड़ी करण-कौतूहल से देखती थी और आँखों से बहती थी—हा निर्दयी पुरुष ! इतना भी न हो सका कि एक डोला पर तो बैठा देना !

इस गाँव से निकल कर उस गाँव में पहुँची, जहाँ सोनला रहती थी। सोनला सुनते ही द्वार पर आ कर खड़ी हो गयी और मंगला से बोली—बहन, जरा आ कर दम ले लो।

मंगला ने अंदर जा कर देखा तो मकान जगह-जगह से गिरा हुआ था। दान्गन में एक बूढ़ा खोटा पर पड़ी थी। नारों और खिन्नता के चिल्ल दिवाली देते थे।



शातला ने पूछा—यह क्या हुआ ?

मगला—जो भाग्य में लिखा था ।

श्रीमला—जुवेर जी ने कुछ कहा-सुना क्या ?

मगला—मुँह से कुछ न कहने पर भी तो मन की बात छिपी नहीं रहती ।

श्रीमला—अरे, तो क्या अब यहाँ तक नोबत आ गयी ?

कुत्त की अविम दशा सकोच-हीन होगी है । मगला ने कहा—बाह्यतो, तो अब भी पड़ी रहती । उमरी घर में जीवन बट जाता । पर जहाँ प्रेम नहीं, पूछ नहीं, मान नहीं, वहाँ अब नहीं रह सकती ।

मगला—तुम्हारा मैवा कहाँ है ?

श्रीमला—मैवे कौन मुँह से बर आऊँगी ?

मगला—तब कहाँ जाओगी ?

श्रीमला—ईश्वर के दरबार में । पूछूँगी कि तुमने मुझे सुदरता क्यों नहीं दी ? बदमूरत क्यों बनाया ? वहन, स्त्री के लिए इससे अधिक दुर्भाग्य की बात नहीं कि वह रूप-हीन हो । घामद पुरबुले जनम की पिशाचिनिमै ही बदमूरत औरतें होती हैं । रूप से प्रेम मिलता है और प्रेम से दुर्लभ कोई वस्तु नहीं है ।

यह कह कर मगला उठ खड़ी हुई । श्रीमला ने उसे रक्खा नहीं । सोचा—इसे क्या जिलाऊँगी । आज तो बूढ़ा जलने की भी कोई आजा नहीं ।

उसके जाने के बाद वह देर तक बैठी सोचती रही, मैं कैसी अभागिन हूँ । त्रिम प्रेम की न पा कर यह बेचारी जीवन को त्याग रही है, उमरी प्रेम को मैंने पाँव से ठुकरा दिया । इसे जेवर की क्या कमी थी ? क्या वे सारे जवाक जेवर इसे मुखी रख सकें ? इसने उन्हें पाँव से ठुकरा दिया । उन्हीं आमृषणों के लिए मैंने अपना सर्वस्व ब्यो दिया । हा ! न जाने वह ( विमलसिंह ) कहाँ है, किस दशा में है ?

अपनी लालसा को, तृष्णा को यह कितनी ही बार पिक्कार चुकी थी । श्रीमला की दशा देख कर आज उसे आमृषणों से घृणा हो गयी ।

विमल को घर छोड़े दो साल हो गये थे । श्रीमला को अब उनके बारे में

भाँति-भाँति की संझाएँ होने लगी थी। आँखें पहर उनके विस्र में ग्लानि और क्षोभ को आग मुल्का करती थी।

दिहान के छोटे-मोटे जमींदारों का काम डोट-डपट, छीन-सपट ही में चला करता है। विमर्श को सेन्नी बेगार में होती थी। उनके जाने के बाद सारे खेत परती रह गये। कोई खेतनेवाला न मिला। इस खयाल से सामे पर भी किसी ने न जोड़ा कि बीच में कहीं बिपलमिह आ गये, तो नाँते-गार को अंगूठा दिखा देंगे। अमासियों ने लगान न दिया। शीतला ने महाजन में रुपये उधार ले कर काम चलाया। दूसरे वर भी यही कैलियत रही। भवकी महाजन में रुपये नहीं दिये। शीतला के गहरो के फिर कयी। दूसरा माल समाप्त होते-होते घर की सब लई-मैजी निवल्न गयी। फाँके होने लगे। बूड़ी साम, छोटा देवर, मन्दर और आप—चार प्राणियों का खर्च था। नाद-हित भी आने ही रहते थे। उन पर यह और मुनोवन हुई कि मैके में एक फौजदारी हो गयी। पिता और बड़े भाई उसमें फँस गये। दो छोटे भाई, एक बहिन और माता, चार प्राणी और मर पर आ डटे। गाँव पहले बुदिकल में चलनी थी, अब जमीन में धँस गयी।

प्रातः काल में कलह आरम्भ हो जाता है। समझिन समझिन में, माँले बहनों से गुण जाते। कभी तो अन्न के अभाव में भोजन ही न बनता; कभी भोजन बनने पर भी गाली-गलौज के कारण खाने की नीवत न आती। लड़के दूसरों के खेतों में जा कर खाने और मन्दर खाने, बुदिया कुपारे के घर जा कर अपना दुखड़ा रोती और ठकुर सोहाती कहती, पुस्य की अनुपस्थिति में स्त्री के मैकेवालों का प्राधाय्य हो जाता है। इन सप्राय में प्रायः विजय-मनाका मैकेवालों ही के हाथ में रहती हैं। किन्तो भाँति घर में नाज आ जाता, तो उसे पोने कौन? शीतला की माँ कहती, चार दिन के लिए आयी हूँ, तो क्या चक्की चलाई? छात बहनों, खाने की बेर तो किसी का तरह लपकेंगी, पोसने क्यों जान निकलती है? विवश हो कर शीतला को जेबले पीसना पड़ना। भोजन के समय वह महाभारत पचना कि पडोसवाले तंग आ जायें। शीतला कभी माँ के पैरों पर पड़ती, माय के चरण पकड़ती, लेकिन दोनों ही उसे झिडक देते। माँ कहती, तूने यहाँ बुन्ना कर हमारा पानी उतार लिया। माय

कहती, मेरे छाती पर सौत ला कर बैठा दो, अब बातें बनाती हूँ ? इस घोर विवाद में सीतला अपना विरह-शोक भूल गयी। मारी अमंगल शकाएँ इस विरोधाम्नि में छाय हो गयी। वस, जब यही चिन्ता थी कि इस दशा में छुटकारा कैसे हो ? माँ और सास, दोनों ही बा यमराज ने भिना और कोई छिना न था, पर यमराज उनका स्वागत करने के लिए बहुत उत्सुक नहीं जान पड़ता था। सैकड़ों उपाय सोचती, पर उस पथिवी की भाँति, जो दिन भर चल कर भी अपने द्वार ही पर खड़ा हो उसकी सोचने की शक्ति निश्चल हो गयी थी। चारों तरफ निगाहें दौड़ाती कि कहीं कोई शरण का स्थान है ? पर वही निगाह न खमती।

एक दिन वह इसी निराश की अवस्था में द्वार पर खड़ी थी। मुसीबत में चित्त की उद्विग्नता में, हतबार में द्वार से हमें प्रिय हो जाता है। सहसा उमने बाब मुरेशमिह को सामने धोटे पर जाते देखा। उनकी आँखें उसकी ओर खिरी। आँखें मिल गयी। वह स्तिन्नक कर पीछे हट गयी। किबाइ बंद कर लिये। कुँवर साहब आगे बढ़ गये। सीतला का चेहरा हुआ कि उन्होंने मुझे देख लिया। मेरे सिर पर माड़ी फटी हुई थी, चारों तरफ उममें वेबद लगे हुए थे। वह अपने मन में न जानें क्या कहते हाने ?

कुँवर साहब को शकवाली से विमर्लसह के परिवार के कष्टों की खबर मिली थी। वह गुप्तरूप से उनकी कुछ सहायता करना चाहते थे। पर सीतला को खचने ही सकोच ने उन्हें ऐसा दवाया कि द्वार पर एक क्षण भी न रुक सक। मंगला के गृह-स्पाग के तीन महीने पाठ जान वह पहली बार पर स निकले थे। मार चर्म के बाहर बैटना छोड़ दिया था।

इसमें सदेह नहीं कि कुँवर साहब मन में सीतला के रूप रस का आस्वादन करते थे। मंगला के जाने के बाद उनके हृदय में एक 'विचित्र दुष्कामना जाग उठी। मगर किसी उपाय से यह मुदरी मेरे नहीं हो सकती ? विमर्ल का मुहत्त से पता नहीं। बहुत सम्भव है कि वह अब मंगार में न हो। किन्तु वह इस कुपलना की विचार में दवाते रहने थे। सीतला की विपत्ति की कथा सुन कर भी वह उनकी सहायता करने हुए डरने थे। कान जाने, नामना यूँही बेर रख कर मेरे

विचार और विवेक पर कुटाघात करना चाहती हो। अंत को छलियों की कंपट-  
छीना उन्हें भुत्तावा दे ही गयी। वह शीतला के घर उमका हालचाल पूछने गये।  
भन में तर्क किया—यह कितना पोर बन्धाव है कि एक अवस्था ऐसे मंड में हो  
और मैं उसकी बात भी न पूछूँ? पर बड़ी से लीटे, तो बुद्धि और विवेक की  
रस्मियाँ टूट गयी थीं और मोबा मोह और वामना के अपार सागर में डूबकिमी  
आ रही थी। आह! यह मनोहर छवि! यह अनुपम मौज्य!

एक क्षण में उमकाँ की भाँति बरने लगे—यह प्राण और यह शरीर तेरी  
मैं करता हूँ। संसार हँसेगा, हँसे। महापाप है, हो। कोई चिंता नहीं। इस  
स्वर्गीय आनंद में मैं अपने को बर्तित नहीं कर सकता? वह मुझसे भाग नहीं  
सकती। इस हृदय को छाती से निवाल कर उनके पैरों पर रख दूँगा। विमल  
मर गया। नहीं मरा, तो अब मरेगा, पाप क्या है? बात नहीं। कमल कितना  
कोमल, कितना प्रफुल्ल, कितना ललित है? क्या उसके अधरों—

अकस्मान् वह टिटक गये, जैसे कोई बूछी हुई बात याद आ जाय। अनुप  
में बुद्धि के अंतर्गत एक अज्ञान बुद्धि होती है। जैसे रण-क्षेत्र में हिम्मत हार कर  
भागनेवाले सैनिकों को किसी गुप्त स्थान से जानेवाले कुमक सँभाल लेती है,  
वैसे ही इस अज्ञात बुद्धि ने सुरंग को मचेत कर दिया। वह सँभल गये। छलियों  
से उनकी आँखें मर गयी। वह कई मिनट तक किसी दृष्टि कैदी की भाँति  
शुष्क गरी मोचते रहे। फिर विजय-ध्वनि से कह उठे—कितना सरल है। इस  
विचार के हाथी की मिह से नहीं, बिडटी से मारेंगा। शीतला को एक बार  
'बहन' कह देने से ही यह सब विचार गाय हो जायगा। शीतला! बहन! मैं  
तेरा भाई हूँ।

उसी क्षण उन्होंने शीतला को पत्र लिखा—बहन, तुमने इतने कष्ट शीले पर  
मुझे मबर तक न दो! मैं कोई गैर न था। मुझे इसका दुःख है। सार, धन  
ईश्वर ने चाहा, तो तुम्हें कष्ट न होगा। इस पत्र के साथ उन्होंने नाम और रुपये  
भेजे।

शीतला ने उत्तर दिया—मैया, धामा करो जब तक बिजौली, तुम्हारा पद्य  
माझौली। तुमने मेरी दूबछी पात्र पार लगा दो।

ॐ ने व्यथित हो कर कहा—जिनके भाग्य में लिखा है, वे यही सोने में लदी हुई हैं। मेरी भाति सभी के वरम बोडे हो फूट गये हैं।

सुरेसिंह को ऐसा ज्ञान पड़ा कि शीतला को मुखमार्ति मलिन हो गयी है। प्रतिवियोग में भी रहना के लिए इनकी सलायित है। बोले—अच्छा, मैं तुम्हें गहने बनवा दूंगा।

यह बाक कुछ अपमानमूचक स्वर में कहा गया था, पर शीतला की भर्त्सना ध्यान में सज्जन हो आयी, कठ गद्गद हो गया। उसके हृदय-नेत्रों के सामने मंगला के रत्न-जटित आभूषणों का चित्र खिंच गया। उसने कुतन्त्रता-पूर्ण दृष्टि में सुरेश को देखा। मुँह से कुछ न बोली, पर उमका प्रत्येक अंग कड़ रहा था—मैं तुम्हारी हूँ।

६

कोयल आम की डालियों पर बैठ कर, मछली शीतल निर्मल जल में प्रोन्नत करके और मृग-राजक विस्तृत हरियालियों में छलाखें भर कर इतने प्रमत्त नहीं होते जितना मंगला के आभूषणों को पहन कर शीतला प्रमत्त हो रही है। उसके पैर जमान पर नहीं पड़ते। वह दिन भर आईने के सामने खड़ी रहती है, कभी केशों को सँवारती है, कभी मुरमा लगाती है। कुहरा फट गया है और निर्मल स्वच्छ चाँदनी निकल आयी है। वह घर का एक तिनका भी नहीं उठाती। उसके स्वभाव में एक विशिष्ट गंवे का भचार हो गया है।

लेकिन शृंगार क्या है? सोची हुई वाम-वामना को जमाने का घोर नाद, उद्दीपना का मंत्र। शीतला अब नख-झिल से खूब कर बैठती है, तो उसे प्रवल इच्छा होती है कि मुझे कोई देखे। वह द्वार पर आ कर खड़ी हो जाती है। गाँव की स्त्रियों को प्रथमा से उन्हें सतोंप नहीं होता। गाँव के पुरुषों को वह शृंगार-रस-विहीन समझती है। इसलिए सुरेशसिंह का बुलाती है। पहले वह दिन में एक बार आ जाते थे, अब शीतला के बहुत अनुनय-निनय करने पर भी नहीं जाते।

पहर रात गयी थी। घरों के दीपक बुझ चुके थे। शीतला व घर में दीपक जल रहा था। उसने कुँवर साहब के बगीचे से बेले का फूल भेजवाये थे और बंदी हार गूँथ रही थी—अपने लिए नहीं, सुरेश के लिए। प्रेम के सिवा पदस्थान का बदला देने के लिए उसके पाम और धा ही क्या?

एकाएक कुत्तो के भूँकने की आवाज सुनायी दी, और दम्भर में विमलमिह ने मकान के अंदर कदम रखा। उनके एक हाथ में सेंदूर का घा, दूसरे हाथ में एक कटरी। दारोर् दुर्बल, कपड़े मैले, दाढ़ी के बाल बड़े हुए, मुख पीला, जैसे कोई कैदी जेल से निकल कर आया हो। दीपक का प्रकाश देख कर वह शीतला के कमरे की तरफ चले। मैना पिछरे में लड़फड़ाने लगी। शीतला ने धीक कर सिर उठाना। धबरा कर बोली—“कोन ?” फिर पहचान बघी। तुंत फूल की एक कपड़े से छिपा दिया। उठ खड़ी हुई और सिर झुका कर पूछ—इतनी जल्दी चुप की ?

विमल ने कुछ जवाब न दिया। विस्मित हो-हो कर कभी शीतला की देवता और कभी घर की मानो किसी नये सप्तार में पहुँच गया है। यह वह अन्न-खिला फूल न था; जिसकी पेंसुड़ियाँ अनुकूल जलवायु न पा कर सिमट गयी थी। यह पूर्ण विवसित कुसुम था—आँख के जल-कणों से जगमगाता और बायु के झोंकों से लहराता हुआ। विमल उसकी सुंदरता पर पहले भी मुग्ध था; पर यह ज्योति वह अग्निम्बाला थी, जिससे हृदय में ताप और आँखों में जलन होती थी। ये आभूषण, ये वस्त्र, यह सजावट ! उसके सिर में एक चक्कर-सा आ गया। जमीन पर बैठ गया। इस सूर्यमुखी के सामने बैठते हुए उसे राजा आती थी। शीतला अभी तक स्तम्भित खड़ी थी। वह पानी लाने नहीं बीड़ी, उसने प्रति के चरण नहीं धोये, उठाको पता तक नहीं मला। रत्नबुद्धि सी हो गयी थी। उबने कल्पनाओं की कैसी मुरम्य बाटिका लगायी थी। उस पर दुपार पड़ गया। वास्तव में इस मलिनपद, अर्ध-नग्न पुरुष से उमंग पैदा हो रही थी। यह घर का जमींदार विमल न था। यह मजदूर हो गया था। मोला काम मुलाक़ाति पर, बयार वाले बिना नहीं रहता। मजदूर सुंदर बरानी में भी मजदूर ही रहता है।

सहसा विमल की माँ चौकी। शीतला के कमरे में आयी, तो विमल को केनते ही मानु स्नेह में विह्वल होकर उसे छाती से लगा लिया। विमल ने उसके चरणों पर सिर रखा। उसकी आँखों से आँसुओं की गरम-गरम बूँदें निकल रही थी। माँ पुलकित हो रही थी। मुख से बात न निकलती थी।

एक क्षण में विमल ने कहा—आम्मा !

कट-ध्वनि ने उसका आशय प्रकट कर दिया ।

माँ ने प्रश्न समझ कर कहा—नहीं बेटा, यह बात नहीं ।

विमल—यह देखना क्या है ?

माँ—स्वभाव ही ऐसा है, तो कोई क्या करे ?

विमल—मुरझा ने मेरा हलिया क्यों लिखाया था ?

माँ—तुम्हारा खोज लेने के लिए । उन्होंने दया न की होती, तो आश्रम पर मैं किसी को जाता न पाने ।

विमल—बहुत अच्छा होता ।

श्रीतला ने ताने से कहा—अपनी ओर मैं तुमने सबको यार ही डाला था । फूला की सेज नहीं बिछा गये थे ।

विमल—अब तो फूला की सेज ही बिछी हुई देखता हूँ ।

श्रीतला—तुम किसी के आश्रम के बिघाता हो ?

विमलसह उठ कर श्लेष से काँपता हुआ बोला—अम्मा, मुझे यहाँ से ले चलो । मैं इस पिशाचिनी का भुँह नहीं देखना चाहता । मेरी नाँसों में खून उतरता चला जाता है । मैंने इस कुल कलकिनी के लिए तीन साल तक जो कठिन तपस्या की है, उसमें ईश्वर मिल जाता, पर इसमें न पा सका !

यह कह कर वह कमरे में निकल आया और माँ के कमरे में सेट रहा । माँ ने तुरन्त उसका सिर और हाथ-पैर धुलाये । वह झून्हा जला कर पूरियाँ पनाने लगी । साय-साय पर की विपत्ति-कथा भी कहती जाती थी । विमल के हृदय में मुरेछ के प्रति जो विरोधामि प्रग्नलिप्त हो रही थी, वह शांत हो गयी, लेकिन हृदय-दाह ने दाह-दाह का रूप धारण किया । जोर का बुझार चढ़ आया । लवी पाना की पकान और नष्ट तो था ही, बरमा के कठिन श्रम और तप के बाद यह मानसिक सतप्त और नी कुत्सह हो गया ।

चारों रात वह अचेत पड़ा रहा । माँ बैठे पन्ना जलवायी और रोती गी । दूसरे दिन भी वह बेहोश पड़ा रहा । श्रीतला उसके पास एक घण्टे के लिए भी न आयी । इन्होंने मुझे कौन सोने के कौर खिला दिये हैं, जो इनको घोंस सहे ? यहाँ तो 'बैसे बत्ता घर रहे, बैसे रहे बिदेस ।' निमी की फूटी कौडो नहीं जानती । बहुत ताव दिसा कर तो गये थे ? क्या श्राद जानी ?

संध्या के समय सुरेश को खबर मिली। तुरंत दौड़े हुए आये। आज दो महीने के बाद उन्होंने इस घर में कदम रखा। विमल ने आँखें खोली, पहचान गया। आँखों से आँसू बहने लगे। सुरेश के मुखारविंद पर दया की ज्योति झलक रही थी। विमल ने उनके बारे में जो अनुचित सदेह किया था, उसके लिए वह अपने को धिक्कार रहा था।

शीतला ने ज्यों ही सुना कि भुरेयाग्रिह आये हैं—तुरंत सीढ़ी के सामने गयी। केच छिटका-लिये और बिपद् की मूर्ति बनी हुई—विमल के कमरे में आयी। कहीं तो विमल की आँखें बंद थी, मून्छित-सा पड़ा था, कहीं शीतला के आते ही आँखें खुल गयी। अग्निमय नेत्रों से उसकी ओर देख कर बोला—  
अनी आयी है? आज के तीसरे दिन आना। कुँपर साहब से उस दिन फिर भेट हो जायगी।

शीतला उलटे पाँव चली गयी। सुरेश पर घड़ों पानी पड़े गया। मन में सोचा, कितना रूप-लावण्य है; पर कितना विपास्त! हृदय की जगह केवल शृंगार-लालसा!

आतंक बढ़ता गया। सुरेश ने डाक्टर बुलवाये; पर मृत्यु-देव ने किसी को न मानी। उनका हृदय पाषाण है। किसी भाँति नहीं पसीजता। कोई अपना हृदय निकाल कर रख दे, आँसुओं की नदी बहा दे, पर उन्हें दया नहीं आती। बसे हुए घर को उजाड़ना, लहराती हुई खेती को सुखाना उनका काम है। और उनकी निर्दयता कितनी विनोदमय है! वह निरप नये रूप बदलते रहते हैं। कभी दामिनी बन जाते हैं, तो कभी पुष्प-माला। कभी सिंह बन जाते हैं, तो कभी सियार। कभी अग्नि के रूप में दिखायी देते हैं, तो कभी जल के रूप में।

तीसरे दिन, पिछली रात को, विमल को मानसिक पोड़ा ओरः हृदय-साप का अंत हो गया। चौर दिन को कभी धोरी नहीं करता। सप् के दूत प्रायः रात ही को सबकी नज़र बचा कर आते हैं और प्राण-रत्न को पुरा ले जाते हैं। आकाश के फूल मुरझाये हुए हैं। बृहस्पति स्थिर हैं; पर शोक में मग्न, मिर बुकाये हुए। रात शोक का-बाह्यरूप है। पद्म मृत्यु का ओदरक्षेत्र है। उसी



नमन कमल के घर में आर्तिनाद सुनायी दिया—वह नाद, जिने मुकुने के लिए मूर्खदेव विकल रहते हैं।

नीतना चौक पट्टी बोर धवरायो हुई मरण दम्बा की आरंभली। उम्मे, मृतदेह पर निगाह डाली और अचानक हो कर एक पाग बोछे हट गयी। उसे जान पड़ा, किमर्दानह उसको ओर अत्यन्त तीव्र दृष्टि से देख रहे हैं। बूते हुए दो कम उन भयंकर प्रार्थना दिवाया पडा। यह धारे अंध के वहाँ टहर न मकी। हार न निकल ही रही थी कि सुरेन्द्राभिषेक से अँट हो गयी। कानर स्वर में बोली—मुझे जमी इर लगता है। उसने चाहा कि रागी हुई इनके पैरों पर गिर पड़े, पर वह अकम्प हट गया।

७

अब किसी पबिक को चलन चलते जात हाता है कि मैं रास्ता भूल गया हूँ, तो वह सोच रास्त पर आन के लिए बड़ बड़ न चलता है। पोंछलना है कि मैं इतना अनावधान क्या हो गया? गुरग नी अर घालि-मार पर आन के लिए विकल हो गये। ममला को स्मृमयी सवाएँ याद आने लगीं। हृदय में वास्तविक सौन्दर्योपासना का भाव उदय हुआ। उमम कितना प्रेय, कितना त्याग, कितनी क्षमा थी। उसको अमुल पति-भक्ति का याद करके कभी-कभी वह तड़प जात। बाहू में घोर अल्पाचार दिया। एम उग्गवले रत्न का आदर न किया। मैं यही बड़बड़ पडा रहा और मर मामन ही लक्ष्मा घर में बिकल गयी। ममला ने चापले-बल्लठ धीतला ३ जो बातें कही थीं, व उन्हें मालूम थीं, पर उन बाता पर विश्वास न होता था। ममला शानि प्रवृत्ति को था। वह इतनी उद्दता नहीं कर सकती। उमम क्षमा थी, वह इतना विडप नहीं कर सकती। उनका मन कहता था कि वह जोखी है और कुशल में है। उसके मैनेवाला को कई पत्र लिखे, पर वहाँ न्यस्य और कटुवाक्यों के मिवा और बरा रखा था? अब को उन्होंने लिखा—अब उस रत्न की खोज में स्वयं जाता हूँ। या तो ले कर हो जाऊँगा, या नहीं मुँह में वात्सल्य लगा कर डुब मर्नेगा।

इस पत्र का उत्तर आया—अच्छी बात है, बाइए, पर वहाँ से होते हुए जाइएगा। यहाँ से भी कोई आपके साथ चला जायगा।

सुरेन्द्राभिषेक को इन सूझों में आशा की झलक दिखायी दी। उसी दिन प्रस्थान

कर दिया। किसी को साथ नहीं लिया।

ममूरतल में किसी ने उनका प्रेममय स्वागत नहीं किया। मनी के मुँह फूटे हुए थे। ममूर जी ने तो उन्हें पति-वध पर एक लम्बा उपदेश दिया।

रात को जब वह भोजन करके लेटे, तो छोटी साली आ कर बैठ गयी और मुस्करा कर बोली—जीजा जी, कोई मुंदरी बनने रूप-हीन पुरुष को छोड़ दे, उसका अपमान करे, तो आप उसे क्या कहेंगे?

सुरेश—( गंभीर स्वर में ) कुटिला !

माली—और ऐसे पुरुष को, जो अपनी रूप-हीन स्त्री को त्याग दे ?

सुरेश—पक्ष !

माली—और जो पुरुष पिछानू हो ?

सुरेश—पिछाच !

माली—( हँस कर ) तो मैं भागती हूँ। मुझे आपने डर लगता है।

सुरेश—पिछाचो का प्रायश्चित्त भी तों स्वीकार हो जाना है !

साली—दार्त यह है कि प्रायश्चित्त सच्चा हो।

सुरेश—यह तो वह अन्यायी ही जान सकते हैं।

माली—सच्चा होगा, तों उसका कल भी अवश्य मिलेगा। मगर दोदी को के कर इधर ही से लौटिएगा।

सुरेश की आस्ता-नौका फिर डगमगायी। निडरिष्ठ कर बोले—प्रभा, ईश्वर के लिए मुझ पर दया करा। मैं बहुत दुःखी हूँ। माल भर में ऐसा कोई दिन नहीं गया कि मैं रो कर न सोया हूँ।

प्रभा ने उठ कर कहा—जाने किये का क्या इलाज ? जाती हूँ, आराम कीजिए।

एक क्षण में मंगला की माता आ कर बैठ गयी और बोली—बेटा, तुमने तो बहुत पढ़ा-लिखा है, देश-विदेश घूम आये हो, मुंदर बनने की कोई दवा कहीं नहीं देखी।

सुरेश ने विनय-पूर्वक कहा—माता जी, अब ईश्वर के लिए लज्जित न कीजिए।

माता—तुमने तो मरी प्यारी बटो के प्राण ने लिये ! .. मैं क्या तुम्हें लज्जित करत से भी गयी ? जो म तो था कि एसी-ऐसी सुनाऊँगा कि तुम भी वाद करोगे, पर मरे महमात हों, क्या जलाऊँ ? आराम करो ।

मुरझ आशा और भय की दशा में पड़े करवटें बदल रहे थे कि एकाएक द्वार पर किसी न धीरे से कहा—जाती क्या नहीं, जागते तो हैं ? किसी ने जवाब दिया—लाज आने है ।

मुरझ ने आवाज पहचानी । प्याम को पत्नी मिल गया । एक क्षण में बगला उसके सम्मुख आयी और मिर मुका कर खड़ी हो गयी । मुरझ को उसके मुख पर एक अगूठी छवि दिखायी दी जैसा कोई रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर चुका हो ।

रूप वही था, पर आँखें और थीं ।

## जुगनू की चमक

पंजाब के सिंह राजा रणजीतसिंह मंसार से चले चुके थे और राज्य के वे प्रतिष्ठित पुरुष जिनके द्वारा उसका उत्तम प्रबंध चल रहा था, परस्पर के द्वेष और अनुरोध के कारण मर मिटे थे। राजा रणजीतसिंह का बताया हुआ सुंदर किंतु खोखला भवन अब नष्ट हो चुका था। भुँवर दिलीपसिंह अब इंगलैंड में थे और रानी चंद्रकुंवरि बनार के दुर्ग में। रानी चंद्रकुंवरि ने विनष्ट होते हुए राज्य को बहुत संभालना चाहा, किन्तु राज्य-प्रणाली न जानती थी और कूटनीति ईर्ष्या की भाव भटकाने के सिवा और क्या करती ?

रात के बारह बजे बूके थे। रानी चंद्रकुंवरि अपने निवास-भवन के ऊपर छत पर खड़ी गंगा की ओर देख रही थी और सोचती थी—'तुम्हें क्या इस प्रकार स्वतंत्र है ? उन्होंने जिसने गाँव और नगर डुबाये हैं, कितने जीव-जंतु तथा द्रव्य निगल गयी है, किन्तु फिर भी वे स्वतंत्र हैं। कोई उन्हें बंद नहीं करता। इसीलिए न कि वे बंद नहीं रह सकती ? वे गरजेंगी, बल लायेंगी—और बाँध के ऊपर चढ़ कर उसे नष्ट कर देंगी, अपने ओर से उसे बहा ले जाएँगी।

यह सोचते-विचारते रानी गद्दी पर सेट गयी। उसकी आँखों के सामने पूर्वावस्था की स्मृतियाँ मनोहर स्वप्न की भाँति आने लगीं। कभी उसकी माँह की मरोड़ तलवार से भी अधिक तीव्र थी और उसकी मुस्कराहट बसंत की सुगंधित समीर से भी अधिक प्राण-प्रेरक; किन्तु हाय, अब इसकी शक्ति हीनावस्था को पहुँच गयी। रोये तो अपने को मुनाने के लिए, हँसे तो अपने को बहलाने के लिए। यदि बिगड़े तो किसी का क्या बिगाड़ सकती है और प्रसन्न हो तो किसी का क्या बना सकती है ? रानी और बाँदो में कितना अंतर है ? रानी की आँखों से आँसू की नूँदें सरने लगी, जो कभी बिप में अधिक प्राण-नाशक और अमृत से अधिक अनमोल थीं। वह इसी भाँति अकेली, निराश, कितनी बार रोयी, जब कि आकाश के तारों के सिवा और कोई देवाने-पाला न था।

## २

इसी प्रकार राने-राने रानी की आँखें राख गयीं। उसका प्यारा, बल्लेबे का टुकड़ा कुँवर दिलीपसिंह, जिनमें उसने प्राण बसने थे, उदात्त मुख आ कर लया हो गया। अंत गाय दिन भर जगता म रहने के पड़पा। सध्या की घर जाती है और अपने बछड़े को देखने ही प्रेम और उम्र में मतवाली हो कर स्नानों में दूध भरे, पूँछ उठाये, दोरती है, उसी भाँति चटकुँवर अपने दोनों हाथ फैलाये अपने प्यारे कुँवर को छानी से सपटाने के लिए दौड़ी। परन्तु आँखें मूक गयीं और जीवन की जाशाजा की भाँति वह स्वप्न बिनष्ट हो गया। रानी ने गगा की ओर देखा और कहा—मुझे भी अपने साथ लेतो बनो। इसके बाद रानी मुरत छज से उतरी। कमरे में एक सालटेन जल रही थी। उसके उज्जले में उसी एक मैली साड़ी पहनी, गहने उतार दिये, रलों क एक छोटे-से बरग की ओर एक तीव्र कटार को बमर में रखा। जिस समय वह बाहर निकली, नैराशपूर्ण साहस की मूर्ति थी।

सवरी ने पुकारा—बोल ? रानी ने उत्तर दिया—मैं हूँ मगो।

‘कहाँ जाती है ?’

— ‘गगाबल लाऊँगी। मुणही टूट गया है, रानी जी रानी माँग रही हैं।’

सवरी कुछ समीप आ कर बोला—बस, मैं भी लेंदे साथ चलता हूँ, जरा रुक जा।

छगी बोली—मेरे साथ मत आओ। रानी कोठे पर है। देख लेंगी।

सवरी को धोखा दे कर चटकुँवर मृत द्वार में होती हुई अंधेरे में बाँटा से उलझती, चटाना से टकरानी, बगा के निनारे जा पहुँची।

रात आधी से अधिक जा चुकी थी। गगा जो से गतोपदायिनी पारिवि विराज रही थी। तरबे रात को याद में लिये सो रही थीं। चारों ओर लुभाटा था।

रानी नदी के निनारे-निनारे चली जाती थी और मुड़-मुड़ कर पीछे देखती थी। एकाएक एक डोगी खुंटे से बँधी हुई देख पड़ी। रानी ने उसे प्यान से देखा तो मस्माह सोया हुआ था। उसे जगाना काल को जगाना था। वह तुरत रस्सी खोल कर नाव पर सवार हो गयी। नाव धीरे-धीरे पार के सहारे

चलने लगी; शोक और अंधकार-मग्न स्वप्न की भाँति जो ध्यान की तरंगों के साथ बहा चला जाता हो। नाव के हिलने से मल्लाह चौंक कर सठ बैठा। आँखें मलते-मलते उमने सामने देखा तो पटरे पर एक स्त्री हाथ में झाँड़ लिये बैठी है। धवरा कर पूछा—तैं कौन हैं रे? नाव कहाँ लिये जाती है? रानी हँस पड़ी। भय के खंज को साहम कहने लगी। बोली—भव बताऊँ या मृत?

मल्लाह कुछ भयभीत-सा हो कर बोला—सच बताया जाय।  
रान बोली—अच्छा तो सुनो। मैं लाहौर की रानी चंद्रकुँवरि हूँ। इसी किले में कैदी थी। आज भागी जाती हूँ। मुझे जल्दी बनारस पहुँचा दे। तुझे निहाल कर दूँगी और शराबत करेगा तो देव, इस कटार से सिर काट दूँगी। सबेरा होने से पहले मुझे बनारस पहुँचना चाहिए।

यह धमकी काम कर गयी। मल्लाह ने विनीत भाव से अपना कमल बिछा दिया और तैली से झाँड़ चलाने लगा। किनारे के वृक्ष और ऊपर जगमगाते हुए तारे साय-साय रोड़ने लगे।

### ३

प्रातः काल धुनार के दुर्ग में प्रत्येक मनुष्य अचम्भित और व्याकुल था। संतरी, चौकीदार और लौहियाँ सब सिर नोचे किये दुर्ग के स्वामी के सामने उपस्थित थे। अभ्येष्ट हो रहा था; परंतु कुछ पता न चलता था।

उधर रानी बनारस पहुँची। परंतु वहाँ पहले से ही पुलिस और सेना का जाल बिछा हुआ था। नगर के नाके बंद थे। रानी का पता लगानेवाले के लिए एक बहुमूल्य पारितोषिक की सूचना दी गयी थी।

बंदीगृह से निकल कर रानी को ज्ञात हो गया कि वह और वृद्ध कारागार में है। दुर्ग में प्रत्येक मनुष्य उसका आश्चर्यचकित था। दुर्ग का स्वामी भी उधे सम्मान की दृष्टि में देखता था। किंतु आज स्वतंत्र हो कर भी उसके ओठ बंद थे। उसे सभी स्थानों में सशस्त्र पड़ते थे। पंजरहित पक्षी को पिंजरे के कोने में ही मुक्त है।

पुलिस के अठसर प्रत्येक जाने-जानेवालों को ध्यान से देखते थे; किंतु उन भ्रष्टारियों की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता था, जो एक पट्टी हुई साड़ी पहने, पात्रियों के पीछे-पीछे धीरे-धीरे, फिर मुकामे ईश्वर की ओर घंटी बजा रही

है। न ॥ बौद्धों है, न क्षिप्रकों है, न पञ्चरत्नों है। इस भिक्षुओं की मर्मा में रानी का रक्त है।

यहाँ से भिक्षुओं ने अयोध्या की राह ली। वह दिन भद्र विष्ट मागों के चलती और रात को किसी गुप्तस्थान पर छेद रहती थी। मुख पीला पड़ गया था। देखा न छाले थे। पूर-भा बदन कुम्हला गया था।

वह प्रायः रात्रि में राहों की रात्री के चरणों में मुनियों। कभी-कभी पुनः के आदमी भी उसे रात्री की राह न दत्तचित्त देख पड़ते। उन्हें दायते ही भिक्षुओं के वृक्ष में सोयी हुई रात्री जाग उठनी। वह रात्रि उठ कर ऊँची गुप्त की दृष्टि से दक्षिण और रात्रि तथा रात्रि में उमकी रात्रि जगती। एक दिन अयोध्या के समीप पहुँच कर रात्री एक वृक्ष के नीचे बैठे हुई थी। उसने कमर से बटार निकाल कर सामने रख दी थी। वह रात्रि रही थी कि रात्री जागे? मेरी रात्रि का भूत रात्री है? क्या इस रात्रि में अब मेरी रात्रि रात्री दिखाना नहीं है? रात्री से रात्री दूर पर आया था एक बहुत बड़ा बाघ था। उसमें बड़े-बड़े के और समूह गये हुए थे। कई एक रात्री चमकीली बाँझों पहने रहते रहे थे, कई छोटे बड़े हुए थे। रात्री ने इस रात्रि ठाट-बाट को धोके की दृष्टि से देखा। एक बार वह भी बारम्बार गयी थी। उसका पताक इसने कहीं बड़ कर था।

बैठे-बैठे अयोध्या हो गयी। रात्री ने रात्री रात्रि निदरय किया। इसने में एक बड़ा मनुष्य टहलता हुआ आया और उसके समीप गया हो गया। ऐंड़ी हुई रात्री थी, रात्री में रात्री हुई चपकल थी, कमर में टाकनार लटक रही थी। इस मनुष्य की देखते ही रात्री ने तुरत बटार उठा कर कमर में सोझ ली। सिपाही ने उसे तीव्र दृष्टि से देख कर पूछा—बेटी, रात्री से आती हो?

रात्री ने कहा—बहुत दूर से।

‘कहाँ जाओगी?’

‘यह नहीं कह सकती, बहुत दूर।’

सिपाही ने रात्री की ओर फिर ध्यान से देखा और कहा—जय भगतों बटार मुझे दिखाओ। रात्री बटार सेनाक कर खी हूँ गयी और तीव्र स्वर से बोली—मित्र हो या दुश्मन? टाकुर ने कहा—मित्र। सिपाही के बातचीत करने

के डग और चेहरे में कुछ ऐसी विक्षयता थी जिसे रानी को विवश हो कर विस्वास करना पड़ा।

वह बोली—विस्वामपात न करना। यह देखो।

ठाकुर ने कटार हाथ में ली। उसको उलट-गुलट कर देखा और बड़े नम्र भाव से उसे आँखों से लगाया। तब रानी के आगे विनोद-भाव से स्मित मुका कर वह बोला—महारानी चंद्रकुंवरि?

रानी ने कण स्वर से कहा—नहीं, अनाथ भित्तारिनी। तुम कौन हो?

सिपाही ने उत्तर दिया—आपका एक सेवक!

रानी ने उसकी ओर निराश दृष्टि से देखा और कहा—दुर्भाग्य के सिवा इस संसार में मेरा कोई नहीं।

सिपाही ने कहा—महारानी जी, ऐसा न कहिए। पंजाब के सिंह की महारानी के वचन पर अब भी सैकड़ों सिर झुक सकते हैं। देश में ऐसे लोग विद्यमान हैं, जिन्होंने आपका नमक खाया है और उसे भूलें नहीं हैं।

रानी—अब इसकी इच्छा नहीं। केवल एक घात-स्थान चाहती हूँ, जहाँ पर एक कुटी के सिवा और कुछ न हो।

सिपाही—ऐसा स्थान पहाड़ों में ही मिल सकता है। हिमालय की गोद में चलिए, वही आप उपद्रव से बच सकती है।

रानी (आश्चर्य से)—तबुलों में जाऊँ? नेपाल कब हमारा मित्र रहा है?

सिपाही—राणा जंगबहादुर दृढ़प्रतिज्ञ राजपूत हैं।

रानी—कितु वही जंगबहादुर तो है जो अभी-अभी हमारे विरुद्ध लार्ड एलहोनी को सहायता देने पर उद्यत था?

सिपाही (कुछ लज्जित-सा हो कर)—जब आप महारानी चंद्रकुंवरि थी, आज आप भित्तारिनी हैं। ऐश्वर्य के ड्रेपी और दाग चारों ओर होते हैं। लोग जलती हुई आग को पानी से बुझाते हैं, पर राख माथे पर चढ़ायी जाती है। आप जरा भी मोच-विचार न करें, नेपाल में अभी धर्म का स्तोत्र नहीं हुआ है। आप भय-त्याग करें और जलें। देखिए, वह आपको किस भाँति सिर और आँखों पर बिठाता है।



ही वृद्ध की छाया में काटो । मिमाही भी वहीं सोया । प्रातः  
भी छोटे देस पडे । एक पर सिपाही सवार था और दूसरे पर  
सूबक । यह रानी चन्द्रकुंवरि की, जो अपने रक्षा-स्थान की  
भी थी । कुछ देर पीछे रानी ने पूछा—यह पढाव किमका है ?  
सिपाही ने कहा—राणा जगवहादुर का । वे लीजगाथा करने आये हैं, किन्तु हमन  
पढ़ते पढ़ते जायेंगे ।

रानी—तुमने उनसे मुझे यहीं क्यों न सिखा दिया । उनका हार्दिक भाव  
प्रगट हो जाता ।

सिपाही—यही उनसे मिलना असम्भव था । आप जामूसों की दृष्टि से न  
दब सफ़ती ।

#### ४

उस समय यात्रा करना प्राण की अर्पण कर देना था । दोनों यात्रियों को  
अनेकों बार डकुआ का सामना करना पडा । उस समय रानी की बीरता, उनकी  
युद्ध-कौशल तथा पुर्तों दक्ष कर वृद्ध मिमाही दाँता तले अँगुली दबाता था । कभी  
उनकी सलवार काट कर जाती और कभी पाँडे की तल चात ।

यात्रा बड़ी लम्बी थी । जेठ का महीना तम में ही समाप्त हो गया । वर्षा  
झागु बारी । आकाश में मेघ-माला छाने लगी । सूखी नदियाँ उतर पसी ।  
पहाड़ी ताले बरझाने लगे । न नदियाँ न नाव, न नाला पर घाट, किन्तु घाँडे  
सधे हुए थे । स्वयं पानी में उतर जाते और डूबते-उठते, बहते, नहर प्रायः  
पार पहुँच जाते । एक बार बिम्बू ने कछूर की पीठ पर नदी की यात्रा की थी ।  
यह यात्रा उससे कम भयानक न थी ।

वहीं ऊँचे ऊँचे साखू और महुए के जंगल और कहीं हर-भर जामुन के  
वन । उनकी गोद में हार्दिक और हिरना के झुंड नछोलें कर रहे थे । घान की  
क्यातियाँ पानी से बरी हुई थी । निमानों को स्त्रियाँ घान रापती थी और  
सुहावने गीत गाती थीं । वहीं उन मनोहारो ध्वनिया के बीच में, मेत की मझ  
पर छाने की छाया में बैठ हुए नमोदाग के कठोर शब्द सुनाना दत्त थे ।

इसी प्रकार यात्रा वं कह मन्त्रे, अनवानक विविध दुस्व दम्पत दाना यात्री  
उपार्ई पार करके नैपात्र को भूमि में प्रविष्ट हुए ।

५

प्रातःकाल का सुहावना समय था। नेपाल के महाराज मुर्रेद्विक्रमसिंह का दरबार सजा हुआ था। राज्य के प्रतिष्ठित मंत्री अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे। नेपाल ने एक बड़ी लड़ाई के पश्चात् तिब्बत पर विजय पायी थी। इस समय संधि की शर्तों पर विवाद छिड़ा था। कोई प्रुढ़-व्यय का इच्छुक था, कोई राज्य-विस्तार का। कोई-कोई महात्म्य धार्मिक कर पर जोर दे रहे थे। केवल राणा जंगबहादुर के आने की देर थी। वे कई महीनों के देशाटन के पश्चात् आज ही रात को लौटे थे और यह प्रसंग, जो उन्हीं के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था, अब मन्त्रि-सभा में उपस्थित किया गया था। तिब्बत के वासी, आरा और भय की दशा में, प्रधान मंत्री के मुख से अंतिम निर्णय सुनने को उत्सुक हो रहे थे। नियत समय पर शोषदार ने राणा के आगमन की सूचना दी। दरबार के लोग उन्हें सम्मान देने के लिए खड़े हो गये। महाराज की प्रणाम करने के पश्चात् वे अपने सुसज्जित आसन पर बैठ गये। महाराज ने कहा—राणा जी, आप संधि के लिए कौन प्रस्ताव करना चाहते थे ?

राणा ने तन्त्र भाव से कहा—मेरी अल्प बुद्धि में तो इस समय कठोरता का व्यवहार करना अनुचित है। शोकानुल दायु के साथ दयालुता का आचरण करना सर्वदा हमारा उद्देश्य रहा है। क्या इस अवसर पर स्वार्थ के मोह में हम अपने बहुमूल्य उद्देश्य को भूल जायेंगे ? हम ऐसी संधि चाहते हैं जो हमारे हृदय की एक कर दे। यदि तिब्बत का दरबार हमें व्यापारिक सुविधायें प्रदान करने की कटिबद्ध हो, तो हम संधि करने के लिए सर्वथा उद्यत हैं।

मन्त्रिमंडल में विवाद आरम्भ हुआ। सबकी सम्मति इस दयालुता के अनुसार न थी, किंतु महाराज ने राणा का समर्थन किया। यद्यपि अधिकांश सदस्यों की दायु के साथ ऐसी तरह की फलदायिनी नहीं थी, तथापि महाराज के विपक्ष में बोलने का किसी को साहस न हुआ।

यात्रियों के चले जाने के पश्चात् राणा जंगबहादुर ने खड़े हो कर कहा—सभा के उपस्थित गणजनों, आज नेपाल के इतिहास में एक नयी पट्टा होनेवाली है, जिसे मैं आपकी जातीय नीतिमत्ता की परीक्षा समझता हूँ। इसमें सफल होना आपके ही कर्तव्य पर निर्भर है। आज राज-मन्त्रा में जाते समय मुझे यह आशेद-

पत्र मिला है, जिसे मैं आप मज्जनों की सेवा में उपस्थित करता हूँ। निवेदक ने तुलसीदास की यह चौपाई लिख दी है—

“आपत-काल परधिए चारी ।

नोरज पर्व मित्र अथ नारी ॥”

महाराज ने पूछा—यह पत्र किसने भेजा है ?

‘एक मित्रारि ने ।’

‘मित्रारिनी कौन है ?’

‘महाराजो बद्रुंवरि ।’

कहबड खत्री ने आपस्य से पूछा—जो हमारी मित्र अंगरेजी सरकार के विरुद्ध हो कर भाग जायी है ?

राणा जगबहादुर ने लज्जित हो कर कहा—जी हाँ। यद्यपि हम इसी विचार को दूसरे शब्दों में प्रकट कर सकते हैं।

कहबड खत्री—अंगरेजों से हमारी मित्रता है और मित्र के शत्रु को सहायता करना मित्रता की नीति के विरुद्ध है।

जनरल घमघोर बहादुर—ऐसी दशा में इस बात का भय है कि अंगरेजी सरकार से हमारे सम्बन्ध टूट न जायें।

राजकुमार रणवीरसिंह—हम यह मानते हैं कि अतिथि-सत्कार हमारा धर्म है किन्तु उसी समय तक, जब तक कि हमारे मित्रों को हमारी ओर से सहायता करने का अवसर न मिले।

इस प्रसंग पर यहाँ तक मतभेद तथा वाद-विवाद हुआ कि एक दोर-सा मज्ज गया और कई प्रधान यह कहते हुए सुनायी दिये कि महाराजनी का इस समय आना देना के लिए कदापि भयानकारी नहीं हो सकती।

तब राणा जगबहादुर उठे। उनका मुख डाल हो गया था। उनका सन्निवार क्रोध पर अधिकार जमाने के लिए न्यय प्रयत्न कर रहा था। वे बोले—भाइयों, यदि इस समय मेरी बातें आप लोगों को अत्यन्त कड़ी जान पड़ें तो मुझे क्षमा कीजिएगा, क्योंकि अब मुझमें अधिक धवष करने की शक्ति बही है। अपनी जातीय साहसहीनता का यह कज्जाजन्क दूसरा अब मुझसे नहीं रखा जाता। यदि नेपाल के दरबार में इतना भी साहस नहीं कि वह अतिथि-सत्कार और

सहायता की नीति को निभा सके तो मैं हम घटना के सम्बन्ध में सब प्रकार का भार अपने ऊपर लेता हूँ। दरबार आने को हम विषय में निर्दोष समझे और इसकी सर्वसाधारण में घोषणा कर दे।

कड़बड़ मंत्री गर्म हो कर खंटे—केवल यह घोषणा देना को भय से रक्षित नहीं कर सकती।

राजा जगवहादुर ने क्रोध में ओठ खसा लिया, मितु भेभल कर कहा—देख का शासन-भार अपने ऊपर लेनेवालों को ऐसी अवस्थाएँ अनिवार्य हैं। हम उन नियमों से, जिन्हें पालन करना हमारा कर्तव्य है, मुँह नहीं थोड़ सकते। अपनी धरण में आये हुआ बा हाथ पकड़ना—उनकी रक्षा करना राजपूतों का धर्म है। हमारे पूर्व-गुरुय सदा इस नियम पर—धर्म पर प्राण देने को उद्यत रहते थे। अपने माने हुए धर्म को तोड़ना एक स्वतन्त्र जाति के लिए लज्जास्पद है। अंगरेज हमारे मित्र हैं और अन्तर्गत हर्ष का विषय है कि बुद्धिमानों मित्र है। महारानी चंद्रकुँवर को अपना दृष्टि में रखने से उनका उद्देश्य केवल यह था कि उपद्रवी लोगों के विरोध का कोई कदम लेप न रहे। यदि उनका यह उद्देश्य भंग न हो, तो हमारी ओर ये धंका होने का न उन्हें कोई अवसर है और न हमें उनसे सज्जित होने की कोई आवश्यकता।

कड़बड़—महारानी चंद्रकुँवर यहाँ किस प्रयोजन से आयी है ?

राजा जगवहादुर—केवल एक शांति-प्रिय सुसन्धान को सोज में, जहाँ उन्हें अपनी दुःस्थिति की चिंता से मुक्त होने का अवसर मिले। वह ऐश्वर्य-शाली रानी जो रंगमहलों में मुख-विलास करती थी, जिसे फूलों की सेज पर भी नीन न मिलता था, आज संकष्टों कीट से अनेक प्रकार के कष्ट सहन करती, मदी-नाले, पहाड़-खंड छानती यहाँ केवल एक रक्षित स्थान की सोज में आयी हैं। उनको हुई नदियाँ और जलस्रोत हुए नाले, बरसात के दिन। इन दुःखों को आप भोग जानते हैं और यह सब उसी एक रक्षित स्थान के लिए, उसी एक भूमि के टुकड़े की आशा में। किंतु हम ऐसे स्थान-हीन हैं कि उनकी यह सभिलापा भी पूरी नहीं कर सकते। उचित तो यह था कि उनकी-सी भूमि के बरके हम अपना हृदय फेंक देते। सोचिए, किसे अतिमान की बात है कि एक आपदा में फँसी हुई रानी अपने दुःख के दिनों में निराश को

याद करती है, यह वही पवित्र देश है। महारानी चंद्रकुंवरि को हमारे इस अमय-प्रद स्थान पर—हमारी धरणागतों को रक्षा पर पूरा भरोसा था और वही विश्वास उन्हें मही तक लाया है। इसी वादा पर कि पशुपतिनाथ की धरण में मुझे शांति मिलेगी, वह यहाँ तक आयी है। आपको अधिकार है, चाहे उनकी आशा पूर्ण करें या झूल में मिला दें। चाहे रक्षणता के—धरणागतों के साथ सदाचरण के—नियमों को निभा कर इतिहास के पृष्ठों पर अपना नाम छोड़ जायें, या जातीयता तथा सदाचार सम्बन्धी नियमों को मिटा कर स्वयं अपने को पतित समझें। मुझे, विश्वास नहीं है कि यहाँ एक भी मनुष्य ऐसा निरभिमान है कि जो इस अवसर पर धरणागत-भालन-धर्म को विस्मृत करके अपना सिर ऊँचा कर सके। अब मैं आपके अंतिम निपटारे की प्रतीक्षा करता हूँ। कहिए, आप अपनी जाति और देश का नाम उज्ज्वल करेंगे या सर्वदा के लिए अपने साथे पर अपराध का टीका लगायेंगे ?

राजकुमार ने उभय से कहा—हम महारानी के चरणों तले जाँ लें बिछायेंगे। गप्तान निरमलसिंह बोले—हम राजपूत हैं और अपने धर्म का निर्वोह करेंगे। जनरल बनबीरसिंह—हम उनको ऐसी धूम से लायेंगे कि सद्यः पवित्र हो जायगा।

राजा जगबहादुर ने कहा—मैं अपने भिन्न नदृष्ट खत्री के मुख से उनका फैसला सुनना चाहता हूँ।

कड़वठ खत्री एक प्रभावशाली पुरुष थे और मन्त्रिमंडल में वे राजा जगबहादुर की विरुद्ध मंडली के प्रधान थे। वे लज्जा भरे शब्दों में बोले—यद्यपि मैं महारानी के आगमन को भयवहित नहीं समझता, किंतु इस अवसर पर हमारा धर्म यही है कि हम महारानी को आश्रय दें। धर्म से मुँह मोड़ना किसी जाति के लिए मान का वारण नहीं हो सकता।

कुई धनियो ने उभय-पक्षों के शब्दों में इस प्रसंग का समर्पण किया।

महाराज मुरैटबिजयसिंह—इस निपटारे पर क्याई देता हूँ। तुमने जाति का नाम रक्ष लिया। पशुपति इस उत्तम काय में तुम्हारी महायत्ना करें।

सभा विसर्जित हुई। कुई ने तोपें छूटने लगीं। नगर भर में सत्रर गूँज उठी कि पंजाब की महारानी चंद्रकुंवरि का आगमन हुआ है। जनरल रणबीरसिंह

और जनरल समरपीरगढ़ बहादुर ५०,००० सेना के साथ महारानी की अव-  
धानी के लिए चले।

भक्ति-भवन की सजावट होने लगी। बाजार अनेक भाँति की उत्तम साम-  
ग्रियों से सज गये।

ऐक्यमें की प्रतिष्ठा व सम्मान सब कहीं होता है, किन्तु किसी में भिलापिनी  
का ऐसा सम्मान देखा है? सेनानु बंद बजाती और पताका फहराती हुई एक  
उमड़ी नदी की भाँति जाती थी। सारे नगर में आनंद ही आनंद था। दोनों ओर  
सुंदर वस्त्राभूषणों से सजे दर्शकों का समूह खड़ा था। सेना के कमांडर आगे-आगे  
घोड़ों पर सवार थे। सबके आगे राणा जगबहादुर जातीय अभिमान के मर में  
सीन, अपने सुपर्याप्त होठों में बँठे हुए थे। यह उदारता का एक पवित्र  
दृश्य था। धर्मशाला के द्वार पर यह खुलूस रुका। राणा हाथी से उतरे।  
महारानी चंद्रकुंवर कोठरी से बाहर निकल आयी। राणा ने झुक कर सलाम  
की। रानी उनकी ओर आश्चर्य से देखने लगी। यह वही उनका मित्र दुर्गा  
सिपाही था।

बाँलें भर भायीं। मुस्करायीं। खिले हुए फूल पर से ओस की बूँदें टपकीं।  
रानी बोली—मेरे बड़े ठाकुर, मेरी नाब पार छानेवाले, किस भाँति तुम्हारा  
गुण गाऊँ?

राणा ने सिर झुका कर कहा—आपके चरणारविंद से हमारे भाग्य उदय हो  
गये।

६

नेपाल की राजसभा ने पच्चीस हजार रुपये से महारानी के लिए एक उत्तम  
भवन बनवा दिया और उनके लिए दस हजार रुपया मासिक नियत कर दिया।

यह भवन आज तक वर्तमान है और नेपाल को शरणार्थीप्रियता तथा  
प्रणालन-सत्परता का स्मारक है। पंजाब की रानी को लोग आज तक याद  
करते हैं।

यह वह सीमा है जिससे जातिवाँ, यश के मुनहले निधर भर पहुँचती है।

ये ही घटनाएँ हैं, जिनसे आत्मय इतिहास प्रकाश और महत्त्व को प्राप्त  
होता है।

दो मल्लाह भी कूद पड़े। सबने दुर्बनियाँ मारी, टटोला, पर निर्मला का पत्र न चला। तब डोंगी मेंगवायो गया। मल्लाह न बार बार मोते मारे पर राग हाव न आयो। देवप्रकाश लोक में डूबे हुए घर आये। सत्यप्रकाश किसी उपहार की आशा में दौड़ा। पिता न मात्र म उठा लिया और बड़े यत्न करने पर भी अपनी मिसक का न रोक सके। सत्यप्रकाश ने पूछा—अम्मा कहाँ हैं ?

देव०—बेटा, गया ने उन्हें नेवला माने के लिए राक लिया।

सत्यप्रकाश ने उनके मुख की ओर जिज्ञासुभाव से देखा और आतन सामन गया। अम्मा-अम्मा कह कर रोने लगा।

२

मानुहीन बालक ससार का सबसे कष्टनाशनक प्राणी है। दीन से दीन प्राणिया की भी ईश्वर का आपार इहता है, जो उनके हृदय को सम्हलता रहता है। मानुहीन बालक इस आधार से वंचित होता है। माता ही उसके जीवन का एक मात्र आधार होती है। माता के बिना वह पलहीन पत्थी है।

सत्यप्रकाश को इकांत से प्रेम हो गया। अकेला बैठ रहता। वृद्धा में उसे कुछ-कुछ महानुभूति का अभाव अनुभव होता था, जो घर के प्राणियों में उसे न मिलती थी। माता का प्रेम था, तो सभी प्रेम करते थे, माता का प्रेम उठ गया, तो सभी निष्ठुर हो गये। पिता का आँखा में भी वह प्रेम-व्योति न रही। दखि को कौन भिन्ना देता है ?

छह महीन बान गये। सहसा एक दिन उसे मादूम हुआ, घेटी नये माता आनेवाली है। बीना पिता के पास बसा और पूछा—बस मेरे नयी माता आवेंगी।

पिता ने कहा—हाँ बेटा, वे आ कर तुम्हें प्यार करेंगी।

सत्य०—बस मेरी हो याँ स्वर्ब स आ जायेंगी ?

देव०—हाँ, वही माता आ जायेंगी।

सत्य०—मुझे उसी तरह प्यार करेंगी ?

देवप्रकाश इसका क्या उत्तर देवे ? मगर सत्यप्रकाश उस दिन से प्रसन्नमन रहने लगा। अम्मा आवेंगी ! मुझे गाद ल कर प्यार करेंगी ! अब मैं उन्हें कभी दिक न करूँगा, कभी जिद न करूँगा, उन्हें बज्जो-बज्ज कहानियाँ सुनावा करूँगा।

— विवाह के दिन आये। घर में तैयारियाँ होने लगी। सत्यप्रकाश सुशो से फूला न ममाता। मेरी नयी अम्मा आयेंगी। बारात में वह भी गया। नये-नये कपड़े मिले। पालकी पर बैठा। नानी ने अदर बुलाया और उसे गोद में ले कर एक अर्गलरी दी। वही उसे नयी माता के दर्शन हुए। नानी ने नयी माता से कहा—बेटी, कौसा सुंदर बालक है! इसे प्यार करना।

सत्यप्रकाश ने नयी माता को देखा और मुग्ध हो गया। बच्चे भी रूप के उपासक होते हैं। एक लावण्यमयी मूर्ति आभूषण में लदी मानने लड़ी थी। उसने दोनों हाथों से उसका अंचल पकड़ कर कहा—अम्मा!

कितना अरुचिहर शब्द था, कितना लज्जायुक्त, कितना अग्रिम! वह ललमा जो 'देवप्रिया' नाम से सम्बोधित होती थी, यह उत्तर-दायित्व, त्याग और धर्मा का सम्बोधन न सह सकी। अभी वह प्रेम और विलास का मुसस्वप्न खेल रही थी—शौचकाल की मधमय वायुतरंगों में आदोलित हो रही थी। इस शब्द ने उसके स्वप्न को भंग कर दिया। कुछ रुष्ट हो कर बोली—मुझे अम्मा मत कहो।

सत्यप्रकाश ने चिन्तित नेत्रों से देखा। उसका बालस्वप्न भी भंग हो गया। आँखें डबडबा गयीं। नानी ने कहा—बेटी, बच्चे, लड़के का दिल छोटा हो गया। वह क्या जाने, क्या कहना चाहिए। अम्मा कह दिया तो तुम्हें कौन-सी चोट लग गयी?

देवप्रिया ने कहा—मुझे अम्मा न कहें।

३

सौत का पुत्र विमाता की आँखों में क्यों इतना सदृक्ता है? इसका निर्णय आज तक किसी मनोभाव के पंडित ने नहीं किया। हम क्या गिनती में हैं। देवप्रिया जब तक गभिणी न हुई, वह सत्यप्रकाश से कभी-कभी बातें करती, कहानियाँ सुनाती; किन्तु गभिणी होते ही उसका व्यवहार कठोर हो गया, और प्रेमकाल ज्यों-ज्यों निकट आता था, उसकी कठोरता बढ़ती ही जाती थी। जिस दिन उसकी गोद में एक चांद से बच्चे का आगमन हुआ, सत्यप्रकाश खूब उछल-कूदा और सोरगह में दोड़ा हुआ बच्चे को देखने गया। बच्चा देवप्रिया की गोद में सो रहा था। सत्यप्रकाश ने बड़ी उन्मुक्तता से बच्चे को



विमला की गोद में उठाना चाहा कि महमा देवप्रिया ने सरोजम्बर में कहा—  
खरदार होने मत छूना, नहीं तो कान पचड़ कर उछाड़ लूँगी !

बालक उलटे पाँव खीट जाया और कोठे की छत पर जाकर खुर रोया ।  
कितना मुदर बच्चा है ! मैं उसे गोद में ले कर बैठना, तो क्या मया आया !  
मैं उसे गिराना थोड़ा ही, फिर इन्होंने क्यों मुझे सिद्धक दिया ? भ्राता बालक  
क्या जानता था कि इस भिड़नी का कारण माता की साक्ष्यानी नहीं, कुछ और  
ही है ।

एक दिन शिशु सो रहा था । उसका नाम ज्ञानप्रकाश रखा गया था ।  
देवप्रिया स्नानागार में थी । सत्यप्रकाश बुरके से आया और बच्चे का आभूषण  
हटा कर उसे अनुपममय नेत्रों से देखने लगा । उसका जो कितना चाहा कि  
उसे गोद में ले कर प्यार करे, पर दर के मारे उसने उसे उठाया नहीं, बल्कि  
उसके कपोलों को घूमने लगा । इनमें मैं देवप्रिया निकल जायी । सत्यप्रकाश  
को बच्चे को घूमते देख कर आा हो गयी । दूरे ही से झाँक, हट जा रहा था ।

सत्यप्रकाश माता को दोननेवा से देखा हुआ बाहर निकल आया ।

सत्या समय उसके मित्र ने पूछा—तुम सलता को क्यों बलापा करती हो ?

सत्य०—मैं तो उसे कभी नहीं छूँता । बच्चा बिलाने को नहीं देनी ।

देव०—मूठ बोलते हो । माता तुमने बच्चे को चुटकी काटी ।

सत्य०—जी नहीं । मैं तो उसकी मुँचियाँ से रहा था ।

देव०—मूठ बोलता है !

सत्य०—मैं मूठ नहीं बोलता ।

देवप्रकाश को क्रोध आ गया । उसके को से-जीन लपाने लगाये । पहिली  
बार यह छानना मिली, और निरपराध ! इसने उसके जीवन की बाधापलट  
कर दी ।

४

उस दिन से सत्यप्रकाश के स्वभाव में एक विचित्र परिवर्तन दिखायी देने  
लगा । वह पर में बहुत कम आता । पिता जाने, तो उनसे मुँह छिपाता फिरता ।  
कोई क्षात्रा जाने को बुलाने आया, तो चोरों की भाँति दबकता हुआ जा कर सा  
सेता, न कुछ माँगता, न कुछ बोलता । पहिले बलवत कुशाग्रबुद्धि था ।

उसको सफाई, सलाहों के और फुरतो पर लोग मुग्ध हो जाते थे। अब वह पढ़ने से जी चुराता, मैले-कुचैले कपड़े पहिने रहता। घर में कोई प्रेम करनेवाला न था। बाजार के लडकों के साथ गला-गली घूमता, कनकौवे छूटता, गालियाँ बकना भी सीख गया। शरीर भी दुर्बल हो गया। चेहरे की कांति गायब हो गयी। देवप्रकाश को अब आये-दिन उसकी छरारों के उतहने मिलने लगे और सत्यप्रकाश नित्य घुड़कियों और तमाचे खाने लगा, जहाँ तक कि अगर वह घर में किनी काग से जला जाता, तो सब लोग दूर-दूर करके दौड़ते। ज्ञानप्रकाश को पढ़ाने के लिए मास्टर आता था। देवप्रकाश उसे रोज सैर कराने साथ ले जाते। हंसमुख लड़का था। देवप्रिया उसे सत्यप्रकाश के साथ में भी बचाती रहती थी। दोनों लडकों में कितना अंतर था ! एक साफ सुथरा, सुंदर कपड़े पहिने, खेल और बिनय का पुत्रला, सब बोलनेवाला ! देखनेवालों के मुँह से 'अनायास हो हुआ निकल आता था। दूसरा मैला, नटखट, चोरी का तरह मुँह छिपाये हुए, मुँह-फट, बात-बात पर गालियाँ बकनेवाला। एक हरा-भरा पीधा था, प्रेम से प्लाबित, स्नेह में सिंचित, दूसरा सूखा हुआ, टेढ़ा, परलक्षणीय नववृक्ष था, जिसकी जड़ों की एक मुट्ठी से पानी नहीं गसीब हुआ। एक की देख कर पिता को छाता ठंडा होती थी, दूसरे की देख कर देह में आग लग जाती थी।

५

भारतर्ष यह था कि सत्यप्रकाश को अपने छोटे भाई से लेनामान भी ईर्ष्या न थी। अगर उसके हृदय में कोई कोमल भाव शेष रह गया था; तो वह अपने भाई के प्रति स्नेह था। उस मरुभूमि में यही एक हरियाली थी। ईर्ष्या साम्यभाव की शोचक है। सत्यप्रकाश अपने भाई को अपने से कहीं ऊँचा, कहीं भाग्यशाली समझता था। उसमें ईर्ष्या का भाव हो लौप हो गया था।

मृणा से घृणा उत्पन्न होती है। प्रेम से प्रेम। ज्ञानप्रकाश भी बड़े भाई को चाहता था। कभी-कभी उसका पक्ष ले कर अपनी माँ से वाद-विवाद कर बैठता। कहता, 'भाँपा की अचकन पट कबी है, आप नयी अचकन क्यों नहीं बनवा देती ?' माँ उत्तर देती—उसके लिए बही अचकन अच्छी है। अभी बना, अभी वो वह नंगा फिरेगा। ज्ञानप्रकाश बहुत चाहता था कि अपने जेब-सर्व में

बना कर कुछ अपने भाई को दे पर मन्त्रप्रकाश अभी इसे स्वीकार न करता था। वास्तव में बित्तनी देर वह छाड़ भाई के साथ रहता, उतनी देर उसे एक क्षातिमन आनन्द का अनुभव होता। भाड़ा दर न लिए वह सुदमावा के साम्राज्य में विचरण करता। उनका मुख में चाद नदी और अप्रिय बात न निकलती। एक क्षण के लिए उसकी सोझी हुई आभा जाग उठती।

एक बार कई दिन तक मन्त्रप्रकाश मदरस न गया। पिता ने पूछा—तुम आज्ञाचल पढ़न क्यों नहीं जात ? क्या पाच रखा है कि मैंने तुम्हारी जिदगी दर का ठेका ले रखा है ?

मत्स्य०—मरे ऊपर जुमाने और रोम के बड़े कपड़े हो गये हैं। जाता हूँ ता दरजे से निवान दिया जाता हूँ।

दव०—झीम क्या बाकी है ? तुम तो यहीने-यहीने ले लिया करते हो न ?

मत्स्य०—आधे दिन चदे लगा करने, रोम के कपड़े चदे में दे दिये।

दव०—और जुमाना क्या हुआ ?

मत्स्य०—छोड़ न देने के कारण।

देव०—तुमन चदा क्यों दिया ?

मत्स्य०—जानू ने चदा दिया तो मैं भी दिया।

देव०—तुम जानू से जलते हो ?

मत्स्य०—मैं जानू से क्यों जलने लगा। यहाँ हम और वह दो हैं, बाहर हम और वह एक समझे जाने हैं। मैं यह नहीं कहता चाहता कि मेरे पास कुछ नहीं है।

दव०—करी, यह कहते नाम जानो हैं ?

मत्स्य०—जी हाँ, आपकी बदनामी होगी।

देव०—अच्छा, ता आप भगे मानरणा करते हैं। यह क्यों नहीं कहते कि पढ़ना अब मुझे मजूर नहीं है। पर पाम इनका खया नहीं कि तुम्हें एक-एक मन्त्राव म तीन-तीन साल पढ़ाऊँ और ऊपर से तुम्हारे खर्च के लिए भी प्रतिमास कुछ दूँ। मानवातू तुमसे मिटना छागा है, लेकिन तुमसे एक ही दर्जा नीचे है। तुम इस साल बरहर हो फेल होओगे और वह बरहर ही पास हो कर अगले साल तुम्हारे साथ हो जायगा। तब ता तुम्हारे मुँह में बालिस छगयी ?

सत्य०—विद्या मेरे भाग्य ही में नहीं है।

देव०—तुम्हारे भाग्य में क्या है?

सत्य०—भीख माँगता।

देव०—तो फिर भीख माँगो। मेरे घर से निकल जाओ।

देवप्रिया भी आ गयी। बोली—अरमाता तो नहीं, और बातों का जवाब देता है !

सत्य०—जिनके भाग्य में भीख माँगना होता है, वही यक्षज में अनाथ हो पाते हैं।

देवप्रिया—ये जलो-कटो बातें अब मुझसे न सही जाएँगी। मैं खून का घूँट पी-पी कर रह जाती हूँ।

देवप्रकाश—वेह्या है। बल से इसका नाम कटवा दूँगा। भीख माँगती है तो भीख ही माँगे।

## ६

दूसरे दिन सत्यप्रकाश ने घर से निकलने की तैयारी कर दी। उसकी उम्र अब १६ साल की हो गयी थी। इतनी बातें सुनने के बाद अब उसे उए घर में रहना असह्य हो गया। जब हाथ-पाँव न थे, किशोरावस्था की असमर्थता थी, तब तक अबहेलना, निरादर, निष्ठुरता, अस्मिता सब कुछ सह कर घर में रहता था। अब हाथ-पाँव हो गये थे, उस बंधन में क्यों रहता। आत्माभिमान आशा की भाँति बहुत पिरजीबो होता है।

१० मई के दिन थे। दोपहर का समय। घर के गब प्राणी सो रहे थे। सत्यप्रकाश ने छपती धोती बबल में धबायी, छोटा-सा बैग हाथ में लिया और चाहता था कि चुपके से बैठक से निकल जाय कि जानू ना गया और उसे कहीं जाने को तैयार देख कर बोला—कहाँ जाते हो भैया ?

सत्य०—जहाँ हूँ, कहीं नौकरी करूँगा।

जानू०—मैं जा कर अम्मा से कहे देता हूँ।

सत्य०—तो फिर मैं तुमसे छिपाकर चला जाऊँगा।

जानू०—क्यों चले जाओगे ? तुम्हें मेरी जरा भी मुहब्बत नहीं ?

सत्यप्रकाश ने भाई को गले लगा कर कहा—तुम्हें छोड़ कर जाने को जो तो नहीं चाहता, लेकिन जहाँ कोई पूछनेवाला नहीं है, वहाँ पड़े रहना बेहयाई है। कहीं दम-पोव को नोकरी कर लेंगे और पढ़ पाऊँगा रहूँगा। और किस लायक हूँ ?

ज्ञानू०—तुमसे अच्छी क्या इतना चिन्तितो है ? मुझे तुमसे मिलने को मना किया करनी है।

सत्य०—मेरे नसीब खाटे हैं, और क्या।

ज्ञानू०—तुम लिखने-पढ़ने में जो नहीं लगाते ?

सत्य०—लगाना हो नहीं, कैसे लगाऊँ ? जब कोई परवा नहीं करता तो मैं भी सोचता हूँ—उँह, यहो न होगा, ठोकर खाऊँगा। बला म।

ज्ञानू०—मुझे भूल तो न जाओगे ? मैं तुम्हारे पास खत लिखा करूँगा, मुझे भी एक बार अपने यहाँ बुलाना।

सत्य०—तुम्हारे स्कूल के पते में चिट्ठी लिखूँगा।

ज्ञानू०—( रोते रोते ) मुझ न जाने क्या तुम्हारे यहाँ मुहब्बत सगती है।

सत्य०—मैं तुम्हें सदैव याद रखूँगा।

मह. वह कर उमने फिर भाई को गले से लगाया और घर से निकल पड़ा। पास एक कोढ़ी भी न थी और वह कलकत्ते जा रहा था।

।

७

सत्यप्रकाश कलकत्ते कर्षाकर पहुँचा, इसका वृत्तांत लिखना अर्थ है। युवकों में दुस्साहस की भावा अधिक होती है। वे हवा में किले बना सकते हैं, धरती पर नाव चला सकते हैं। बटियाइयों की उन्हें कुछ परवा नहीं होती। अपने ऊपर असीम विश्वास होता है। बलकत्ते पहुँचना ऐसा बड़े-माध्यम था। सत्यप्रकाश चतुर युवक था। पहिले ही उसने निश्चय कर लिया था कि कलकत्ते में क्या फलेंगे, वहाँ रहूँगा। उसके वेग में लिखने की मानश्री मौजूद थी। बड़े शहर में जीविका का प्रश्न कठिन भी है और सरल भी है। सरल है उनके लिए, जो हाथ से काम कर सकते हैं, कठिन है उनके लिए जो बलम से काम करते हैं। सत्यप्रकाश मजदूरी करना नीच-नाम समझता था। उसने एक धर्म-

शाला में असबाब रखा । बाद में शहर के मुख्य-स्थानों का निरीक्षण करके एक डाकघर के सामने लिखने का सामान ले कर बैठ गया और अपढ़ मजदूरों की चिट्ठियाँ, मनीआर्डर आदि लिखने का व्यवसाय करने लगा । पहले कई दिन तो उसको इतने पैसे भी न मिले कि भर-पेट भोजन करता; लेकिन धीरे-धीरे आमदनी बढ़ने लगी । वह मजदूरों से इतने विनय के साथ बातें करता और उनके समा-चार इतने विस्तार से लिखता कि वम वें पत्र को मुन कर बहुत प्रमत्त होते । जगिन्सित लोग एक ही बात को दो-दो तीन-तीन बार लिखाते हैं । उनकी दया टोक रोगियों की-सी होती है, जो वैद्य में अपनी व्याधा और वेदना का वृत्ताव कहते नहीं सकते । सत्यप्रकाश भूत्र को व्याधा का हप दे कर मजदूरों को मुग्ध कर देता था । एक संतुष्ट हो कर जाता, तो अपने कई अग्र भाइयों को खोज लाता । एक ही महीने में उसे १ रु० रोज मिलने लगा । उसने धर्मशाला से निकल कर शहर से बाहर ५ रु० महोने पर एक छोटी-सी कोठरी से ली । एक जून खाता । बर्तन अपने हाथों में धोता । जमीन पर सोता । उसे अपने निर्धामिन् पर जरा भी खेद और दुःख न था । घर के लोगों की कभी याद न आती । वह अपनी दशा पर संतुष्ट था । केवल ज्ञानप्रकाश की प्रेमयुक्त बातें न भूलती । अंध-कार में यही एक प्रकाश था । बिदाई का अंतिम दृश्य आँखों के सामने फिर करता । जीविका से निर्दिष्ट हो कर उमने ज्ञानप्रकाश को एक पत्र लिखा । उत्तर आया तो उसके आनंद की सीमा न रही । गाँव मुझे याद करके रोता है, मेरे पास आना चाहता है, स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है । व्याध को पानी में जोतुष्टि होती है वही तृप्ति इस पत्र से सत्यप्रकाश को हुई । मैं अकेला नहीं हूँ, कोई मुझे भी चाहता है—मुझे भी याद करता है ।

उसी दिन से सत्यप्रकाश को यह चिन्ता हुई कि ज्ञान के लिए कोई उपहार भेजें । युवकों को मित्र बहुत जल्द मिल जाते हैं । सत्यप्रकाश को भी कई युवकों में मित्रता हो गयी थी । उनके साथ कई बार मिलने-मिलाने गया । कई बार मुँह-भंग, शराब-कवाब की भी टहरी । आर्द्रता, तेल, कधी का तौक भी पैदा हुआ, जो कुछ पाता, उठा देता । बड़े वेग से नैतिक पतन और नारोहिक विनाश की पंर दीक्षा चला जाता था । इस प्रेम-पत्र ने उसके पर पकड़ दिने । उपहार के प्रयास ने इन दुर्गमनों को विरोहित करना शुरू किया । मिलने का बदला

छूटा, मित्रों को होले-हवाले करके टालने लगा। भोजन भी सूखा-सूखा करने लगा। धन-सधन की चिन्ता ने नारो इच्छावा को परास्त कर दिया। उमने निश्चय किया कि एक अच्छे-मी घडो भेजू। उमका दाम कम से कम ५० ह० होगा। अगर तीन महीने तक एक कौड़ी का भी अपव्यय न करें, तो घडी मिल सकती है। जानू घडी देख कर कैसा खुश होगा! बर्मा और बाबू जो भी देखेंगे। उन्हें मालूम हो जायगा कि मैं भूखो नहीं मर रहा हूँ। किछायत की धून में वह बहुत दया-वत्ती भी न करता। बड़े सबेरे काम करने चला जाता और मारे दिन दो-चार पैसे को मिठाई खा कर काम करता रहता। उसके ग्राहकों की सहाय्य दिन-दूनों होती जाती थी। चिट्ठी-पत्रों के अतिरिक्त अब उसने तार लिखने का भी अभ्यास कर लिया था। दो ही महीने में उसके पाम ५० ह० एकत्र हो गये और जब घडो के माय मुनहरो चैन का पारसल बना कर जानू के नाम भेज दिया, तो उमका चित्त इतना उत्साहित था मानो किमा निस्संशय पुरुष के बालक हुआ हो।

८

‘घर’ जितना कोमल, पवित्र, मनोहर स्मृतियों को जागृत कर देता है। यह प्रेम का निवास-स्थान है। प्रेम ने बहुत तपस्या करके यह वरदान पाया है।

क्रिपोपायस्था में ‘घर’ माता पिता, भाई-बहिन, सखी-सहेली के प्रेम का साइ दिलाता है, प्रौढावस्था में गृहिणी और बाल-बच्चों के प्रेम की। यही बर लहर है, जो मानव-जीवन मात्र को स्थिर रखता है, उसे समुद्र की बेगवनी लहरों में बहने और चट्टानों से टकराने से बचाता है। यही वह मन्त्र है, जो जीवन को समस्त विघ्न-बाधाओं से सुरक्षित रखता है।

सत्यप्रकाश का ‘घर’ कहाँ था? वह कौन-सी शक्ति थी, जो कलकत्ते के तिराट प्रलोभनों ने उनकी रक्षा करनी थी?—माता का प्रेम, पिता का स्नेह, बाल-बच्चों की चिन्ता?—नहीं, उनका रक्षक, उद्धारक, उसका परितोषक केवल ज्ञानप्रकाश का स्नेह था। ज्ञान के निमित्त वह एक-एक पैसे को किनामत करता था, उमो के लिए वह कठिन परिश्रम करता था और धनोपाजन के नये-नये उपाय ढाँचता था। उस ज्ञानप्रकाश के पत्रा में मान्य हुआ था कि इन दिनों देवप्रकाश की आर्तिर सिद्धि अच्छी नहीं है। वे एक घर बनवा रहे हैं,

जिसमें म्यम अनुमान से अधिक हो जाने के कारण ऋण लेना पड़ा है, इसलिए अब ज्ञानप्रकाश को पढ़ाने के लिए घर पर मास्टर नहीं आता। तब से सत्यप्रकाश प्रतिमास ज्ञानू के पास कुछ न कुछ अवश्य भेज देता था। वह अब केवल पत्रलेखक न था, लिखने के सामान की एक छोटी-सी दुकान भी उमने खोल ली थी। इससे अच्छी आमदनी हो जाती थी। इस तरह पाँच वर्ष बीत गये। रसिक मित्रों ने अब देखा कि अब यह हत्ये नहीं चढ़ता, तो उसके पास आना-जाना छोड़ दिया।

९

संध्या का समय था। देवप्रकाश अपने मकान में बैठे देवप्रिया से ज्ञानप्रकाश के विवाह के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे। ज्ञानू अब १७ वर्ष का सुंदर युवक था। बालविवाह के विरोधी होने पर भी देवप्रकाश अब इस पुनर्मुहूर्त को न टाल सकते थे। विशेषतः जब कोई महाशय ५,००० रु० दायज देने को प्रस्तुत हो।

देवप्रकाश—मैं तो तैयार हूँ, लेकिन तुम्हारा लड़का भी तो तैयार हो !

देवप्रिया—तुम बातचीत पक्की कर लो, वह तैयार हो ही जायगा। सभी लड़के पहिले 'गद्दी' करते हैं।

देव०—ज्ञानू का इन्कार केवल मंकीब का इन्कार नहीं है, वह सिद्धांत का इन्कार है। वह साफ-साफ कह रहा है कि जब तक भैया का विवाह न होगा, मैं अपना विवाह करने पर राजी नहीं हूँ।

देवप्रिया—उसकी कीमत चलावे, वहाँ कोई रखेली रख लो हांगो, विवाह क्यों करेगा ? वहाँ कोई देखने जाता है ?

देव०—( झुंझला कर ) रखेली रख ली होती तो तुम्हारे लड़के को ४० रु० महीने न भेजता और न वे चीजें ही देता, जो पहिले महीने में अब तक बताकर देता चला आता हूँ। न जाने क्यों तुम्हारा मन उसकी ओर ने इतना मिला हो गया है ! चाहे वह जान निवाल कर भी दे दे, लेकिन गुम न पनीजोगी !

देवप्रिया नागब्र हो कर चली गयी। देवप्रकाश उससे बर्ही चरकता चाहते थे कि पहिले सत्यप्रकाश का विवाह करना उचित है, किन्तु वह अभी इस प्रसंग



को आने ही न देगी थी। स्वयं देवप्रकाश भी यह शक्ति इच्छा थी कि पहिले बड़े लड़के का विवाह करें, पर उन्होंने भी आज तक मत्प्रकाश को कोई पत्र न लिखा था। देवप्रिया के घले जाने के बाद उन्होंने आज पहली बार मत्प्रकाश को पत्र लिखा। पहिले इतने दिनों तक चुपचाप रहने के लिए धमा मींगी, तब उसे एक बार घर आने का प्रेमाग्रह किया। लिगा, अब मैं कुछ हो दिनों का मेहमान हूँ। मेरी अभिलाषा है कि तुम्हारा और तुम्हारे छोटे भाई का विवाह देव लूँ। मुझे बहुत दुःख होगा, यदि तुम मेरी विनय स्वीकार न करोगे। ज्ञानप्रकाश के अवयवन को बात भी लिखी, अतः मैं इस बात पर जोर दिया कि किंगी और विचार में नहीं, तो ज्ञानू के प्रेम के नाते ही तुम्हें इस बचन में पड़ना होगा।

मत्प्रकाश को यह पत्र मिला, तो उसे बहुत खेद हुआ। मेरे भ्रातृलोक का यह परिधान होगा, मुझे न मालूम था इससे भाव ही उसे यह दर्शनात्मक आनंद हुआ कि अम्मा और दादा को अब तो कुछ मानसिक पीडा होगी। मेरी उन्हें क्या चिंता थी? मैं तो मर भी जाऊँ, तो भी उनकी आँखों में आँसू न आवें। उ वषं हो गये, अभी भूल कर भी पत्र न लिखा कि मरा हूँ या जीता हूँ। अब कुछ चेतावनी मिलेगी। ज्ञानप्रकाश अतः मैं विवाह करने पर राजी तो हो ही जायगा, लेकिन सहज में नहीं। कुछ न हो नां मुझे तो एक बार जपन इन्कार के कारण लिखने का अवसर मिला। ज्ञानू को मुमक्ष प्रम है, लेकिन उसके कारण मैं पारिवारिक अन्याय का दोषी न बनूँगा। हमारा पारिवारिक जीवन सम्पूर्णतः अन्यायमय है। यह नृमनि और वैमनस्य, क्रूरता और भूतलगा का बीजारोपण करता है। इसी माया में पंथ कर मनुष्य अपनी मजान का शत्रु हो जाता है। न, मैं आँखों दम कर यह मन्त्रो न निगलूँगा। मैं ज्ञानू को समसाज्जग अवस्थ। मेरे पास जो कुछ जमा है, वह सब उसका विवाह के निमित्त अर्पण भी कर दूँगा। वस, इस ज्वादा में और कुछ नहीं कर सकता। अगर ज्ञानू भी अविवाहित रहे, तो ससार कौन सूना हो जायगा? ऐसे पिता का पुत्र क्या वधपरम्परा का पालन न करेगा? क्या उसका जीवन में फिर वही अनिम्य न दुहराया जायगा, जिसने मेरा सर्वनाश कइ दिया?

दूसरे दिन मत्प्रकाश ने ५०० रु० पिता के पास भेजे और पत्र का उत्तर

लिखा कि मेरा अहोभाग्य जो आपने मुझे याद किया। जानूँ का विवाह निश्चित हो गया, इसकी क्याई ! इन रूपों से नववधू के लिए कोई आभूषण बनवा दीजिएगा। रही मेरे विवाह की बात। मैंने अपनी आँखों से जो कुछ देखा है और मेरे सिर पर जो कुछ बीता है, उस पर ध्यान देते हुए यदि मैं कुटुम्ब-बाग में फँसूँ तो मुझसे बड़ा उल्लू सत्तार में न होगा। मुझे आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। विवाह की चर्चा ही से मेरे हृदय को आपात पहुँचता है।

दूसरा पत्र ज्ञानप्रकाश को लिखा कि भ्राता-पिता को आज्ञा को शिरोधार्य करो। मैं अश्व, मूख, बुद्धि-हीन आदमी हूँ, मुझे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं तुम्हारे विवाह के अभोक्ष्य में सम्मिलित न हो सकूँगा, लेकिन मेरे लिए इससे बढ़ कर भ्रातृ और सत्तार का नियम नहीं हो सकता।

१०

‘देवप्रकाश यह पढ़ कर’ अवाक रह गये। फिर आग्रह करने का साहस न हुआ। देवप्रिया ने आँक लिकोड़ कर कहा—यह लौंछा देखने ही को सोपा है, है जहर का वुसाया हुआ। कौसा सौ कोस से बैठा हुआ वरछियों में घेर रहा है।

किंतु ज्ञानप्रकाश ने यह पत्र पढ़ा, तो उसे घमण्डित पहुँचा। दादा और अम्मा के अन्याय ने ही उन्हें यह भीषण सत धारण करने पर बाध्य किया है। इन्हीं ने उन्हें निर्वासित किया है, और आपदा सदा के लिए। न जाने अम्मा को उनसे क्यों घृणित जलन हुई। मुझे तो अब याद आता है कि किशोरवस्था ही से मे बड़े आभाकारी, विलसति और सम्मोद थे। अम्मा की धार्मी का उन्हें जवाब देते नहीं मृता। मैं अच्छे से अच्छा छाता था, फिर भी उनके ताँवर में न हुए, हालाँकि उन्हें जलना चाहिए था। ऐसी दशा में अगर उन्हें गारंस्प-जीवन न घुणा हो गयी, तो आश्चर्य ही क्या? फिर मैं ही क्यों इन विपत्ति में फँसूँ? कौन जाने मुझे भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़े। भैया ने बहुत सोच समझ कर यह धारणा की है।

संध्या समय जब उसके माता-पिता बैठे हुए इसी समस्या पर विचार कर रहे थे, ज्ञानप्रकाश ने आ कर कहा—मैं कल यैसा से मिलने जाऊँगा।

देवप्रिया—नया कलकत्ते जाओगे?

ज्ञान०—जी हाँ।

को जाने ही न देती थी। स्वयं देवप्रकाश की यह हार्दिक इच्छा थी कि पहिले बड़ लड़के का विवाह करें, पर उन्होंने भी आज तक सत्यप्रकाश को कोई पत्र न लिखा था। देवप्रिया के चले जाने के बाद उन्होंने आज पहली बार सत्यप्रकाश को पत्र लिखा। पहिले इतने दिनों तक चुपचाप रहने के लिए धमा मीठी, तब उसे एक बार घर आने का प्रेमाग्रह किया। लिखा, अब मैं कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ। यही अभिलाषा है कि तुम्हारा और तुम्हारे छोटे भाई का विवाह देख लूँ। मुझे बहुत दुःख होगा, यदि तुम मेरी विनय स्वीकार न करोगे। ज्ञानप्रकाश के अमङ्गल को बात भी लिखी, अंत में इस बात पर जोर दिया कि किसी और विचार में नहीं, तो ज्ञानू के प्रेम के नाते ही तुम्हें इस बात में सहना होगा।

सत्यप्रकाश को यह पत्र मिला, तो उसे बहुत खेद हुआ। मेरी भ्रातृस्नेह का यह परिणाम होगा, मुझे न मालूम था इसके साथ ही उसे यह ईर्ष्यामय भावद हुआ कि जम्मा और दादा को अब तो कुछ मानसिक पीड़ा होगी। मेरी उन्हें क्या चिंता थी? मैं तो मर भी जाऊँ, तो भी उनकी आँखों में आँसू न आयें ७ वर्ष हो गये, अभी भूल कर भी पत्र न लिखा कि मरा हूँ या जीता हूँ। अब कुछ चेतावनी मिलेगी। ज्ञानप्रकाश अंत में विवाह करने पर राजी तो हो ही जायगा, लेकिन महज में नहीं। कुछ न हो तो मुझे तो एक बार जपन इन्वार के कारण लिखने का अवसर मिला। ज्ञानू को मुझसे प्रेम है, लेकिन उसके कारण मैं पारिवारिक अभ्यास का दोषी न बनूँगा। हमारा पारिवारिक जीवन सम्पूर्णतः अनाथमय है। वह कुमति और वैमनस्य, क्रूरता और नृशंसता का बीजारोपण करता है। इसी भाँदा मैं पैसे कर मनुष्य अपनी सत्ता का दाव्य हो जाता है। न, मैं आँखों दम कर यह भक्तों न निगलूँगा। मैं ज्ञानू को समझाऊँगा अवश्य। मेरे पास जो कुछ बचा है, वह सब उसके विवाह के निमित्त अर्पण भी कर दूँगा। वस, इससे ज्यादा मैं और कुछ नहीं कर सकता। अगर ज्ञानू भी अक्रिय रहें, तो संसार कौन मूना हो जायगा? ऐसे पिता का पुत्र क्या बलापरम्परा का पालन न करेगा? क्या उसके जीवन में फिर वही अनिन्द्य न दुहराया जायगा, जिसने मेरा सर्वनाश कर दिया?

दूजरे दिन सत्यप्रकाश ने ५०० रु० पिता के पास भेजे और पत्र का उत्तर

लिखा कि मेरा अहोभाग्य जो आपने भूते पाद किया। जानू का विवाह निश्चित हो गया, इनको बधाई। इन शपथों से नववधू के लिए कोई आभूषण बनवा बीजिएगा। रही मेरे विवाह की बात। मैंने अपनी आँखों में जो कुछ देखा है और मेरे सिर पर जो कुछ बोला है, उस पर ध्यान देते हुए यदि मैं कुटुम्ब-पाश में फँसूँ तो मुझसे बड़ा उल्लू ससार में न होगा। मुझे माया है, आप मुझे क्षमा करेंगे। विवाह की वर्षा हो से मेरे हृदय को आघात पहुँचता है।

दूसरा पत्र ज्ञानप्रकाश को लिखा कि माता-पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करो। मैं अगढ़, मूर्ख, बुद्धि-हीन आदमी हूँ, मुझे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं तुम्हारे विवाह के शुभोत्सव में सम्मिलित न हो सकूँगा, लेकिन मेरे लिए इससे बड़ कर आनंद और संतोष का विषय नहीं हो सकता।

१०

‘देवप्रकाश यह पढ़ कर’ अवाक रह गये। फिर आग्रह करने का साहस न हुआ। देवप्रिया ने नाक मिकोड कर कहा—यह लोहा देवने ही को सीधा है, है जहर का पुषारा हुआ। कंता लो कोत से बँटा हुआ बरछियों में छेद रहा है।

किमु ज्ञानप्रकाश ने यह पत्र पढ़ा, लो उसे मर्माघात पहुँचा। दादा और अम्मा के अन्याय ने ही उन्हें यह भीषण बत धारण करने पर बाध्य किया है। इसी ने उन्हें निर्बलित किया है, और छायद सदा के लिए। न जाने अम्मा को उनमें क्यों इतनी जलन हुई। मुझे तो अब याद आता है कि किरीटावस्था ही से वे बड़े आत्माकारों, विनमयीक और सम्मोद थे। अम्मा की बातों का उन्हें जवाब देते नहीं मुना। मैं अच्छे से अच्छा छाता था, फिर भी उनके तोपर भैले न हुए, हालाँकि उन्हें जलना चाहिए था। ऐसी दम में अचर उन्हें गार्हस्थ्य-जीवन में घुना हो गयी, तो आश्चर्य ही क्या? फिर मैं ही क्यों इस विपत्ति में फँसूँ? कौन जाने मुझे भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़े। भैया ने बहुत तोच समझ कर वह धारणा की है।

संख्या समय जब उसके माता-पिता बँटे हुए इसी समस्या पर विचार कर रहे थे, ज्ञानप्रकाश ने आ कर कहा—मैं कल यैया से मिलने जाऊँगा।

देवप्रिया—बया कलकत्ते जाओगे?

ज्ञान०—जी हाँ। . . .

देवप्रिया—उन्ही की क्यों नहीं बुलाते ?

ज्ञान०—उन्हें कौन मुँह ले कर बुलाऊँ ? आप लोगो ने तो पहिले ही मेरे मुँह में कालिख लगा दी है । ऐसा देव-पूषण आप लोगो के कारण विदेश में ठोकर खा रहा है और मैं इतना निलम्ब हो जाऊँ कि

देवप्रिया—अच्छा चुप रह, नहीं ब्याह करना है, न कर, जले पर लोन मत छिड़क ! माता-पिता का धर्म है, इसलिए कहतो हूँ, नहीं तो यहाँ ठेमे का परवा नहीं है । तू चाहे ब्याह कर, चाहे क्वारा रह, पर मेरी आँखों से दूर हो जा ।

ज्ञान०—क्या मेरी मूर्त से भी घृणा हो गयी ?

देवप्रिया—जब तू हमारे कहने ही में नहीं, तो जहाँ चाहे, रह । हम भी समझ लेंगे कि भगवान् ने सटका हो नहीं दिया ।

देव०—क्यों व्यर्थ मैं ऐसे कटुवचन बोलती हूँ ?

ज्ञान०—अगर आप लोगो की यही इच्छा है, तो यही होगा । देवप्रकाश ने देखा कि शात का बतगढ़ टूटा चाहता है, तो ज्ञानप्रकाश को इशारे से टाल दिया और पत्नी के क्रोध को शात करने की चेष्टा करने लगे । मगर देवप्रिया फूट-फूट कर रो रही थी और बार-बार कहती थी, मैं इसकी मूर्त न देखूँगी । अतः मैं देवप्रकाश ने किड कर कहा—तो तुम्हीं ने तो कटुवचन कह कर उसे उसेजित फल लिया ।

देवप्रिया—यह सब विष उमी पागल ने बोया है, जो यहाँ से साठ समुद्र पार बँटा हुआ झुंम मिट्टी में मिलाने का उपाय कर रहा है । मेरे बेटे को मुझमें छीनने ही के लिए उसने यह प्रेम का स्वाग भरा है । मैं उसकी नस-नस परि-धानती हूँ । उसका यह मंत्र मेरी जान ले कर छोड़ेगा, नहीं तो मेरा जान, जिसने कभी मेरी बात का जवाब नहीं दिया, वो मुझे न जलाता ।

देव०—अरे, तो क्या वह विवाह ही न करेगा ! अभी गुस्से में अनाप-मनाप बक गया है । जरा शात हो जायगा तो मैं नमस्ता कर राजी कर दूँगा ।

देवप्रिया—मेरे हाथ से निकल गया ।

देवप्रिया की आत्मका सत्य निकली । देवप्रकाश ने बेटे को बहुत समझाया । कहा—तुम्हारी माता इस शोक से मर जायगी, किन्तु कुछ असर न हुआ । उसने एव बार 'नहीं' करके 'हाँ' न की । निश्चय पिता भी विरासत हो कर बँट रहे ।

तीन साल तक प्रतिवर्ष विवाह के दिनों में वह प्रसन्न उठता रहा, पर ज्ञान-प्रकाश अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहा। माता का रोना-धोना निष्पत्त हुआ—हाँ, उसने माता की एक बात मान ली—वह भाई से मिलने कलकत्ता न गया।

तीन साल में घर में बड़ा परिवर्तन हो गया। देवप्रिया की तीनों कन्याओं का विवाह हो गया। अब घर में उसके निवा कोई स्त्री न थी। सूना घर उसे पाने लाता था। जब वह नैराश और क्रोध से घागल हो जाती, तो सत्यप्रकाश को झूठ भी भर कर कोसती। मगर दोनों भाइयों में प्रेम-वश-व्यवहार बराबर होता रहता था।

देवप्रिया के स्वभाव में एक विचित्र उदासीनता प्रकट होने लगी। उन्होंने पेंशन ले ली थी और प्रायः धर्मग्रंथों का अध्ययन किया करते थे। ज्ञानप्रकाश ने भी 'आचार्य' की उपाधि प्राप्त कर ली थी और एक विद्यालय में अध्यापक हो गये थे। देवप्रिया अब संसार में अकेली थी।

देवप्रिया अपने पुत्र की गृहस्त्री की ओर खींचने के लिए निरन्तर टोने-ढोढ़के किया करती। विराटरी में कौन-सी कन्या मुंदरी है, गुणवती है, सुसिद्धिता है—उसका बखान किया करती, पर ज्ञानप्रकाश को इन बातों के सुनने की भी फुरसत न थी।

मोहल्ले के और घरों में निरन्तर ही विवाह होते रहते थे। बहुएँ आती थीं, उनकी गोद में बच्चे खेलने लगते थे, घर खुलवार हो जाता था। कहीं बिदाई होती थी, कहीं बधाइयाँ आती थीं, कहीं गाना-बजाना होता था, कहीं बान्ने बजते थे। यह बहल-पहल देख कर देवप्रिया का चित्त चंचल हो जाता। उसे मालूम होता, मैं ही संसार में सबसे अभागिनी हूँ। मेरे ही भाग्य में यह सुख भागता नहीं बड़ा है। भगवान्, ऐसा भी कोई दिन आयेगा कि मैं अपनी बहू का मुखचंद्र देखूँगी, उनके बालकों को गोद में खिलाऊँगी। वह भी कोई दिन होगा कि मेरे घर में भी आनंदोत्सव के मधुर गान की लहरें उठेंगी। रात-दिन में ही चार्तें खींचने-भोचने देवप्रिया की दशा उन्मादिली की-सी हो गयी। आप ही आप सत्यप्रकाश की कोमलता लगी। यही मेरे प्राणों का घायक है। तरलमनता उन्माद का प्रधान गुण है। तल्लीनता अत्यंत रचनाशील होती है। वह आचार्य में-देवतानी के विमान उड़ाने लगती है। अगर भोजन में नमक सेज हो गया

तो यह शत्रु ने कोई रोड़ा रख दिया होगा। दक्षिणा को अब कभी-कभी धोला हो जाता कि सत्यप्रकाश घर में आ गया है, वह मुझे मानना चाहता है, ज्ञानप्रकाश को क्या दिखाये दता है। एक दिन उसने सत्यप्रकाश के नाम एक पत्र लिखा और उसे जितना कोसत बना, उतना बोसा। नू मेरे प्राणा का बैरी है, मेरे पुत्र का घातक है, हत्याकांड है। वह बीस दिन जानता कि तेरी मिट्टी उठेगी। नूने मेरे लङ्का पर धमकीकरण-पत्र चला दिया है। दूसरे दिन फिर ऐसा ही एक पत्र लिखा। यहाँ तक कि यह उसका निर्य का वर्म हो गया। जब तक एक चिट्ठी में सत्यप्रकाश का नाकिली न दे लेंगे, उन चैन हो न जाना था। इन पत्रों की वह बहाने के हाथ शत्रुपर निजवा दिया करना थी।

११

ज्ञानप्रकाश का अध्यापन होना सत्यप्रकाश के लिए घातक हो गया। परदेस में उसे यही सतोष था कि मैं ममार के निराधार नहीं हूँ। अब यह अवलम्ब भी जाना रहा। ज्ञानप्रकाश ने जोर दे कर लिया, अब आप मेरे हेतु कोई बह न उठाये। मुझे अपनी गुजर करने के लिए काफी स ज्यादा मिलने लगा है।

यद्यपि सत्यप्रकाश की दूकान खूब चलती थी, लेकिन बलरत्ने-जैसे तहर में एक छोटे-से दूकानदार का जीवन बहुत सुखी नहीं होता। १०-३० ६० की मासिक आमदनी होती ही क्या है? अब तक वह जो कुछ बचाना था, वह वास्तव में बचत न थी, बरिफ़ टयाग था। एक बस्त टाया-गुस्ता खा कर, एक सग भाई कोटरी में रह कर २५-३० ६० बच रहते थे। अब दोना बस्त भोजन करने लगा। कपड़े भी जरा साफ पहिनने लगा। मगर छोटे ही दिनों में उसके खर्च में आपधियों की एक मत्र बढ़ गयी और फिर वही पहिने बो-भो दशा हो गयी। चरमों तक मुद्र बायु, प्रकाश और पुष्टिकर भाजन में बचित रह कर अच्छे से अच्छा स्वास्थ्य भी नष्ट हो गयता है। सत्यप्रकाश को भी अरुचि, मंदाग्नि आदि रोगा बं आ पंरा। कभी-कभी ज्वर भी आ जाता। यज्ञवस्था में आत्मविश्वास होता है, किन्ती अवलम्ब की परवा नहीं होती। वयोवृद्धि दूसरों का मुँह तावती है, आश्रय हँदती है। सत्यप्रकाश पहिने सोता, तो एक ही करवट सबेरा हो जाता। कभी बाजार में पूरियाँ ले कर ला लेता, कभी मिठाइयों पर टाल दता। पर अब रात को अच्छी तरह नीद न आती, बाजारी भोजन से पूना

होती, रात को घर आता, तो थक कर चूर-चूर हो जाता था। उस वक्त बूढ़ा जलाना, भोजन पकाना बहुत अखरता। कभी-कभी वह अपने अकेलेपन पर रोता। रात को जब किसी तरह नींद न आती, तो उसका मन किसी से बातें करने की लालायित होने लगता। पर वहाँ निषाधकार के सिवा और कौन था ? दीवालों के कान चाहे हों, सुँह नहीं होता। इधर ज्ञानप्रकाश के पत्र भी अब कम आते थे और वे भी रुले। उनमें अब हृदय के सरल उद्गारों का लेश भी न होता था। सत्यप्रकाश अब तो वैसे ही भावमय पत्र लिखता था; पर एक सम्पादक के लिए भावुकता कब जीभा देती है ? जर्न-जनैः सत्यप्रकाश को भ्रम होने लगा कि ज्ञानप्रकाश भी मुझसे निष्ठुरता करने लगा, नहीं तो क्या मेरे पाग दो-चार दिन के लिए आका असम्भव था ? मेरे लिए तो घर का द्वार बंद है, पर उसे कौन-सी बाधा है ? उस गरीब को क्या मालूम कि यहाँ ज्ञानप्रकाश ने मातृ से कलकत्ते न जाने को कथन खा लो है। इन भ्रम ने उसे और भी हताश कर दिया।

राहों में मनुष्य बहुत होते हैं, पर मनुष्यता विरले ही में होती है। सत्य-प्रकाश उस बहुसंख्यक स्थान में भी अकेला था। उसके मन में अब एक नयी आकांक्षा अंकुरित हुई। क्यों न घर लौट चलूँ ? किसी संगिनी के प्रेम में क्यों न शरण लूँ ? वह गुल और छाति और कहीं मिल सकती है। मेरे जीवन के निराशापकार को और कौन ज्योति आलोकित कर सकती है ? वह इस आशेन को अपनी सम्पूर्ण विचारशक्ति से रोकता, पर जिस भाँति किसी बालक को पर में एसी हुई मिठाइयों की याद बार-बार खेल से घर लीच लाती है, उसी तरह उसका चित्त भी बार-बार उन्ही मधुर निताभी में मग्न हो जाता था। यह सोचता— मुझे विधाता ने तब मुझ से वचित कर दिया है, नहीं तो मेरी दशा ऐसी हीन क्यों होती ? मुझे ईश्वर ने बुद्धि न दी थी क्या ? क्या मैं भ्रम में जो चुराता था ? अगर बालपन ही में मेरे उल्लाह और अभिरुचि पर तृपारन पड़ गया होता, मेरी बुद्धि-शक्तियों का गला न घोट दिया गया होता, तो मैं आज आदमी होता। पेट पालने के लिए इस विदेश में न पड़ा रहता। वहीं, मैं अपने ऊपर यह अत्याचार न करूँगा।

महीनों तक सत्यप्रकाश के मन और बुद्धि में यह संघाम होता रहा। एक



दिन बढ़ दूरान से आ कर चून्हा जगने आ रहा था कि आँखों ने पुराण ।  
 ज्ञानप्रकाश के सिवा उनके पास और किसी के पत्र न आते थे । आज ही उसका  
 पत्र आ चुका था । यह दूसरा पत्र था । जिसमें अनिष्ट की भावना हुई । पत्र  
 में कर पढ़ने लगा । एक क्षण में पत्र उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ा और वह  
 गिर थाप कर बैठ गया कि जमोत पर न गिर पड़े । यह देवप्रिया को विपमुक्त  
 लिखनी में निकला हुआ जहर का प्याला था, जिसमें एक पत्र में गंगाहीन कर  
 दिया । उसकी गहरी मनोनिष्ठ व्याख्या—क्रोध, ईर्ष्या, ईदधता, शक्ति—केवल  
 एक ठही मोस में समाप्त हो गयी ।

वह आ कर बारसाई पर लेट रहा । मानसिक व्याख्या आज से पानी हों गयी ।  
 हा ! साध जीवन नष्ट हो गया । मैं ज्ञानप्रकाश का धनु हूँ । मैं इनने दिनों से  
 केवल उनके जीवन की मिट्टी में मिटाने के लिए ही प्रेम का स्त्री भर रहा हूँ ।  
 भवान् ! इसके तुम्ही माओ हो ।

तीसरे दिन फिर देवप्रिया का पत्र पहुँचा । सत्यप्रकाश ने उसे ले कर फाड़  
 डाला, पढ़ने की हिम्मत न पड़ी

एक ही दिन पीछे तीसरा पत्र पहुँचा । उसका वही अर्थ हुआ । फिर वह  
 एक लिप्य का पर्न हो गया । पत्र आता और फाड़ दिया जाता । किन्तु देवप्रिया  
 का अभिप्राय बिना पड़े ही पुरा हो जाता था—सत्यप्रकाश के भ्रमस्थान पर एक  
 चोट और पड़ जाती थी ।

एक महीने की भौण हार्दिक वेदना के बाद सत्यप्रकाश को जीवन से  
 घृणा हो गयी । उसने दूरान बढ़ कर दी, बाहर आना-जाना छाड़ दिया ।  
 मारे दिन ग्याट पर पड़ा रहता । वह दिन रात जाने जब माता पुषकार कर  
 मोद में बिठा लेती और कहती, 'बेटा !' पिता जी मध्याह्नक समय दरबार में जा कर  
 मोद में उठा लेते और कहते 'नैया !' माता की मज्जीव मूर्ति उसके सामने आ  
 खड़ी होती, ठीक वैसी ही अब वह गया-स्नान करने गयी थी । उसको ध्यान-  
 भरी बातें बाना में आने लगती । फिर वह दुःख सामने आ जाता, जब उसने  
 नखबू माता को 'अम्मा' कह कर पुकारा था । तब उसके कठोर शब्द याद आ  
 जाते, उसके क्रोध से भरे हुए विकृत नेत्र आँखा के सामने आ जाते । उसे  
 अब अपना सिसक-सिसक कर रोना याद आ जाता । फिर धीरे-धीरे का दुःख

सामने आता । उसने कितने प्रेम से बच्चे को गोद में लेना चाहा था ! तब माता के बच्चे केसे शब्द कानों में गूँजने लगते । शाय ! उम्मी बच्चे ने मेरा सर्वनाम कर दिया ! फिर ऐसी कितनी ही पटवाएँ याद आती । जब बिना किसी अपराध के माँ डाँट बतاتی । पिता का निर्दय, निष्ठुर व्यवहार याद आने लगता । उनका बात बात पर तितरिबौ बदलना, माता के भिम्यापवादों पर विश्वास करना—दाय ! मेरा मारा जीवन नष्ट हो गया ! तब वह करवट बदल लेता और फिर वही दुष्ट भाँति में फिरने लगते । फिर करवट बदलता और चिल्ला कर कहता—इस जीवन का अंत क्यों नहीं हो जाता ।

इस भ्रांति पड़े-पड़े उसे कई दिन हो गये । गंघ्या हो गयी थी कि सहसा चमे द्वार पर किसी के पुकारने की आवाज सुनायी गयी । उसने कान लगा कर सुना और चौंक पड़ा । किसी परिचित मनुष्य की आवाज थी । बोझ द्वार पर आया, चौ बेला, शानप्रकाश सड़ा है । कितना कणवान् पुरुष था । वह उसके गले से लिपट गया । शानप्रकाश ने उसके पैरों को स्पर्श किया । बोली भाई घर में आये । अयकार छाया हुआ था । घर की यह दशा देख कर शानप्रकाश जो अब तक अपने कंठ के आघेग की रोके हुए था, रो पड़ा । सत्यप्रकाश ने सासटन जलायी । घर क्या था, भूत का डेरा था । सत्यप्रकाश ने बन्दी में एक कुरता गले में डाल लिया । शानप्रकाश भाई का जर्जर शरीर, पोखा मुख, बुझी हुई आँखें देखता था और रोता था ।

सत्यप्रकाश ने कहा—मैं आजकल बीमार हूँ ।

शानप्रकाश—वह तो देख ही रहा हूँ ।

सत्य०—तुमने अपने आने की सूचना भी न दी, मकान का पता कैसे पता ?

शान०—सूचना तो दी थी आपको पत्र न मिला होगा

सत्य०—अच्छ, हाँ बी होसी, पत्र दुकान में डाल गया होगा । मैं इधर कई दिनों से दुकान नहीं गया । घर पर सब कुपन्न है ?

शान०—माता जी का देहाव हो गया ।

सत्य०—अरे ! क्या बीमार थी ?

शान०—थी नहीं । मालूम नहीं, क्या खा लिया । इधर उन्हें उन्मार-गा हो गया था । पिता जी ने कुछ कटुवचन कहे थे, सायद इसी पर कुछ खा लिया ।

सत्य०—पिता जो तो कुशल ने है ?

ज्ञान०—हाँ, अभी मरे नहीं है ।

सत्य०—अरे ! क्या बहुत बीमार है ?

ज्ञान०—माता ने बिप खा लिया, तो वे उनका मुँह माल कर दबा पिना रहे थे । माता जो ने जोर म उनकी दो उँगलियाँ काट लीं । वह बिप उनके शरीर में पहुँच गया । तब म सारा शरीर मूज आया है । अस्पताल में भड़े हुए हैं, किन्ती को देखते हैं ता वाटने दोड़ते हैं । बचने को आजा नहीं है ।

सत्य०—तब तो घर हो चौपट हो गया !

ज्ञान०—ऐसे घर को अबस बहुत पहिले चौपट हो जाना चाहिए था ।

\*

\*

\*

तीसरे दिन दोना भाई ज्ञान कान बनकते से बिदा हो कर चउ दिमें ।

---

## धोखा

सतीकुंड में खिले हुए कमल वसंत के धीमे-धीमे शोकों से लहरा रहे थे और प्रातःकाल की मंद-मंद सुनहरी किरणें उनसे मिल-मिल कर मूरक-पाती थीं। राजकुमारी प्रभा कुंड के किनारे हरो-हरो पास पर खड़ी मुंदर पक्षियों का कलरव सुन रही थी। उसका कनक-वर्ण तन इन्हीं फूलों की भाँति दमक रहा था। मेलों प्रभात की साक्षात् नौम्य सुवि है, ओ भगवान् अंगुनाली की विरण-करीं द्वारा निर्मित हुई थी।

प्रभा ने मीलसिरी के वृक्ष पर बैठी हुई एक दयामा की ओर देख कर कहा— मेरा भी चाहता है कि मैं भी एक पिडिया होती।

उसकी महेली उमा ने मुरकवा कर पूछा—वह क्यों ?

प्रभा ने कुंड की ओर ताकते हुए उत्तर दिया—वृक्ष की हरी-भरी डालियों पर बैठी हुई चहचहाती, मेरे कलरव से सारा बाग गुँज उठता।

उमा ने छेड़ कर कहा—नीगड की रानी ऐसी कितने ही पक्षियों का गाना जब चाहे, सुन सकती है।

—प्रभा ने संतुषित हो कर कहा—मुझे नीगड की रानी बनने की अभिलाषा नहीं है। मेरे लिए किसी नदी का सुनसान किनारा चाहिए। एक घीणा और ऐसे ही मुंदर मुहावने पक्षियों की संगीत। मधुर प्बनि में मेरे लिए मारे मसार का ऐदवर्न भरा हुआ है।

प्रभा का संगीत पर अपरिमित प्रेम था। वह बहुधा ऐसे ही मुर-स्वप्न देखा करती थी। उमा उत्तर देना ही चाहती थी कि इतने में बाहर से किसी के गाने की आवाज आयी—

कर गये घोड़े दिन की प्रीति।

प्रभा ने एकदम मन हो कर मुना और अपौर हो कर कहा—बहिन, इस चागो में जादू है। मुझे अब बिना मुझे नहीं रखा जाता, इसे भीतर बुला लाओ।

उस पर भी गीत का जादू कमर बर रहा था। वह बोली—नि गदह  
ऐना राग मैने आज तक नही सुना बिडको गाल कर दुलारी हूँ।

गोदी दर में राखिया नीलर आग—तुम्हें नज़ीब बदन का नौबवान था।  
नो पैर, नगे मिर, कब पर एग मयचम शरीर पर एक मेहजा वस्त्र, हाथ  
में एक सितार। मुखारबिद से नेत्र छिटक रहा था। उठने दबी हुई दृष्टि में  
धाना कामलागो रमनिया का दवा और मिर मुका कर बैठ गया।

प्रभा ने मिस्रकतो हुई आँखा से देखा और दृष्टि मोची कर ली। उमा ने  
बहा—मोमो जी, हमार बडे भाग्य ये कि आपके दर्शन हुए, हमका नो कोई  
पद मुना कर कृतार्थ कोयिए।

योगी ने मिर मुका कर उत्तर दिया—हम मोमो कोय नारायण का भजन  
करत हैं। ऐसे-ऐसे दरबारो में हम भला क्या ना मक्ते हैं, पर आपसी इच्छा  
है ता मुनिए—

कर गये थोडे दिन की प्रीति।

कहाँ वह प्रीति कहाँ यह बिछरन, कहाँ मधुवन को रोति,  
कर गये थोडे दिन की प्रीति।

योगी का रसीला करण स्वर, मितार का मुमबुर मिलाद, उस पर गीत का  
मानुष्य, प्रभा को बेमुघ किये दला था। इनका रम्य स्वभाव और उसका मधुर  
रसीला गान, अप्रुव सयोग था। जिस भाँति मितार की ध्वनि गगनमडल में  
प्रतिध्वनित हो रही थी, उन्ही भाँति प्रभा के हृदय में लहरों की हिलोरें उठ  
रही थीं। वे भावनाएँ जो जब तक शांत थी, जाग उठी। हृदय मुख-स्वप्न  
देवने लगा। सतीबुड के कमल तिलिस्म की परिचा बन-बन कर मेहराबे हुए  
भीरा त कर जोड सबल नयन हो, बहते थे—

कर गये थोडे दिन की प्रीति

तुर्ब जार हठी पतिया न लरो हुई डालियाँ मिर मुदाये चहकते हुए  
पतियो से रो-रो कर बहती थीं—

कर गये थोडे दिन की प्रीति

और राजकुमारी प्रभा का हृदय भी सितार की मस्तानी तान के साथ  
गूँजता था—

कर गये थोडे दिन की प्रीति

प्रभा वगौली के राव देवोचद की एकलौती कन्या थी। राव पुराने विचारों के रईम थे। कृष्ण की उपासना में लज्जलीन रहते थे, इसलिए इनके दरबार में दूर-दूर के कलावंत और गवैये आया करते और इनाम-एकराम पाते थे। रावसाहब को गाने से प्रेम था, वे स्वयं भी इस विद्या में निपुण थे। यद्यपि अब बृद्धावस्था के कारण यह शक्ति निःशेष हो चली थी, पर फिर भी इस विद्या के गूढ़ तत्त्वों के पूर्ण ज्ञानकार थे। प्रभा बाल्य-काल से ही इनकी सोहबती में बैठने लगी। कुछ तो पूर्व-जन्म का संस्कार और कुछ रात-दिन गाने की ही चर्चाओं ने उन्हें भी इस फन में अनुरक्त कर दिया था। इस समय उसके सौंदर्य को मूढ़ चर्चा थी। रावसाहब ने नौबट के नवयुवक और सुशील राजा हरिश्चंद्र से उसकी शादी तजबीज की थी। उभय पक्ष में सयारियाँ हो रही थी। राजा हरिश्चंद्र मेयाँ कालिज अजमेर के निधार्थी और नयी रोसानी के भक्त थे। उनको आकांक्षा थी कि उन्हें एक बार राजकुमारी प्रभा से साक्षात्कार होने और प्रमालाप करने का अवसर दिया जाये; किंतु रावसाहब इस प्रथा को दूषित समझते थे।

प्रभा राजा हरिश्चंद्र के नवीन विचारों की चर्चा सुन कर इस संबंध से बहुत संतुष्ट न थी। पर जब से उसने इस प्रेममय युवा, योगी का गाना सुना था, तब से तो वह उसी के ध्यान में डूबी रहती। उमा उसकी सहेली थी। इन दोनों के बीच कोई परदा न था; परंतु इस भेद को प्रभा ने उससे भी गुप्त रखा। उमा उसके स्वभाव से परिचित थी, ताड़ गयी। परंतु उसने उपदेश करके इस भक्ति को भड़काना उचित न समझा। उसने सोचा कि थोड़े दिनों में यह अग्नि आप में आप श्राव हो जायगी। ऐसी लाकृतार्थी का धत प्रायः इसी तरह हो जाया करता है; किंतु उनका अनुमान बल्लभ सिद्ध हुआ। योगी को वह मोहिनी मूर्ति कभी प्रभा की आँखों से न उतरती, उसका मधुर राग प्रतिक्षण उसके कानों में गूँजा करता। उसी फुंड के किनारे वह तिर मुकाने सारे दिन बंठी रहती। कल्पना में वही मधुर हृदयशाही राग मुनती और वही योगी की मनोहारिणी मूर्ति देखती। कभी-कभी उसे ऐसा भाव होता कि वे यह आवाज आ-गयी है। वह चौंक पड़ती और तुष्णा से प्रेरित हो

की चहार-दीवारी तक जानी और वहाँ में निराश हो कर लौट आती । फिर आर हो त्रिचार करनी—यह मेरी क्या दशा है ! मुझे यह क्या हो गया है ! मैं हिंदू बन्या हूँ, माता-पिता जिसे मौन दे, उनकी दासी बन कर रहना मेरा धर्म है । मुझे तन-मन से उनकी सेवा करनी चाहिए । किसी अन्य पुरुष का ध्यान तक मन में लाना मेरे लिए पाप है । आह ! यह बलुपित हृदय ले कर मैं किन मुँह में पति के पाम जाऊँगी ! इन वाना बगैर प्रणय की वार्ते मुन मकूँगी जो मेरे लिए अग्न में भी जलिक कण-कटु होगी । इन पापी नेत्रों में वह प्यारो-प्यारी चित्रवन कैसे देख सकूँगी जो मेरे लिए बस स भी हृदय-भेदी होगी । इस गले में वे मृदुल प्रेमवाह पड़ने जो लोह-दंड में भी अधिक भारी और बढोर होंगे । प्यारे, तुम मेरे हृदय मंदिर से निजल जाओ । यह स्थान तुम्हारे योग्य नहीं । मेरा बस होना तो तुम्हें हृदय की संज्ञ पर मुन्वाती, परंतु मैं धर्म की रस्त्रियों में बंधी हूँ ।

• इस तरह एक महीना बीत गया । ग्राह के दिन निकट आते जाते थे और प्रभा का कमल मा मुख बुझलाया जाता था । कभी-कभी विरहवेदना एवं त्रिचार-विप्लव से व्याकुल हो कर उसका चित्त चाहता कि मत्ती-नुड की गोद में शानति लूँ, किंतु राजमाहव इस शोक में जान ही दे देंगे, यह विचार कर वह एक जानी । सोचती, मैं उनकी जीवन सर्वस्व हूँ, मुझ अभागिनी को उन्होंने किन साह-भार से पाला है, मैं ही उनके जीवन का आधार और अतकाल की आशा हूँ । नहीं, जो प्राण दे कर उनकी आशाओं की हत्या न करूँगी । मेरे हृदय पर चाहे जो बीते, उन्हें न दुःखाऊँगी । प्रभा का एक योगी गवैने के पीछे उन्मत्त हो जाना कुछ शोभा नहीं देता । योगी का मान तानसेन के मानों से भी अधिक मनोहर क्यों न हो, पर एक राजकुमारी का उसके हाथों विक्रि जाना हृदय की दुर्बलता प्रकट करता है ; किंतु राजमाहव के दरबार में विद्या की, शौर्य की और वीरता से प्राण हुवन करने की चर्चा न थी । यहाँ तो रात-दिन राग-रग की धूम रहती थी । यहाँ इनो शास्त्र के आचार्य प्रतिष्ठा के समनद पर विराजित थे और उन्हीं पर प्रशंसा के बहुमूल्य रत्न लुटाये जाते थे । प्रभा ने प्रारम्भ ही में इसी अलवायु का सेवन किया था और उस पर इनका गाथा रम चढ़ गया था । ऐसी अवस्था में उन्हींको मान-लिप्ता ने यदि भोषण रूप धारण कर लिया तो आश्चर्य ही क्या है !

३

साथी बड़ी भूमिगत से हुई । राजासाहब ने प्रभा को बत्ते लगा कर बिना किया । प्रभा बहुत रोयी । उमा को वह किसी तरह छोड़ती न थी ।

नौगढ़ एक बड़ी रियासत थी और राजा हरिश्चंद्र के सुप्रबध से उन्नति पर थी । प्रभा की सेवा के लिए दामियो की एक पूरी फौज थी । उसके रहने के लिए वह आनन्द-भवन बनाया गया था, जिसके बनाने में शिल्प विस्तारदों ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया था । शूमार चतुरासी ने दुलहिन को खूब सँभाला । रसीले राजासाहब अथरामृत के लिए विह्वल हो रहे थे । अंतःपुर में गये । प्रभा ने हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर, उनका अभिवादन किया । उसकी आँखों से आँसू की नदी बह रही थी । पति ने प्रेम के मद में मत्त हो कर घुँघट हटा दिया, दीपक था पर पुझा हुआ । फूल था, पर मुरझाया हुआ ।

दूगरे दिन से राजासाहब की यह दशा हुई कि भीरे की तरह प्रतिभग्न हम फूल पर मँड़राया करते । न राज-भाट की चिंता थी, न सैर और शिकार की परवा । प्रभा को माणो रसीला राग थी, उसकी चितवन मुत का सागर भीर उसका मुख-चंद्र आमोद का मुहावना कुंज । वस, प्रेम-मद में राजसाहब बिलकुल मत्तवाले हो गये थे, उन्हें क्या मालूम था कि रूप में भवतो है ।

यह असम्भव था, कि राजासाहब के हृदय-हारी और सरस व्यवहार का जिसमें सच्चा अनुराग बरा हुआ था, प्रभा पर कोई प्रभाव न पड़ता । प्रेम का प्रकाश अंधेरे हृदय को भी चमका देता है । प्रभा मन में बहुत मग्नित होती । वह अपने को इस निर्मल और विमृष्ट प्रेम के योग्य न पाती थी, हम, पवित्र प्रेम के बदले में उसे अपने कृत्रिम, रंगे हुए भाव प्रकट करते हुए मानसिक कष्ट होया था । जब तक कि राजासाहब उसके साथ रहते, वह उनके गले लता की भाँति लिपटी हुई घंटो प्रेम को बाँतें किया करती । वह उनके साथ मुमनू-यादिन में जुड़ करती, उनके लिए फूलों का हार गुँथती और उनके गले में हाथ डाल कर कहती—प्यारे, देखना ये फूल मुरझा न जायें, इन्हें मुझ ताजा रखना, वह चाँदनी रात में उनके माथ माथ पर बँड कर खोप को सँभालती, और उन्हें प्रेम का राग सुनाती । यदि उन्हें बाहर में जाने में जरा भी देर हो जाती, तो वह मीठा-मीठा उछाहना देती, उन्हें निर्दय तथा निन्दुर कहती ।



उनके मापने वह स्वयं हँसती, उसकी आँखें हँसती और आँखों का काजल हँसता था। किन्तु आह ! जब वह अकेली होती, उसका चंचल चित्त उड़ कर उसी कुंड के उठ पर जा पहुँचता, कुंड का वह नीला-नीला पानी, उस पर तैरते हुए कमल और मौलनरो की वृक्षपक्तियों का सुंदर दृश्य आँखों के सामने आ जाता। उमा मुस्कराती और नज़ाकत से खचकती हुई आ पहुँचती, तब रमिले योगी की मोहनी छवि आँखों में आ बैठती और सितार के मुरसिल मुर गूँजने लगते—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति

तब वह एक दीर्घ निश्वास ले कर उठ बैठनी और बाहर निकल कर पित्ररे में चहकते हुए पक्षियों के कलरव में स्पर्श प्राप्त करती। इस भाँति यह स्वप्न विरोहित हो जाता।

४

इस तरह कई महीने बीत गये। एक दिन राजा हरिश्चंद्र प्रभा की अपनी चित्रशाला में ले गये। उसके प्रथम भाग में ऐतिहासिक चित्र थे। सामने ही दूर-बीर महापणा प्रतापसिंह का चित्र नज़र आया। मुखारविंद से बीरता की ग्योति स्फुटित हो रही थी। तनिक और आगे बढ़ कर दाहिनी ओर स्वामिभक्त जगमल, बीरवर साँगा और दिलेर दुर्गादास विराजमान थे। बायीं ओर उदार भीमसिंह बैठे हुए थे। राजाप्रताप के सम्मुख महापद्मकेसरी बीर शिवाजी का चित्र था। दूसरे भाग में कर्मयोगी कृष्ण और मर्यादा पुष्पोत्तम राम विराजते थे। चतुर चित्रकारों ने चित्र-निर्माण में अपूर्व कौशल दिखलाया था। प्रभा ने प्रताप के पाद-पद्मों की चूमा और यह कृष्ण के मामले देर तक नेत्रों में प्रेम और थड़ा के आँसू-भरे मस्तक झुकाये खड़ी रही। उसके हृदय पर इस समय कलुषित प्रेम का भय खटक रहा था। उसे मालूम होता था कि यह उन महापुरुषों के चित्र नहीं, उनकी पवित्र आत्माएँ हैं। उन्हीं के चरित्र से भारतवर्ष का इतिहास गौरवान्वित है। वे भारत के बहुमूल्य जातीय रत्न, उच्चकोटि के जातीय स्मारक और गगन-भेदी जातीय तुमुल ध्वनि हैं। ऐसी उच्च आत्माओं के सामने खड़े होते उसे संकोच होता था। आगे वही दूसरा भाग सामने आया। यहाँ ज्ञानमय बुद्ध योग-साधन में बैठे हुए देख पड़े। उनकी दाहिनी ओर ग्रास्त्रज धरु थे और दाय-

निक दयानंद । एक ओर ज्ञातिपथगामी कबीर और भक्त रामदास यथायोग्य सहे थे । एक दीवार पर गुरु गोविंद अपने देश और ज्ञाति पर बलि चढ़ानेवाले दोनों बच्चों के साथ विराजमान थे । दूसरी दीवार पर नैदात की ज्योति फैलानेवाले स्वामी रामतीर्थ और विवेकानंद विराजमान थे । चित्रकारी की योग्यता एक-एक अवयव से टपकती थी । प्रभा ने इनके चरणों पर मस्तक टेका । पद उनके सामने सिर न उठा सकी । उसे अनुभव होता था कि उनकी दिव्य आँखें उसके वृषित हृदय में चुभो जाती हैं ?

इसके बाद तीसरा भाग आया । वह प्रतिमाशाली कवियों की सभा थी । मर्योच्च स्थान पर आदिकवि बालमीकि और महर्षि वेदव्यास सुशोभित थे । बाहिनी और भृगाररम के अद्वितीय कवि कालिदास थे, बायीं तरफ गम्भीर भावी से पूर्ण भवभूति । निकट ही भर्तृहरि अपने सतोपाश्रम में बैठे हुए थे ।

दक्षिण की दीवार पर राष्ट्रभाषा हिंदी के कवियों का सम्मेलन था । सहस्रय कवि मूर, तेजस्वी तुलसी, मुकुवि केसव और रसिक विहारी यथाक्रम विराजमान थे । मूरदास से प्रभा का अगाध प्रेम था । वह समीप जा कर उनके चरणों पर मस्तक रखता ही चाहती थी कि अकस्मात् उन्हीं चरणों के सम्मुख सर झुकाये उस एक छोटा-सा चित्र दीख पड़ा । प्रभा उसे देख कर चौंक पड़ी । यह वही चित्र था जो उसके हृदय पट पर लिखा हुआ था । वह खुल कर उसकी तरफ शक्त न सका । दबी हुई आँखों से देखने लगा । राजा हरिदत्त ने मुस्करा कर पूछा—इस व्यक्ति को तुमने कदो देखा है ?

इस प्रश्न से प्रभा का हृदय काँप उठा । जिस तरह मृग-शायक व्याघ्र के सामने व्याकुल हो कर इपर-उपर देखता है, उसी तरह प्रभा अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से दीवार की ओर स्तब्ध लगी । सोचने लगी—क्या उत्तर दूँ ? इसको कहीं देखा है, उन्होंने यह प्रश्न मुझसे क्यों किया ? कहीं साइ तो नहीं गये ? है नाट्यगण, मेरी पत तुम्हारे हाथ है, क्योंकर इनकार करूँ ? मुँह पीला हो गया । सिर झुका कर लीज स्वर से बोली—

‘हाँ, ध्यान आता है कि कहीं देखा है ।’

हरिदत्त ने कहा—कहाँ देखा है ?

प्रभा के सिर में चक्कर-मा आने लगा । बोली—शायद एक बार यह गाँव

हुआ मेरी वाटिका के सामने जा रहा था। उमा ने बुला कर अपना गाना सुनाया।

हरिश्चन्द्र ने पूछा—कैसा गाना था ?

प्रभा के होंठ उड़े हुए थे। मोचड़ी बी, राजा के इन सवालियों में जरूर कोई बात है। देखो, लाज रहनी है या नहीं। बोली—उमका गाना ऐसा बुरा न था।

हरिश्चन्द्र ने मुस्करा कर कहा—क्या गाता था ?

प्रभा ने मोचा, इस प्रश्न का उत्तर दे दूँ तो बाकी क्या रहता है। उसे विवश हो गया कि भाव कुचल नहीं है। वह छः को धीरे निरतनी हुई बोली—मूरदास का कोई पद था।

हरिश्चन्द्र ने कहा—यह तो नहीं—

कर गये छोटे दिन की प्रीति ?

प्रभा को जीलों के सामने जैपेरा छा गया। सिर घूमते लगा, वह लड़ो न रह सकी, बैठ गयी और हठास हो कर बोली—हाँ, यही पद था। फिर उसने कलंजा मजबूत करके पूछा—आपको कैसा मालूम हुआ ?

हरिश्चन्द्र बोले—यह योनी मेरे यहाँ अक्सर आया-जाया करता है। मुझे भी उसका गाना पसंद है। उसी ने मुझे यह हाल बताया था, किंतु यह तो कहता था कि राजकुमारों ने मेरे गानों को बहुत पसंद किया और पुनः भान के लिए आदेश दिया।

प्रभा को भव मुग्धा क्रोध दिमाने का अवसर मिल गया। वह बिगड़ कर बोली—यह बिलकुल झूठ है। मैंने उससे कुछ नहीं कहा—

हरिश्चन्द्र बोले—यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि यह उन महात्म्य की चालाकी है। डींग मारना गर्वियों की आदत है, परंतु इसमें तो तुम्हें इनकार नहीं कि उसका गान बुरा न था ?

प्रभा बोली—ना ! अच्छी चीज को बुरी क्यों कहें ?

हरिश्चन्द्र ने पूछा—फिर सुनना चाहो तो उसे बुलवाओ। गिर के बल रोड़ा आवेगा।

‘क्या उनके दर्शन फिर होंगे ?’ इस आशा ने प्रभा का मुखमंडल विकसित हो गया। परंतु इन कई महीनों की लगातार क्रोधित से जिस बात को भुलाने

मे वह किंचित् सफल हो चुकी थी, उसके फिर नवीन हो जाने का भय हुआ ।  
बोली—इस समय गाना सुनने को मेरा जो नहीं चाहता ।

राजा ने कहा—यह मैं न मानूँगा कि तुम और गाना नहीं सुनना चाहती,  
मैं उसे अभी बुलाये लाता हूँ ।

यह कह कर राजा हरिचंद्र तीर की तरह कमरे में बाहर निकल गये । प्रभा  
उन्हें रोक न सकी । वह बड़ी चिंता में टूबी लगी थी । हृदय में मुरी और  
रंज की लहरें धारी-धारी में उठनी थीं । मुदितल से दस मिनट बीते होंगे कि  
उसे सितार के मस्ताने सुर के साथ योगी की रसीली तान सुनायी दी—

कर गये बोडे दिन की प्रोति

वही हृदय-प्राही राग था, वही हृदय-भेदी प्रभाव, वही मनोहरता और वही  
मधु कुछ, जो मन को मोह लेता है । सण-एक में योगी की मोहिनी मूर्ति दिखायी  
दी । वही मस्तानासन, वही मतवाले नेत्र, वही नयनानिराम देवताओं का सा  
स्वरूप । मुखमण्डल पर मद-मद मुस्कान थी । प्रभा ने उसकी तरफ महमी हुई  
आँखों में देखा । एकाएक उसका हृदय उछल पड़ा । उसकी बाँलों के आगे से  
एक पर्दा हट गया । प्रेम-विह्वल हो, आँखों में आँसू भरे वह अपने पति के चरण-  
रविदों पर गिर पड़ी और गद्गद कंठ से बोली—प्यारे ! प्रियतम !

राजा हरिचंद्र को आज मन्वी विजय प्राप्त हुई । उन्होंने प्रभा को उठा  
कर छाती से लगा लिया । दोनों आज एक प्राण हो गये । राजा हरिचंद्र ने  
कहा—जानती हो, मैंने यह स्थापन क्यों रचा था ? याने का मुझे सदा से ध्यान  
है और मुना है तुम्हें भी इसका शौक है । मुझे अपना हृदय भेंट करने से प्रथम  
एक बार तुम्हारा दर्शन करना आवश्यक प्रतीत हुआ और उसके लिए सबसे  
सुगम उपाय यही मूझ पड़ा ।

प्रभा ने अनुराग में देव कर कहा—योगी बन कर तुमने जो कुछ पा लिया,  
वह राजा रह कर कदापि न पा सकते । अब तुम मेरे पति हो और प्रियतम भी  
हो, पर तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया और मेरी आत्मा को कलकित किया ।  
इसका उत्तरदाता कौन होगा ?

## लग-डार

जाखू भगत और बेचन चौधरी में तीन पीढ़ियों से अदावत चली आती थी।

कुछ डाढ़-मेंड़ का झगडा था। उनके परदादो में कई बार छून-धुन्वर हुआ। बापों के समय से मुकदमेवाजी शुरू हुई। दोनों कई बार हाईकोर्ट तक गये। लड़कों के समय में सभ्राम की भीषणता और भी बढ़ी, यहाँ तक कि दोनों ही अशक्त हो गये। पहले दोनों इसी गाँव में आधे-आधे के हिस्सेदार थे। अब उनके पाम उस झगड़ेवाले खेत को छोड़ कर एक अगुल जमीन न थी भूमि गयी, धन गया, मान-मर्यादा गया, लेकिन वह विवाद ज्यों का त्यों बना रहा। हाईकोर्ट के धुरधर भीतिज एक मामूली-सा झगड़ा तय न कर सके।

इन दोनों सज्जनों ने गाँव को दो विरोधी दलों में विभक्त कर दिया था। एक दल को भग-बूटी चौधरी के द्वार पर छतती, तो दूसरे दल के चरस-गाँजे के दम भगत के द्वार पर लगते थे। स्त्रियों और बालकों के भी दल हो गये थे। यहाँ तक कि दोनों सज्जनों के सामाजिक और धार्मिक विचारों में भी विभाजक रेखा खिंची हुई थी चौधरी कपड़े पहने सतू खा लेते और भगत को ढोगी कहते। भगत बिना कपड़े उतारे पानी भी न पीते और चौधरी को भ्रष्ट बतलाने। भगत मनातनधर्मी बने तो चौधरी ने आर्यसम्पन्न का आश्रय लिया। जिस ब्रजान, पन्धरी या कुँजड़े से चौधरी सौदे रेंते उसकी ओर भगत जी साकना भी पाप समझते थे और भगत जी के हलवाई की मिठाइयाँ, उनके त्वाले का दूध और तेली का तेल चौधरी के लिए त्याग्य थे। यहाँ तक कि उनके आरोग्यता के सिद्धांतों में भी भिन्नता थी। भगत जी वैद्यक के कायल थे, चौधरी यूनानी प्रथा के माननेवाले। दोनों चाहे रोम से मर जाने, पर अपने सिद्धांतों को न तोड़ते।

जब देश में राजनैतिक आंदोलन शुरू हुआ तो उसकी भक्त उस गाँव में आ पहुँची। चौधरी ने आंदोलन का पक्ष लिया, भगत उनके विपक्षी हो गये।

एक सज्जन ने आ कर गाँव में किसान-सभा खोली । चौधरी उसमें शरीक हुए, भगत बल्लभ रहे । जागृति और वृद्धी, स्वराज्य की चर्चा होने लगी । चौधरी स्व-राज्यवादी हो गये, भगत ने राजभक्ति का पक्ष लिया । चौधरी का घर स्वराज्य-वादिनों का अड्डा हो गया, भगत का घर राजभक्तों का बलब बन गया ।

चौधरी जनता में स्वराज्यवाद का प्रचार करने लगे —

“मित्रो, स्वराज्य का अर्थ है अपना राज । अपने देश में अपना राज हो वह अच्छा है कि किसी दूसरे का राज हो वह ?”

जनता ने कहा—अपना राज हो, वह अच्छा है ।

चौधरी—तो यह स्वराज्य कैसे मिलेगा ? आत्मबल से, पुरुषार्थ से, मेल से, एक दूसरे से द्वेष करना छोड़ दो । अपने लगने आर मिल कर निपटो लो ।

एक शका—आप तो नित्य अदालत में लड़े रहते हैं ।

चौधरी—हा, पर आज से अदालत जार्ज तो मुझे बऊहस्या का पाप लगे । तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी गाड़ी कमाई अपने बाल-बच्चों को खिलाओ, और बचे लो परोपकार में लगाओ, बकील-मुस्तफारों की जेब क्यों भरते हो, धानंशर की धूम क्यों बेंते हो, अमलों की चिरोरी क्यों करते हो ? पहले हमारे लटके अपने धर्म की शिक्षा पाते थे, वह सदाचारी, त्यागी, पुरुषार्थी बनते थे । अब वह बिदेसी मदरसों में पढ़ कर चाकरी करते हैं, घूस पाते हैं, धौक करते हैं, अपने देवताओं और पित्रों की निंदा करते हैं, सिगरेट पीते हैं, बाल बनाने हैं और हाकिमों को गोइबरिया करते हैं । क्या यह हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकों का पर्मानुसार शिक्षा दें ?

जनता—बंदा करके पाठबाला खोलनी चाहिए ।

चौधरी—हम पहले मदिरा का सूना पाप समझते थे । अब गाँव-गाँव और गली-गली में मदिरा की दुकानें हैं । हम अपनी गाड़ी कमाई के करोड़ों रुपये गाँज-साराब में उड़ा देते हैं ।

जनता—जो दारु-भांग पिये उसे डाँड़ लगाना चाहिए !

चौधरी—हमारे, दादा-बाबा, छोटे-बड़े सब गाँव-गँजी पहलते थे । हमारे दादियाँ-नानियाँ चरखा काता करती थी । सब धन देश में रहता था, हमारे जुलाहे भाई जैन की बसी बनाते थे । अब हम बिदेस के बने हुए महीन रंग-

कण्डो पर जान देते हैं। इस तरह दूसरे देववाले हमारा घन हो ले जाते हैं, बेचारे जुलाहे कगाल हो गये। क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयों को थाली छोन कर दूसरों के सामने रख दें ?

जनता—गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं।

चौधरो—अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतों को लागो, नरोबाजी छोड़ो, अपने लड़कों को धर्म-कर्म सिखाओ, मेल से रहो—ब्रम, यही स्वराज्य है। जो लोग कहते हैं कि स्वराज्य के लिए खून की नदी बहेगी, वे पागल हैं—उनकी बातों पर ध्यान मत दो।

जनता यह बातें बड़े चाव से सुनती थी। दिनों-दिन धोताओ की संख्या बढ़ती जाती थी। चौधरो के सब श्रद्धाभाजन बन गये।

३

भगन जी भी राजभक्ति का उपदेश करने लगे—

“भाइयों, राजा का काम राज करना और प्रजा का काम उसकी आज्ञा का पालन करना है। इसी को राजभक्ति कहते हैं। और हमारे धार्मिक ग्रंथों में हमें इसी राजभक्ति की शिक्षा दी गयी है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है, उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलना महान पापक है। राजविमुख प्राणी नरक का भागी होता है।”

एक घका—राजा को भी तो अपने धर्म का पालन करना चाहिए ?

दूसरी घका—हमारे राजा तो नाम के हैं, असली राजा तो बिलायत के बनिये-महाजन हैं।

तीसरी घका—बनिये धन कमाता जानते हैं, राज करना क्या जानें।

भगन—लोग तुम्हें शिक्षा देते हैं कि अदालतों में मत जाओ, पंचायतों में मुकदमों ले जाओ; लेकिन ऐसे पंच कहीं हैं, जो नच्चा न्याय करें, दूध का दूध और पानी का पानी कर दें ! यहाँ मुँह-झेली बातें होंगी। जिनका कुछ दबाव है, उनकी जीत होगी, जिनका कुछ दबाव नहीं है, वह बेचारे मारे जायेंगे। अदालतों में सब कारवाई कानून पर होती है, वहाँ छोटे-बड़े सब बराबर हैं, धीर-बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं।

दूसरी घका—अदालतों का न्याय कहने ही को है, जिनके नाश बने हुए

गवाह और दाव-पंच खेले हुए वकील होते हैं, उद्योग की जीत होती है, झूठे-सच्चे की परख कौन करता है ? हाँ, हैरानी बलवत्ता होती है ।

भगत—कहा जाता है कि विदेशी चीजों का व्यवहार मत करो । यह गरीबों के साथ घोर अन्याय है । हमको बाजार में जो चीज सरती और अच्छी मिले, वह लेना चाहिए । चाहे स्वदेशी हो या विदेशी । हमारा पैसा मँत में नहीं आता है कि उसे रद्दी-भद्दी स्वदेशी चीजों पर फेंकें ।

एक शंका—अपने देश में तो ख़ूब हैं, दूसरों के हाथ में तो नहीं जाता ।

दूसरी शंका—अपने घर में अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियों के घर का अच्छा भोजन खाने लगेंगे ?

भगत—लोग कहते हैं, लडकों को सरकारी मदरसों में भर्त भेजो । सरकारी मदरसे में न पढ़ते तो आज हमारे भाई बड़ो-बड़ो नौकरियाँ कैसे पाते, बड़े-बड़े कारखाने कैसे बना लेंते ? बिना नयी विद्या पढ़े अब ससार में निबाह नहीं हो सकता, पुरानी विद्या पढ़ कर पना देखने और कया बचने के सिवाय और क्या आता है ? राज काज क्या पढ़ी-पोसी बाननेवाले लोग करेंगे ?

एक शंका—हमें राज-काज न चाहिए । हम अपनी खेती-बाड़ी ही में मग्न हैं, किसी के गुलाम तो नहीं ।

दूसरी शंका—जो विद्या घमंडी बना दे, उससे मूरख ही अच्छा, यही नयी विद्या पढ़ कर तो लोग भूट-भूट, घडी-छडी, हूट-कूट लगाने लगते हैं और अपने शोक के पीछे देश का धन विदेशियों की जेब में भरते हैं । ये देश के हीरो हैं ।

भगत—गाँजा-धराब की ओर जायकल लोगों की कड़ी निगाह है । मछा बुरी खत है, इसे सब जानते हैं । सरकार को नये को दूकानों से करोड़ों रुपये माल की आमदनी होती है । अगर दूकानों में न जाने में लोगों की नये को लत छूट जाय तो बड़ी अच्छी बात है । वह दूकान पर न जायगा तो चोटे-छिने किसी न किसी तरह दूने-चौगुने दाम दे कर, सब्जी काटने पर तैयार हो कर, अपनी लत पूरी करेगा । तो ऐसा काम क्यों करो कि सरकार का नुकसान जलग हो, और गरीब रैयत का नुकसान अन्ध हो । और फिर किसी-किसी को मछा खाने से कायदा होता है । मैं ही एक दिन अफ़ोम न मारें तो गाँडों में दर्द होने लगे, दम उखड़ जाय और सरखी पकड़ ले ।



एक आवाज—गराब पीने में बदन में फुलों का जन्म है।

एक दाका—सरकार अयम ने खया कमाती है। उने यह उचित नहीं।

अचर्मी के राज में रह कर प्रवा का कल्याण कैसे हो सकता है ?

दूसरी संका—गहने दाक पिता कर पावन बना दिया। तन पड़ी तो पने की बात हुई। इतनी मजूरी किमका मिलती है कि रोटो-कपडा भी बसे और दाक-गराब भी उडे ? या तो बाल-बच्चों को भूखा मारी या चोरी करे; जुआ खेलें और बेईमानी करो। गराब को दूबान क्या है ? हमारी गुलाबी ना भूना है।

## ४

चौधरी के उपदेश सुनने के लिए जनता दूटती थी। लोगों को पड़े होने की जगह न मिलती। दिनां-दिन चौधरी का मान बढ़ने लगा। उनके यहाँ नित्य पचासती की, राष्ट्रोत्पत्ति की वर्षा रहती, जगता को इन बातों में बड़ा आनंद और उत्साह होता। उनके राजनैतिक ज्ञान की वृद्धि होती। वह अपना गौरव और महत्व भूमिमाने लगे, उन्हें अपनी सत्ता का अनुभव होने लगा। निरकुशता और अज्ञान पर अब उनकी विश्रिष्ट चढ़ने लगी। उन्हें स्वतन्त्रता का स्वाद मिला। घर की रई, घर का मूठ, घर का कपडा, घर का भोजन, घर को अवाकत, न पुलिस का भय, न अमला की खुशामद, मुग और साठि से जावन अगतो करने लगे। किन्ना हो ने नसीवाजी छोड़ दी और मद्नाबी को एक लहर-सी दोड़ने लगी।

लेकिन भगत जी इतने भाव्यशाली न थे। जनता को दिनां-दिन उनके उपदेशों में अरुचि होती जाती थी। यहाँ तक कि बहूधा उनके श्रोताओं में पटवारी, चौकीदार, मुंडरिय और इन्ही कर्मचारियों के मित्रों के अतिरिक्त और कोई न होता था। कबो-कबो बड़े हाकिम भी आ निकलते और भगत जी का बड़ा आदर-भक्तार करते। जरा देर के लिए भगत जी के आंगू पंछ जाते; लेकिन क्षण भर का सम्मान जाते पहर के आमान की बराबरी कैसे करता ! अघर निकल जाते उबर ही उँगलियाँ उठने लगतीं। कोई कहना, खुशामदी टट्टू है, कोई कहना, खुफिया पुलिस का भेदी है। भगत जी अपने प्रतिद्वंद्वी की बड़ाई और अपनी लोकविश्व पर दाँव पोम-पीछ कर रह जाते थे। जीवन में यह

पहला हां अवसर था कि उन्हें सबके सामने नीचा देखना पड़ा। चिरकाल से जिस कुल-मर्यादा की रक्षा करते जाये थे और जिस पर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे, वह धूल में मिल गयी। वह दाहमय चिन्ता उन्हें एक क्षण के लिए चैन न लेने देती। निरत्य समस्या सामने रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्योंकर पाऊँ, अपने प्रतिशतो को क्योंकर पददलित करूँ, कैसे उसका गहरा तोड़ूँ ?

अंत में उन्होंने मिह को उसी की माँ में ही पछाड़ने का निश्चय किया।

५

मध्या का समय था। चौबरो के द्वार पर एक बड़ी मभा हो रही थी। आम-पान के गाँवों के किसान भी आ गये थे, हजारों आश्रमियों की भीड़ थी। चौबरो उन्हें स्वराज्य-विषयक उपदेश दे रहे थे। बार-बार भासमाता की जय-जयकार की ध्वनि उठती थी। एक ओर स्त्रियों का जमाव था। चौबरो ने अपना उपदेश समाप्त किया और अपनी जगह पर बैठे। स्वयं-सेवकों ने स्वराज्य कंड के लिए चंदा जमा करना शुरू किया कि इतने में भगत जी न जाने किधर से लपके हुए भाये और श्रोताओं के सामने खड़े हो कर उच्च स्वर में बोले—

"भाइयो, मुझे यहाँ देख कर अचरज मत करो, मैं स्वराज्य का विरोधी नहीं हूँ। ऐसा पतित कर्म प्राणी होगा जो स्वराज्य का निन्दक हो; लेकिन इसके प्राप्त करने का वह उपाय नहीं है जो चौबरो ने बतलाया है और जिस पर मुन खोग लट्टू हो रहे हो। जब भारत में फूट और रार है, तो पचायती में क्या होगा ? जब विलासिता का भूत तिर पर मबार है तो मजा कैसे छूटेगा; मरिग की दुकानों का वहिष्कार कैसे होगा ? मिगरेट, साबुन, भोजे, बनिपान, जदी, तंजेव से कैसे पिंड छूटेगा ? जब रोव और हुकूमत की लालसा पनो हुई है तो सरकारों मवसे कैसे छोड़ो, विजर्भो मिशा को बंदी में कैसे मुन हो सकोगे ? स्वराज्य लेने का केवल एक ही उपाय है और वह बहम-अर्पण है। यही महोपधि तुम्हारे गमस्त रोवो को ममुख नष्ट करेगी। आत्मा को बलवान् बनाओ, द्रिय को नाओ, मन को बस में करो, तुममें भानुमान पैदा होगा,

तभी बैमनस्य मिटेगा, तभी ईर्ष्या और द्वेष का नाश होगा; तभी भोग-विलास से मन हटेगा, तभी नरीवाजी का दमन होगा। आत्मबल के बिना स्वराज्य कभी उपलब्ध न होगा। स्वयंसेवा सब पापों का मूल है, यही तुम्हें अदालतों में ले जाता है, यह तुम्हें विषयी शिक्षा का दाम बनाये हुए है। इस पिशाच को आत्मबल से मारो और तुम्हारे कामना पूरी हो जानगी। सब जानते हैं, मैं ४० माल के अश्वों का सेवन करता हूँ। आज से मैं अश्वों को गऊ का रक्त ममलता हूँ। चौधरी से मेरे तीन पीढ़ियों की अशक्त है। आज से चौधरी मेरे भाई है। आज मुझे या मेरे घर के किसी प्राणी को घर के कंठे मूत्र से बुलें हुए कपड़े के सिवाय कुछ जोर पहनते देना तो मुझे जो दंड चाहो, दो। वम मुझे यही कहना है, परमात्मा हम सबकी इच्छा पूरी करे।”

यह कह कर भगत जी घर की ओर चले कि चौधरी दौड़ कर उनके गले में लिट गये। तीन पुत्रों की अशक्त एक क्षण में क्षान्त हो गयी।

उस दिन से चौधरी और भगत साथ-साथ स्वराज्य का उपदेश करने लगे। उनमें गहरी मित्रता हो गयी और यह निश्चय करना कठिन था कि दोनों में जूनता किसका अधिक सम्मान करती है।

प्रसिद्धिना वह चिनगारी थी जिसने दोनों पुरुषों के हृदय-शीतल को प्रकाशित कर दिया था।

## अमावस्या की रात्रि

दिवाली की संझा थी। दीनदत्त के घुरों और खंडहरों के भी भाग्य चमक उठे थे। बस्त्रों के लड़के और लड़कियाँ खेत धालियों में दीपक लिये मंदिर की ओर जा रही थी। दीपों से उनके मुखार्चिद प्रकाशमान थे। प्रत्येक गृह रोगीनी से जगमगा रहा था। केवल पंडित देवदत्त का सतधरा भवन काली घटा के अंधकार में गंभीर और भयंकर रूप में खड़ा था। गंभीर इसलिए कि उसे अपनी उन्नति के दिन भूले न थे, भयंकर इसलिए कि यह जगमगाहट मानो उसे चिढ़ा रही थी। एक समय वह था जब कि ईर्ष्या भी उसे देख-देख कर हाथ मलती थी और एक समय यह है जब कि घृणा भी उस पर कटाक्ष करती है। द्वार पर द्वारपाल की जगह अब मशर और एरंड के वृक्ष खड़े थे। दीवानखाने में एक मतंग मांड अफइठा था। ऊपर के घरो में जहाँ सुंदर रमणियाँ मनोहर संगीत गाती थी, वहाँ आज जंगली कबूतरों के मधुर स्वर सुनायी देते थे। किमी अँगरेजी मस्टरने के विद्यार्थी के आचरण की भाँति उसको जड़ें हिल गयी थीं और उसकी दोधारें किसी विषया स्त्री के हृदय की भाँति विदीर्ण हो रही थीं, पर समय को हम कुछ नहीं कह सकते। समय की निंदा व्यर्थ और भूल है, यह मूर्खता और अनुरक्षिता का फल था।

अमावस्या की रात्रि थी। प्रकाश से पराजित हो कर मानो अंधकार ने उसी विशाल भवन में शरण ली थी। पंडित देवदत्त अपने अर्द्ध अंधकारवाले कमरे में मौन, परंतु चिंता में निमग्न थे। आज एक महीने से उनकी पत्नी गिरिजा की जिंदगी को निर्दय काल ने खिलवाड़ बना लिया है। पंडित जो दक्षिण और दुःख को मुगतने के लिए तैयार थे। भाग्य का भरोसा उन्हें प्यरे बँपाता था; किन्तु यह नयी विपत्ति सहन-शक्ति से बाहर थी। बिनारे दिन के दिन गिरिजा के सिरहाने बैठ के उसके मुखामे हुए मुख को देख कर कुढ़ने और रोते थे। गिरिजा जब अपने जीवन से निराश हो कर रोती तो वह उसे समझाते—गिरिजा, रोओ मत, चीघ्र ही अच्छी हो जाओगी।

पंडित देवदत्त के पूर्वजों का कारोबार बहुत विस्तृत था। वे लेन-देन किया करते थे। अधिकतर उनके व्यवहार बड़े-बड़े चकलेशारों और रजवाडों के साथ थे। उस समय ईमान इतना मस्ता नहीं बिकता था। सादे पत्रों पर छाखों की बातें हो जाती थीं। मगर सन् ५७ ईस्वी के बलबे में कितनी ही रियासतों और राज्यों को मिटा दिया और उनके साथ तिवारियों का यह अन्न-धन-पूर्ण परिवार भी मिट्टी में मिल गया। खजाना लुट गया, बही-खाते पसारियों के काम आये। अब कुछ शांति हुई, रियासतें फिर मँभली तो समय पलट चुका था। बचन लेख के अधीन हो रहा था, तथा लेख में भी सादे और रंगीन का भेद होने लगा था।

जब देवदत्त ने होता मँभाला तब उनके पास हम खड्गहर के अतिरिक्त और कोई सम्पत्ति न थी। जब निर्वाह के लिए कोई उपाय न था। कृषि में परिश्रम और कष्ट था। वाणिज्य के लिए धन और बुद्धि की आवश्यकता थी। विद्या भी ऐसी नहीं कि कहीं मौकरो करते, परिवार की प्रतिष्ठा दान लेने में बाधक थी। अस्तु, साल में दो-तीन बार अपने पुराने व्यवहारियों के घर बिना बुलाये पाहुनों की भाँति जाते और जो कुछ बिदाई तथा मार्ग-व्यय पाले उसी से गुजारा करते। पैतृक प्रतिष्ठा का चिह्न यदि कुछ छेप था, तो वह पुरानी चिट्ठी-पत्रियों का डेर तथा हुडियों का पुलिदा, जिनकी स्थाहो भी उनके मंत्र भाग्य की भाँति फँकी पड़ गयी थी। पंडित देवदत्त उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते। द्वितीया के दिन जब घर-घर लक्ष्मी की पूजा होती है, पंडित जी टाट-बाट से इन पुलिदों की पूजा करते। मन्त्री न सहो, लक्ष्मी का स्मारक-चिह्न ही सहो। दूज का दिन पंडित जी के प्रतिष्ठा के थाय का दिन था। इसे बाहे बिड़बना कहो, चाहे मूर्धता परंतु थोमाम् पंडित महाशय को उन पत्रों पर बड़ा अभिमान था। जब गाँव में कोई विवाद छिड़ जाता तो यह गढ़े गले कागजों की मेना ही बहुत काम कर जाती और प्रतिवादी शत्रु को हार माननी पड़ती। यदि सत्तर पीढ़ियों से शास्त्र की मूरत न देखने पर भी लोग शत्रिय होने का अभिमान करते हैं, तो पंडित देवदत्त का उन लोगों पर अभिमान करना अनुचित नहीं कहा जा सकता, जिसमें सत्तर लाख रुपयों की रकम छिपी हुई थी।

वही अमावस्या की रात्रि थी। किन्तु दीपमालिका अपनी मृत्यु जेबों समाप्त कर चुकी थी। चोरो और जुआरियों के लिए यह रात की रात्रि थी, क्योंकि आज की हार सात भर को हार होती है। छद्मों के आगमन की घूम थी। कोड़ियों पर अनाकियों छुट रही थीं। भट्टियों में नगर के बदले पानों विक रहा था। पण्डित देवदत्त के अतिरिक्त कस्बे में कोई ऐसा मनुष्य नहीं था, जो कि दूसरों को कमाई समेटने की धुन में न हो। आज भोर से ही गिरिजा को अवस्था रोचनीय थी। विषम ज्वर उसे एक-एक भग्न में मूर्च्छित कर रहा था। एकाएक उसने चौंक कर आँखें खोली और अत्यंत क्षीण स्वर में कहा—आज तो बीवाली है।

देवदत्त ऐसा निराश हो रहा था कि गिरिजा को चैतन्य देख कर भी उसे आनंद नहीं हुआ। बोला—हां, आज बीवाली है।

गिरिजा ने आँसू-भरी दृष्टि से झपट-उधर देख कर कहा—हमारे घर में क्या बीपक न जलने ?

देवदत्त फूट-फूट कर रोने लगा। गिरिजा ने फिर उसी स्वर में कहा—देखो, आज बरस-बरस के दिन घर अंधेरा रह गया। मुझे उठा वो, मैं भी अपने घर में ब्रिये जलाऊँगी।

ये बातें देवदत्त के हृदय में चुभी जाती थीं। मनुष्य की अतिन यज्ञी कालनाभों और भावनाओं में व्यतीत होती है।

इस नगर में लाला शंकरदास अच्छे प्रसिद्ध वैद्य थे। अपने प्राणसंजीवन औषधालय में दवाओं के स्थान पर छापने का प्रेस रखे हुए थे। दवाईयाँ कम बनती थी, किन्तु इस्तहार अधिक प्रकाशित होते थे।

वे कहा करते थे कि बीमारी केवल रईसों का ढंकोसला है और पोलिटिकल एकांनोमी के (राजनीतिक अर्थशास्त्र के) अनुसार इस विलास-मशाय से जितना अधिक सम्भव हो, टेबल लेना चाहिए। यदि कोई निर्धन है तो हो। यदि कोई मरता है तो मरे। उसे क्या अधिकार है कि वह बीमार पड़े और मुफ्त दवा कराये ? भारतवर्ष की यह दशा अधिकतर मुफ्त दवा कराने से हुई है। इसने मनुष्यों को असह्यमान और बलहीन बना दिया है। देवदत्त

नूस्सा शतलावा था। जिन वक्त आप बी० पी० पागेल खोलेंगे, आप पर उसकी हकीकत रोशन हो जायगी। यह आबे हयात हैं। यह मदनीगो का जोहर, फरजानगो का भनगीर, अल का मुरब्बा और जेहन का गकील है। अगर बपों की मुशायरावाजी ने भी आपको सायर नहीं बनाया, अगर रावे रोज के रदत पर भी आप इस्तहान में कामयाब नहीं हो सके, अगर दलालों की खुदानद और मुक्कियों की नाजबंदारी के बावजूद भी आप अहाते अदालत में भूखे कुत्ते की तरह लपकर लगाते फिरते हैं, अगर आप गला फाड़-फाड़ चीलने, मेज पर हाथ पैर पटकने पर भी अपनी तकरीर में कोई असर पैदा नहीं कर सकते तो आप 'अमृतबिंदु' का इस्तेमाल कीजिए। इसका सबसे बड़ा फायदा जो पहले ही दिन मालूम हो जायगा, यह है कि आपकी आँखें खुल जायँगी और आप फिर कभी इतिहासवान हकीमों के शम करेब में न फँगेंगे।

बैद्य जी इस बिज्ञापन को समाप्त कर उच्च स्वर में पढ़ रहे थे, उनके नेत्रों में उचित अभिमान और आत्मा झलक रही थी कि इतने में बेबख्त ने बाहर से आवाज दी। बैद्य जी बहुत चुप हुए। रात के समय उनकी फीस दुगुनी थी। लालटेन लिये बाहर निपड़े तो बेबख्त रोता हुआ उनके पैरों से लिपट गया और बोला—बैद्य जी, इस समय मुझपर दया कीजिए। गिरिजा अब कोई सामत की पाहुनी है। अब आप ही उसे बचा सकते हैं। यो तो मेरे माम्म में जो लिखा है, वही होना; किंतु इस समय तनिक चल कर आप देख लें तो मेरे दिल का दाह मिट जायगा। मुझे धैर्य हो जायगा कि उसके लिए मुझमें जो कुछ हो सकता था, मैंने किया। परमात्मा जानता है कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ; किंतु जब तक जीऊँगा, आपका यम गाऊँगा और आपके इशारों का गुलाम बना रहूँगा।

हकीम जी को पहले कुछ तरस आया, किंतु वह जुगुनू की चमक भी जो शीघ्र स्वार्थ के विघ्न अवकार में बिन्दोब हो गयी।

वही अमावस्या की रात्रि थी। वृषों पर सघाटा छा गया था। जीतनेवाले अपने वस्त्रों की नींद से जगा कर श्वाप देते थे। हारनेवाले अपनी रट और

क्रोधित स्त्रियो से शमा के लिए प्रार्थना कर रहे थे। इतने में घंटी के लगातार शब्द वायु और अधकार को चीरते हुए वान में आने लगे। उनकी मुहावनी ध्वनि इस निस्तब्ध अवस्था में अत्यंत मली प्रतीत होती थी। यह शब्द समीप हो गये और अंत में पंडित देवदत्त के समीप आ कर उनके खंडहर में दूब गये। पंडित जी उस समय निराशा के अथाह समुद्र में गोते खा रहे थे। शोक में इस योग्य भी नहीं थे कि प्राणों से भी अधिक प्यारी गिरिजा को दवा दरपन कर सकें। क्या करें? इस निष्ठुर बैध को यहाँ कैसे लायें?—जालिम, मैं सारी उमर तेरी गुलामी करता। तेरे इत्तहार छापता। तेरी दवाइयाँ कूटता। आज पंडित जी को यह ज्ञान हुआ है कि सत्तर साल की चिट्ठी-पत्रियो इतनी कौडियो के मोल भी नहीं। पैतृक प्रतिष्ठा का अहंकार अब आँखों से दूर हो गया। उन्होंने उस मन्थमली धैले को सड़क से बाहर निकाला और उन चिट्ठी-पत्रियो को, जो वाप-दादों की कमाई का स्रोत थी और प्रतिष्ठा की भाँति जिनकी रक्षा की जाती थी, एक-एक करके दीया की अर्पण करने लगे। जिस तरह मुख और आनंद से पालित शरीर चिता की भेंट हो जाता है, उसी प्रकार वह कागजी पुतलियाँ भी उस प्रज्वलित दीया के घबकते हुए मुँह का भ्रान बनती थी। इतने में किसी ने बाहर से पंडित जी को पुकारा। उन्होंने चौंक कर सिर उठाया। वे तीव्र से, धँधरे में टटोलते हुए दरवाजे तक आये। देखा कि कई आदमी हाथ में मशाल लिये हुए खड़े हैं और एक हाथी अपने नूँट से उन एरंड के बूंधों को उखाड़ रहा है, जो द्वार पर द्वारपालों को भाँति खड़े थे। हाथी पर एक सुंदर युवक बैठा है। जिसके सिर पर केसरिया रंग की रेशमी पाग है। माथे पर अर्धबुंदीदार चदन, भाले की तरह तनी हुई नोकदार मूँछ, मुखारविंद से प्रभाव और प्रकाश टपकता हुआ, कोई सरदार मालूम पड़ता था। उसका कला-दार अंगरखा और झुनावदार पैजामा, कमर में लटकती हुई तलवार और गर्दन में सुनहरे कंठ और जवार उसके सज्जों के शरीर पर अत्यंत घोभा पा रहे थे। पंडित जी को देखते ही उसने रक्षाव पर पैर रखा और नीचे उतर कर उनको बंदना की। उसके इस विनोत भाव से कुछ लज्जित हो कर पंडित जी बोले—आपका आगमन कहाँ से हुआ?

नवयुवक ने बड़े नम्र शब्दों में जवाब दिया। उसके चेहरे से भलमनसाहट



वरसती थी—मैं आपका पुराना सेवक हूँ। दास का घर राजनगर है। मैं वहाँ का जागीरदार हूँ। मेरे पूर्वजों पर आपके पूर्वजों ने बड़े अनुग्रह किये हैं। मेरी इस समय जो कुछ प्रतिष्ठा तथा सम्पदा है, सब आपके पूर्वजों की कृपा और दया का परिणाम है। मैंने अपने अनेक स्वजनों से आपका नाम सुना था और मुझे बहुत दिनों से आपके दर्शनो की आकांक्षा थी। आज यह सुअवसर भी मिल गया। अब मेरा जन्म सफल हुआ।

पंडित देवदत्त की आँखों में आँसू भर जाये। पैतृक प्रतिष्ठा का अभिमान उनके हृदय का कोमल भाग था।

वह दीनता जो उनके मुख पर छायी हुई थी, थोड़ी देर के लिए बिदा हो गयी। वे गम्भीर भाव धारण करके बोले—यह आपका अनुग्रह है जो ऐसा कहते हैं। नहीं तो मुझ जैसे कपूत में तो इतनी भी योग्यता नहीं है जो अपने को उन लोगों की संतति कह सकूँ। इतने में भौकरो ने आगन में कर्क बिछा दिया। दोनों आदमी उस पर बैठे और बातें होने लगीं, वे बातें जिनका प्रत्येक शब्द पंडित जी के मुख को इस तरह प्रफुल्लित कर रहा था जिस तरह प्रातःकाल की वायु फूलों को खिला देती है। पंडित जी के पितामह ने नवयुवक ठाकुर के पितामह को पञ्चीस सहस्र रुपये कर्ज किये थे। ठाकुर अब गया में जा कर अपने पूर्वजों का धाड़ करना चाहता था, इसलिए जरूरी था कि उसके जिम्मे जो कुछ ऋण हो, उसकी एक-एक कौड़ी चुका दी जाय। ठाकुर को पुराने बही-खाते में यह ऋण दिखायी दिया। पञ्चीस के अब पचहत्तर हजार हो चुके थे। वही ऋण चुका देने के लिए ठाकुर आया था। धर्म ही वह शक्ति है जो अतःकरण में ओजस्वी विचारों को पैदा करती है। ही इस विचार को कार्य में लाने के लिए एक पवित्र और बलवान् आत्मा की आवश्यकता है। नहीं तो वे ही विचार क्रूर और पापमय हो जाते हैं। अब मे ठाकुर ने कहा—आपके पास तो ये चिट्ठियाँ होंगी ?

देवदत्त का दिल बैठ गया। वे सँभल कर बोले—सम्भवतः हाँ। कुछ कह नहीं सकते।

ठाकुर ने लापरवाही से कहा—हैंडिए, यदि मिल जायें तो हम लेते जायेंगे। . . .

पंडित देवदत्त उठे, लेकिन हृदय ठड़ा हो रहा था। गंका होने लगी कि कहीं भाग्य हरे बाग न दिखा रहा हो। कौन जाने वह पुर्जा बल कर राख हो गया या नहीं। यदि न मिला तो रुपये कौन देता है। धोकर कि दूध का प्याला सामने आ कर हाथ में छूटा जाता है !—हे भगवान् ! वह पत्नी मिल जाय। हमने अनेक कष्ट पाये हैं, अब हम पर दया करो। इस प्रकार आशा और निराशा का दशा में देवदत्त भीतर गये और दीया के टिमटिमाते हुए प्रकाश में बचे हुए पत्रों को उलट-पुलट कर देखने लगे। वे उछल पड़े और उर्मंग में भरे हुए पागलों की भाँति आनंद की अवस्था में दो-तीन बार नूदे। तब दौड़ कर गिरिजा की पल्लि से लगा लिया और बोले—प्यारी, यदि ईश्वर ने चाहा तो तू अब बच जायगी। उन्मत्तता में उन्हें एकदम यह नहीं जान पड़ा कि 'गिरिजा' अब नहीं है, केवल उसकी लोभ है।

देवदत्त ने पत्नी को उठा लिया और शर तक वे इस तेजी से आगे मानों पाँकों में पर लग गये। परंतु यहाँ उन्होंने अपने को रोका और हृदय में आनंद की उन्मत्तता हुई तरंग की रोक कर कहा—यह लीजिए, वह पत्नी मिल गयी। मयोग की बात है, नहीं तो सत्तर लाख के कागज दीपकों के बाजार बन गये !

आकस्मिक सरलता में कभी-कभी संदेह बाधा डालता है। जब ठाकुर ने उस पत्नी के लेने की हाथ बड़ाया तो देवदत्त को संदेह हुआ कि कहीं वह उसे फाड़ कर फेंक न दे। यद्यपि यह संदेह निरव्यंक्त था, किंतु मनुष्य कमजोरियों का पुतला है। ठाकुर ने उनके मन के भाव को ताड़ लिया। उसने बेपरवाही से पत्रों को लिया और मशाल के प्रकाश में देख कर कहा—अब मुझे विश्वास हुआ। यह लीजिए, आपका स्वप्न आपके समक्ष है, आघोर्वाद दीजिए कि मेरे पूर्वजों की मुक्ति हो जाय।

यह कह कर उमने अपनी कमर से एक पेंता निवाला और उसमें से एक-एक हजार के पचहत्तर नोट निकाल कर देवदत्त को दे दिये। पंडित जी का हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। नाड़ी तीव्र-भक्ति में कूद रही थी। उन्होंने चारों ओर चौकरी दृष्टि से देखा कि कहीं कोई दूतवा तो नहीं खड़ा है और तब काँपते हुए हाथों से नोटों को ले लिया। अपनी उच्चता प्रकट करने की व्यर्थ चेष्टा में

उन्होंने नोटों की गणना भी नहीं की। केवल उड़ती हुई दृष्टि में देख कर उन्हें समेटा और जेब में डाल लिया।

५

वही अमावस्या की रात्रि थी। स्वर्गीय दोषक भी धूँधले हो चले थे। उनको माया सूर्यनारायण के आने की सूचना दे रही थी। उदयाचल फिरोजी बाना पहन चुका था। अस्ताचल में भी हल्के स्वर्ण रंग की आभा दिखाने दे रही थी। पंडित देवदत्त टाकुर को विदा करके घर चले। उस समय उनका हृदय उदारता के निरंगल प्रकाश में प्रकाशित हो रहा था। कोई प्राणी उस समय उनके घर से निराश नहीं जा सकता था। मत्स्यनारायण की कथा धूम-धाम से सुनने का निश्चय हो चुका था। गिरिजा के लिए कपड़े और गहने के विचार ठीक हो गये। अंत कुर में ही उन्होंने दालिश्राम के सम्मुख मनसा-वाचा-कर्मणा सिर झुकाया और तब दोष पित्रो-भक्तियों को समेट कर उनी मन्मथली धँसे में रख दिया। किन्तु अब उनका यह विचार नहीं था कि संभवतः उन मुद्दों में भी कोई जीवित हो उठे। बालू जीविका से निश्चित हो भद्र वे पैतृक प्रतिष्ठा पर अभिमान कर सकते थे। उस समय वे धर्म्य और उत्साह के तरो में मस्त थे। दम, अब मुझे जिंदगी में अधिक सम्पदा की जरूरत नहीं। ईश्वर ने मुझे इतना दे दिया है। इसमें मेरी ओर गिरिजा की जिंदगी आनंद से कट जायगी। उन्हें क्या खबर थी कि गिरिजा की जिंदगी पहले कट चुकी है। उनके दिल में यह विचार गुदगुदा रहा था कि जिस समय गिरिजा इस आनंद-समाचार की सुनैगी उस समय अवश्य उठ बैठेगी। चिंता और कष्ट में ही उसकी ऐसी पुर्नति बना दी है। जिसे भर पेट कभी रोटी तनीब न हुई, जो कभी नारायणमय धर्म्य और निधनता के हृदय-विदारक वंधन में मुक्त न हुई, उसकी दशा इसके सिवा और हो ही क्या सकती है? यह सोचते हुए वे गिरिजा के पास गये और आहिस्ता से हिला कर बोले—गिरिजा, आँखें खोलो। देखो, ईश्वर ने तुम्हारी बिनसी सुन ली और हमारे ऊपर दया की। कभी तनीबता है? किन्तु जब गिरिजा तनिक भी न भिनकी तब उन्होंने चादर उठा दी और उसके मुँह की ओर देखा। हृदय से एक कण्ठात्मक ठंडी आह निकली। वे वही सिर धाम कर बैठ गये। आँखों से शोणित की बूँदें—‘एक पड़ी। आह!

क्या यह सम्पदा इतने मंह्ये मूल्य पर मिले है ? क्या परमात्मा के दरबार से मुझे इस प्यारी जान का मूल्य दिया गया है ? ईश्वर, तुम खूब ग्याप करते हो ! मुझे गिरिजा की आवश्यकता है, स्वयं की आवश्यकता नहीं। यह मोश बड़ा मंह्या है।

६

अमावस्या की अंधेरी रात गिरिजा के अधिकारमय जीवन का भ्रंश समाप्त हो चुकी थी। खेतों में हल चलानेवाले बिमान ऊँचे और सुहावने स्वर से गा रहे थे। सबी ने काँपते हुए बच्चे मूर्ख-देवता से बाहर निकलने का प्रार्थना कर रहे थे। पतपट पर गांव की अलबेली स्त्रियाँ जमा हो गयी थी। पानी भरने के लिए नहीं; हँसने के लिए। कोई पड़े को कुएँ में डाले हुए अपनी पोपली सास की नकल कर रही थी, कोई धम्माँ से चिपटी हुई अरानी सहेली से मुस्करा कर प्रेमच्छस्त्र की बाणें फरती थी। बूढ़ी स्त्रियाँ पोतों को बोद में लिए अपनी बहूओं को कोस रही थी कि पटे भर दूग, भव तक कुएँ से नहीं सौटीं। किन्तु राज बैद्य लाला चकरदास अभी तक मीठी बोद में रहे थे। सोमते हुए बच्चे और कूणहते हुए बूढ़े उनके औपधालय के द्वार पर जमा हो चले थे। इस भौड़-भग्मड से कुछ दूर पर दी-तीन मुदर किन्तु मुझाए हुए नवयुवक टहल रहे थे और बैद्य जी से एकत्र में कुछ बातें किया चाहते थे। इतने में पंडित देवदत्त नगे निर, नये बदन, लाल आँखें, बराबनी मूरत, कागज का एक पुलिदा लिये दौड़ते हुए आये और औपधालय के द्वार पर इतने जोर से हाँक लगाते लगे कि बैद्य जी चौंक पड़े और कहर को पुकार कर बोले कि दरवाजा खोल दे। कहर महारजा बड़ो राठ गये किनो बिरादरा के पचायत से लोटे थे। उन्हें दीर्घ-निद्रा का रोग था जो बैद्य जी के लगातार भाषण और फटकार की औपधियों से कम न होता था। आप हँसते हुए उठे और किगाड खोल कर हुक्का-निलम को चिता में अग्न दूढ़ेन चल गये। हकीम जी उठने की चेष्टा कर रहे थे कि सहसा देवदत्त उनके सम्मुख जा कर खड़े हो गये और नोटों का पुलिदा उनके आगे पटक कर बोले—बैद्य जी, ये बमहत्तर हजार के नोट हैं। यह आपका पुरस्कार और फीस है। आप बक कर गिरिजा को देख लीजिए और ऐसा कुछ कीजिए कि वह केवल एक बार आँखें खोल

दे । यह उसकी एक दृष्टि पर न्योछावर है—केवल एक दृष्टि पर । आपको हमने मनुष्य की जान से प्यारे हैं । वे आपके समक्ष हैं । मुझे गिरिजा की एक चितवन इन कपड़ों में कई गुना प्यारी है ।

वैद्य जी ने लज्जामय सहानुभूति से देवदत्त की ओर देखा और केवल इतना कहा—मुझे अत्यंत शोक है, सर्वेव के लिए तुम्हारा अपराधी हूँ । किंतु तुमने मुझे शिक्षा दे दी । ईश्वर ने चाहा तो अब ऐसी भूल कदापि न होगी । मुझे शोक है । सचमुच है ।

ये बातें वैद्य जी के अंतःकरण से निकली थी ।

## चकमा

सेठ चंद्रमल जब अपनी दुकान और गोदाम में भरे हुए माल को देखते तो मुंह से टंडो साँस निकल जाती। यह माल कैसे विकेगा ? बैंक का सूब बड़ रहा है, दुकान का किराया चढ़ रहा है, कर्मचारियों का वेतन बाकी पड़ता जाता है। ये सभी रकमें गाँठ से देनी पड़ेंगी। अगर कुछ दिन मही हाल रहा तो दिवाले के बिना और किसी तरह जान न बचेंगी। तिस पर भी परनेवाले नित्य मिर पर दीप्तान की तरह मवार रहे हैं।

सेठ चंद्रमल की दुकान चाँदनी चौक, दिल्ली में थी। मुफ्तस्मिल में भी कई दुकानें थीं। जब सहर कांग्रेस कमेटी ने उनसे विलायती कपड़े की खरीद और विक्री के विषय में प्रतिज्ञा करानी चाही तो उन्होंने कुछ ध्यान न दिया। बाजार के कई भावुतियों ने उनको देखा-देखा प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। चंद्रमल को जो नेतृत्व कभी न मनीब हुआ था, वह इस अवसर पर बिना हाथ-पैर हिलाने ही मिल गया। वे सरकार के खैरखाह थे। साहब बहादुरों की समय-मसब पर डालियाँ नजर देते रहते थे। पुलिस से भी घनिष्ठता थी। म्युनिसिपैलिटी के मदस्य भी थे। कांग्रेस के व्यापारिक कार्य-क्रम का विरोध करने अमनसभा के बोपाध्यक्ष बन बैठे। यह इसी खैरखाही की बरकत थी। गुबराज का स्वागत करने के लिए अधिकारियों ने उनमें २५ हजार के कपड़े खरीदे। ऐसा सामर्थ्य पुलिस कांग्रेस से क्यों डरे ? कांग्रेस है किस खेत की मूली ? पुलिसवालों ने भी बढ़ावा दिया—“गुआहिदे पर हरचिब दस्तखत न कीजिएगा। देखें, ये लोग क्या करते हैं ? एक-एक की जेल व निजबा दिया तो कहिएगा।” लाला जी के होमले बड़े। उन्होंने कांग्रेस से लड़ने की ठान ली। उसी के पलम्बरूप तीन महीनों में उनकी दुकान पर प्रातःकाल से ९ बजे रात तक पहरा रहता था। पुलिस-दलों ने उनकी दुकान पर दासदियरों को कई बार गालियाँ दी, कई बार पीटा, खुद सेठ जी ने भी कई बार उन पर बाणो के बाण चलाये, किन्तु पहरेवाले किसी तरह न टलते थे। बल्कि इन अत्याचारों के कारण चंद्र-

मल का बाजार और भी गिरता जाता। मुफ्तसिल की दुकानों से मुनीम लोग और भी दुराशाजनक समाचार भेजते रहते थे। कठिन समस्या थी। इस संकट से निकलने का कोई उपाय न था। वे देखते थे कि जिन लोगों ने प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं वे चोरी-छिपे कुछ न-कुछ विदेशी माल बेच लेते हैं। उनकी दुकानों पर पहरा नहीं बैठता। यह मारी विपत्ति मेरे ही सिर पर है।

उन्होंने सोचा, पुलिस और हाकिमों की बोझी से मेरा माल क्या हुआ? उनके हटायें ये पहरे नहीं हटवें। सिपाहियों की प्ररणा से माहक नहीं आते। किसी तरह पहरे बंद हो जाते तो सारा खेल बन जाता।

इतने में मुनीम जी ने कहा—लाला जी, यह देखिए, कई व्यापारी हमारे तरफ आ रहे थे। गहरेवालों ने उनको न जाने क्या मक्का पड़ा दिया, सब चले जा रहे हैं।

चंद्रमल—अगर इन पापियों को कोई गोली मार देता तो मैं बहुत खुश होता। यह सब मेरा सर्वनाश करके पम लेंगे।

मुनीम—कुछ हठी तो होंगी, यदि बाण प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर देते तो यह पहरा उठ जाता। अब हम भी यह सब माल किसी न किसी तरह खपा देंगे।

चंद्रमल—मन में तो मेरे भी यह बात आती है, पर सोचो, अपमान कितना होगा? इतनी हंकाड़ी दिखाने के बाद फिर झुका नहीं जाता। फिर हाकिमों की निगाहों में गिर जाऊंगा। और भी ताने देने कि चले थे बच्चा कांप्रेस में लड़ने। ऐसी मुश्किल को खानी कि होश ठिकाने आ गये। जिन लोगों को पीटा और पिटाया, जिनको मालिमा दी, जिनकी हंसी उड़ानी, अब उनकी धरण कौन मुंह से कर जाऊँ? मगर एक उपाय सूझ रहा है। अगर चक्रमा चल गया तो पी बारह है। बात तो सब है जब साँप को मारें, मगर लाठी बचा कर। पहरा उठा दें, पर बिना किसी को खुशामद किये।

२

नौ वज गये थे। सैठ चंद्रमल अर्धा-स्नान करके छोट आये थे और ममनद पर बैठ कर चिट्ठियाँ पढ़ रहे थे। अन्य दुकानों के मुनीमों ने अपनी विपत्ति-कथा सुनायी थी। एक-एक पत्र को पढ़ कर सैठ जी का क्रोध बढ़ता जाता

था। इतने में दो वालटियर झंझियाँ लिये हुए उनकी दुकान के सामने आ कर खड़े हो गये।

सेठ जी ने डाँट कर कहा—हट जाओ हमारी दुकान के सामने मे।

एक वालटियर ने उत्तर दिया—महाराज, हम तो सड़क पर हैं। क्या यहाँ मे भी चले जायें ?

सेठ जी—मैं तुम्हारी मूरत नहीं देखना चाहता।

वालटियर—तो आप काप्रेस कपेटो को लल्लिए। हमको तो वहाँ से यहाँ खड़े रह कर पहरा देने का हुकम मिला है।

एक कान्सटेबिल ने आ कर कहा—क्या है सेठ जी, यह लींआ क्या टर्राता है ?

चंद्रमल बोले—मैं कहता हूँ कि दुकान के सामने मे हट जाओ, पर यह कहता है कि न हटो, न हटो। जरा इसकी अबरदस्ती देयाँ।

कान्सटेबिल—( वालटियरो से ) तुम दोनों यहाँ से जाते हो कि आ कर गरदन नापूँ ?

वालटियर—हम सड़क पर खड़े हैं, दुकान पर नहीं।

कान्सटेबिल का अभीष्ट अपनी कारगुजारी दिखाना था। वह सेठ जी को खुश करके कुछ इनाम-इकराम भी लेना चाहता था। उसने वालटियरों को अपराध कहे और जब उन्होंने उसकी कुछ परवा न की तो एक वालटियर को इतने जोर में धक्का दिया कि वह बेचारा मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ा। कई वालटियर इधर-उधर से आ जमा हो गये। कई सिपाही भी आ पहुँचे। दर्रकबूंद को ऐसी घटनाओं में मजा आता ही है। उनकी नोड़ लम गयी। किसी ने हाँक लगायी 'महात्मा गाँधी की जय'। औरों ने भी उसके मुर में मुर मिलाया, देखते-देखते एक जनममूह एकजित हो गया।

एक दर्रक ने कहा—क्या है लाळा चंद्रमल ? अपनी दुकान के सामने इन शरीरों की यह दुर्गति क्या रहे हो, और तुम्हें जरा भी लज्जा नहीं आती ? कुछ भगवान् का भी डर है या नहीं ?

सेठ जी ने कहा—मुझसे कसम ले लो जो मैंने किसी सिपाही से कुछ कहा हो। ये लोग खनायाच बेचारों के पीछे पड़ गये। मुझे संत में बदनाम करते हैं।



एक सिपाही—आला जी आप ही ने तो कहा था कि ये दोनों बालटियर मेरे ग्राहकों को छेड़ रहे हैं। अब आप निकले जाते हैं ?

चद्रमल—बिल्कुल झूठ, सरासर झूठ, मीलही जाना झूठ। तुम लोग अपनी कारगुजारी की पुन में इससे उलझ पड़े। यह बेचारे तो दूकान में बहुत दूर खड़े थे। न किसी में बोलते थे, न चालते थे। तुमने जबरदस्ती ही इन्हें गरदना देनी शुरू की। मुझे अपना सौदा बेचना है कि किसी से लड़ना है ?

ब्रूमर सिपाही—लाला जी, हो बड़े होनियायर। मुझसे आग लगावा कर आप खलंग हो गये। तुम न कहते तो हमें क्या पड़े थी कि इन लोगों को धक्के देते ? दारोगा जी ने भी हमको ताकीद कर दी थी कि सेठ चद्रमल की दूकान का विशेष ध्यान रखना। वहाँ कोई बालटियर न आये। तब हम लोग आये थे। तुम फरियाद न करते, तो दारोगा जी हमारी तैनाती ही क्यों करते ?

चंद्रमल—दारोगा जी को अपनी कारगुजारी दिखानी होंगे। मैं उनके पास क्यों फरियाद करने जाता ? सभी लोग कांग्रेस के कुस्मन हो रहे हैं। पाने वाले तो उनके नाम से ही जलते हैं। क्या मैं शिकायत करता अभी तुम्हारी तैनाती करते ?

इतने में किसी ने घाने में इतिला दी कि चद्रमल की दूकान पर कास्टेबिलों और बालटियरों में कारपीट हो गयी। कांग्रेस के दफ्तर में भी खबर पहुँची। जरा देर में मय सहाय पुलिस के बानेदार और इन्स्पेक्टर साहब आ पहुँचे। उधर कांग्रेस के कर्मचारी भी दल-बल सहित दीड़े। समूह और बढ़ा। बार-बार प्रपकार की शक्ति उठने लगी। कांग्रेस और पुलिस के नेताओं में भाद-विवाद होने लगा। परिणाम यह हुआ कि पुलिसवालों ने दोनों को हिरासत में लिया और घाने की ओर चले।

पुलिस अधिकारियों के चले जाने के बाद सेठ जी ने कांग्रेस के प्रधान से कहा—आज मुझे मालूम हुआ कि ये लोग बालटियरों पर इतना घोर अत्याचार करते हैं।

प्रधान—तब तो दो बालटियरों का फैसला बर्ब नही हुआ। इस विषय में अब तो आपको कोई शंका नहीं है ? हम कितने लड़ाकु, कितने द्रोही, कितने शांतिनगकारी हैं, यह तो आपको भूब मालूम हो गया होगा ?

चंद्रमल—जी हाँ, खूब मालूम हो गया ।

प्रधान—आपकी सहायता तो अवश्य ही होगी ।

चंद्रमल—होगी तो मैं भी माफ़-माफ़ कहूँगा, चाहे बने या बिगड़े । पुलिस को मस्ती अब नहीं देखी जाती । मैं भी भ्रम में पड़ा हुआ था ।

मंत्री—पुलिसवाले आपको दवायें दे बहुत ।

चंद्रमल—एक नहीं, सौ दवाव पड़े, मैं झूठ कभी न बोलूँगा । सरकार उस दरबार में साथ न जायेंगे ।

मंत्री—अब तो हमारा लाज आपके हाथ है ।

चंद्रमल—मुझे आप देश का दोही न पायेंगे ।

यहाँ से प्रधान और मंत्री तथा अन्य पदाधिकारी चले तो मंत्री जी ने कहा—आइमी सच्चा जान पड़ता है ।

प्रधान—( सदैवभाव से ) कल तक आप ही सिद्ध हो जायगा ।

३

शाम को इन्स्पेक्टर-पुलिस ने लाला चंद्रमल को घाने बुलाया और कहा—आपको सहायता देनी होगी । हम आपको सरक़ से बेफ़िक्र है ।

चंद्रमल बोले—हाजिर हूँ ।

इन्स०—शरुटिपरां ने कान्सटेबिलों को गालियाँ दीं ?

चद्र०—मैंने नहीं मुनी ।

इन्स०—मुनी या न मुनी, यह बहस नहीं है । आपको यह कहना होगा वह सब खरीदारों को धक्के दे कर हटाते थे, हाथा-पारी करते थे, मारने की धमकी देते थे, ये सभी बातें कहनी होंगी दारोगा जी, वह बयान लाइए जो मैंने मेठ जी के लिए लिखाया है ।

चद्र०—मुझसे और अशक्त मैं झूठ न बोला जायगा । अपने हजारों जाननेवाले अशक्त में होंगे । किस-किसमें मुँह छिड़ाऊँ ? कहीं निकलने को जगह भी चाहिए ?

इन्स०—यह सब बातें निज के मुआमलों के लिए हैं । पोलिटिकल मुआमलों में झूठ-सच, धर्म और हया, किसी का भी खयाल नहीं किया जाता ।

चद्र०—मुँह में कालिय लग जायगी ।

इन्स०—सरकार की निवाह में इज्जत चीगुनी हो जायगी ।

चंदू०—( सोच कर ) जो नहीं, गवाही न दे सकूँगा । कोई और गवाह बना लीजिए ।

इन्स०—पाद रखिए, यह इज्जत ग्याक में मिल जायगी ।

चंदू०—मिल जाय, मजबूरी है ।

इन्स०—अमन-सभा के कोषाध्यक्ष का पद छिन जायगा ।

चंदू०—उससे कौन रोटियाँ चलती है ?

इन्स०—बदूक का लाइसेंस छिन जायगा ।

चंदू०—छिन जाय, बला से !

इन्स०—इनकम टैक्स को जाँच फिर से होगी ।

चंदू०—जकर कराइए । यह तो मेरे मन की बात हुई ।

इन्स०—बैठने को कुर्सी न मिलेगी ।

चंदू०—कुर्सी ले कर चार्टू ? दिवाला तो निकला जा रहा है ।

इन्स०—अच्छी बात है । तत्तरीफ छे जाइए । कमो तो भाप पंजे में आदोंगे ।

४

दूसरे दिन इसी समय कांग्रेस के दफ्तर में कल के लिए कार्यक्रम निर्दिष्ट किया जा रहा था । प्रधान ने कहा—सेठ चंदूमल की दूकान पर घरना-देने के लिए दो स्वयंसेवक भेजिए ।

मंत्री—मेरे विचार में वहाँ अब घरना देने की कोई जरूरत नहीं ।

प्रधान—क्यों ? उन्होंने अभी प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर तो नहीं किये ?

मंत्री—हस्ताक्षर नहीं किये, पर हमारे मित्र अवश्य हो गये । पुलिस की तरफ से गवाही न देना यही सिद्ध करता है । अधिकारियों का कितना दबाव पड़ा होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है । यह नैतिक साहस विचारों में परिवर्तन हुए बिना नहीं आ सकता ।

प्रधान—हाँ, कुछ परिवर्तन तो अवश्य हुआ है ।

मंत्री—कुछ नहीं, महाशय ! पूरी क्रांति कहना चाहिए । आप जागते हैं, ऐसे मुन्नामलों में अधिकारियों की अवहेलना करने का क्या अर्थ है ? यह राज-पिशोह की घोषणा के समान है ! त्याग में सन्वाध में इनका महारत कम ?

हैं। आज त्रिलोके के सारे हाकिम उनके मून के प्यासे हो रहे हैं। आश्चर्य नहीं कि गवर्नर महोदय को भी इसरी गूबना दो नये हो।

प्रधान—और कुछ नहीं तो उन्हें नियम का पालन करने ही के लिए प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर देना चाहिए था। किसी तरह उन्हें यही बुझाए। अपनी बात तो रह जाय।

मन्त्री—वह बड़ा आग्याभिमानो है, कभी न आयेंगा। बल्कि हम लोगों की ओर से इतना अविदवाय देय कर सम्मिल है कि फिर उस दल में मिलने की चेष्टा करने लगे।

प्रधान—अच्छी बात है, आनको उन पर इतना विद्वान हो गया है तो उनको दूसरान की छोड़ दोजिए। जब भी मैं यहीं कहूँगा कि आपको स्वयं मिलने के बहाने में उन पर निगाह रखनी होगी।

मन्त्री—आप नाहक इतना शक करने हैं।

नौ बने मेठ चंदूमल अपनी दूबान पर आये तो वहाँ एक भी बालटिपर न था। नुल पर मुस्कराहट की झलक आयी। मुनीम से बोले—कोड़ी चित पड़ी।

मुनीम—मालूम तो होता है। एक मत्तासय भी नहीं आये।

चंदूमल—न आये और न आयेगे। बाजी अपने हाथ रही। बंता दीन खेला—चारों खाने चित।

चंदू०—आप भी वार्ने करते हैं? इन्हें रीस्त बनाते किमनी बेर लगती है। बहिए, अभी बुला कर जूतिपाँ मीथी करवाऊँ। टके के गुलाम हैं, न किसी के दोस्त, न किसी के दुश्मन। सब बहिए, कंमा अकमा दिया है?

मुनीम—बन, रही जो चाहता है कि आपके हाथ घूम लें। साँप भी मरा और लाठी भी न टूटी। भवर कंदिमबाले भी टोह में होमे।

चंदूमल—तो मैं भी तो मौजूद हूँ। वह डाल-डाल चलेंगे, तो मैं पाठ-पाठ चलेंगा। दिलायती कपड़े की गाँठ निकलवाइए और व्यापारियों को देना शुरू कीजिए। एक अठवारे में बेड़ा पार है।

## पञ्चतापा

दुर्गति दुर्गति जय कालेज से निकले तो उन्हें जीवन-निर्वाह की चिंता उपस्थित हुई। वे दर्यालु और धार्मिक थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणतः सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरों के साथ भलाई और मददगार का भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालय में बलक बन जाऊँ तो अपना निर्वाह हो सकता है, किन्तु सर्व-साधारण से कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। बकालत में प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनों बातें सम्भव हैं, किन्तु अनेकानेक यत्न करने पर भी अपने को पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस-विभाग में दोन-बालन और परोपकार के लिए बहुत-से अवसर मिलते रहते हैं; किन्तु एक स्वतंत्र और सन्निवार-प्रिय मनुष्य के लिए यहाँ की हवा हानिप्रद है। शासन-विभाग में नियम और नीतियों की भरमार रहती है। कितना हो चाहो, पर वहाँ कड़ाई और डिटबपट से बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि किसी जमींदार के यहाँ 'मुस्तारखाम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अवश्य कम मिलेगा; किन्तु दोन-जेतिहरों से रात-दिन सम्बन्ध रहेगा, उनके साथ मददगार का अवसर मिलेगा। साधारण जीवन-निर्वाह होना और विचार बन होंगे।

जुँवर विंगलसिंह जी एक सम्पत्तिशाली जमींदार थे। १० दुर्गति ने उनके पास जा कर प्रार्थना की कि मुझे भी अपनी सेवा में रख कर कृतार्थ कीजिए। जुँवर साहब ने इन्हें छिर से घेर तक देखा और कहा—युक्ति जी, आपको अपने यहाँ रखने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, किन्तु आपके योग्य मेरे यहाँ कोई स्थान नहीं देख पड़ता।

दुर्गति ने कहा—मेरे लिए किसी विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं है। मैं हर एक काम कर सकता हूँ। वेतन आप जो कुछ प्रसन्नतापूर्वक देंगे, मैं स्वीकार करूँगा। मैंने तो यह संकल्प कर लिया है कि सिवा किसी रईस के

और किसी की नौकरी न करूँगा। कुँवर विशालसिंह ने अभिमान से कहा—  
रईस की नौकरी नौकरी नहीं, राज्य है। मैं अपने चपरासियों को दो रुपया  
माहवार देता हूँ और वे तख्त के अँगरले पहन कर निकलते हैं। उनके दरवाजों  
पर घोड़े बँधे हुए हैं। मेरे कारिंदे पाँच रुपये से अधिक नहीं पाते, किंतु  
शादी-विवाह बकीलों के यहाँ करते हैं। न जाने उनकी कमाई में क्या बरकत  
होती है। बरमो ननस्वाह का हिमाय नही करते। कितने ऐसे हैं जो बिना  
ननस्वाह के कारिंदगी या चपरासियरी को तैयार बैठे हैं। परंतु अपना यह  
नियम नहीं। समस्त लीजिए, मुस्लार-आम अपने इलाके में एक बड़े जमींदार  
से अधिक रोब रखता है। उसका ठाट-बाट और उसकी हुकूमत छोटे-छोटे  
राजाओं से कम नहीं। जिसे इस नौकरी का चसका लग गया है, उसके सामने  
तहसीलदारी झूठी है।

पंडित दुर्गनाथ ने कुँवर साहब की बातों का समर्थन किया, जैसा कि  
करना उनको सम्प्रतानुसार उचित था। वे दुनियादारी में अभी कच्चे थे,  
बोले—मुझे अब तक किसी रईस की नौकरी का चमका नहीं लगा है। मैं तो  
अभी कालेज से निकला आता हूँ। और न मैं इन कारणों से नौकरी करना  
चाहता हूँ जिनका कि आपने वर्णन किया। किंतु इतने कम वेतन में मेरा निर्वाह  
न होगा। आपके और नौकर असाधियों का गला दबाते होंगे। मुझसे मरते  
समय तक ऐसे कार्य न होने। यदि सच्चे नौकर का सम्मान होना निश्चय है,  
तो विश्वास है कि बहुत शीघ्र आप मुझसे प्रसन्न हो जायेंगे।

कुँवर साहब ने बड़ी दृढ़ता से कहा—हाँ, यह तो निश्चय है कि सत्यवादी  
मनुष्य का आदर सब कहीं होता है, किंतु मेरे यहाँ ननस्वाह अधिक नहीं  
दी जाती।

जमींदार के इस प्रतिष्ठा-शून्य उत्तर की मुन कर पंडित जो कुछ खिन्न हृदय  
से बोले—तो फिर मजबूरी है। मेरे द्वारा इस समय कुछ कष्ट आपको पहुँचा  
हो तो क्षमा कीजिएगा। किंतु मैं आपसे कह सकता हूँ कि ईमानदार आदमी  
आपको सस्ता न मिलेगा।

कुँवर साहब ने मन में सोचा कि मेरे यहाँ सदा बदलत-कचहरी लगी हो  
रहती है, सैकड़ों रुपये तो डिगरी और सज्जीयों तथा और-और अँगरेजी कागजों

के अनुवाद में लग जाते हैं। एक अँगरेजी का पूर्ण पंडित महज ही में मिल रहा है। सो भी अधिक तनखाह नहीं देनी पड़ेगी। इसे रख लेना ही उचित है। लेकिन पंडित जी की बात का उत्तर देना आवश्यक था, अतः कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्य को कितना ही कम वेतन दिया जाये, वह मर्य को न छोड़ेगा और न अधिक वेतन पाने से बेइमान सच्चा बन सकता है। सच्चाई का रुपये से कुछ सम्बन्ध नहीं। मैंने ईमानदार कुर्छे ऐसे हैं और बेइमान बड़े-बड़े पनाकेप पुरुष। परंतु अच्छा, आप एक सज्जन पुरुष हैं। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिए। मैं आपको एक इलाके का अपिकारी बना दूँगा और आपका काम देख कर तरक्की भी कर दूँगा।

दुर्गानाथ जी ने २० ६० मासिक पर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँ से कोई दारिद्र्य भील पर कई गांवों का एक इलाका चांदपार के नाम से विख्यात था। पंडित जी इसी इलाके के कारिंदे नियत हुए।

२

पंडित दुर्गानाथ ने चांदपार के इलाके में पहुँच कर अपने निवास-स्थान को देखा तो उन्होंने कुँवर साहब के कंधन को बिलकुल मर्य पाया। मर्यादा में रियासत की नौकरी मुख-सम्पत्ति का घर है। रहने के लिए सुंदर बँगला है, जिसने बहुमुख विछीना बिछा हुआ था, संकड़ा बीरे की गौर, कई नौकर-बाकर, कितने ही चपरासी, सवारी के लिए एक सुंदर टोपन, मुख ठाट-बाट के सारे सामान उपलब्ध। किंतु इस प्रकार की सुजावट और विलास की सामग्री देख कर उन्हें उतनी प्रसन्नता न हुई। क्योंकि इन्हीं सब चीजों के चारों ओर किसानों के छोड़े थे। फूस के घरो में मिट्टी ही काया था। वहाँ के लोगों में वह बँगला लड़के उसे भय को दृष्टि से देखते। उनके साहस न पड़ता। इस दीनता के बीच में इन्हें अत्यंत हृदय-विदारक था। किसानों की घर-घर काँपते थे। चपरासी लोग उनसे ऐसा जो बैसा नहीं होता।

पहले ही दिन कई सौ किसानों ने पंडित जी को अनेक प्रकार के पदार्थ भेंट के रूप में उपस्थित किये, किन्तु जब वे सब लौटा दिये गये तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। किसान प्रसन्न हुए, किन्तु चपरासियों का रक्त उबलने लगा। नाई और नहार खिदमत को आये, किन्तु लौटा दिये गये। अहीरों के घरों में दूध से भरा हुआ मटका आया, वह भी वापस हुआ। तपोली एक ढोली पान लाया, किन्तु वह भी स्वीकार न हुआ। अमामी आपन में कहने लगे कि कोई धर्माला पुष्प आये है। परन्तु चपरासियों को तो ये नयी बानें अमह्य हो गयीं। उन्होंने कहा—हजूर, अगर आपको ये चीजें पसंद न हों तो न लें, मगर रस्म को तो न मिटावें। अगर कोई दूसरा आदमी यहाँ आयेगा तो उसे नये सिरे से यह रस्म बांधने में कितनी शिक्क होगी? यह सब मुन कर पंडित जी ने केवल यही उत्तर दिया—जिमके मिर पर पड़ेगा वह भुगत लेगा। मुझे इसकी चिंता करने की क्या आवश्यकता? एक चपरासी ने माहम बांध कर कहा—इन असामियों को आप जितना गरीब समझते हैं उतने गरीब ये नहीं हैं। इनका डंग ही ऐसा है। भेष बनाये रहते हैं। देखने में ऐसे मीधे-सारे मानों बेम्रीम की गाय है, लेकिन सब मानिए, इनमें का एक-एक आदमी हाईकोर्ट का वकील है।

चपरासियों के इस वाद-विवाद का प्रभाव पंडित जी पर कुछ न हुआ। उन्होंने प्रत्येक गृहस्थ से दयालुता और भाईचारे का आचरण करता आरम्भ किया। सबरे में बाठ बने तक सौ गरीबों को बिना शर्त भोजियाँ देते, फिर हिसाब-किताब का काम देखते। उनके सदाचरण ने असामियों को मोह लिया। मालगुजारी का खयाल, जिसके लिए प्रति वर्ष कुरकी तथा नोलाम की आवश्यकता होती थी, इस वर्ष एक इंचारे पर कमूल हो गया। किसानों ने अपने भाग सहाहे और वे मानने लगे कि हमारे सरकार को दिनों-दिन बढ़ता हो।

३

कुँवर विशालसिंह अपनी प्रजा के पालन-पोषण पर बहुत ध्यान रखते थे। वे बीज के लिए बनाव देते और मजदूरी और बैलों के लिए खाने। फसल कटने पर एक का डेढ़ कमूल कर लेते। चाँदपार के कितने ही अमामी इनके श्रेणी थे। चैत का महीना था। फसल कट-कट कर खलियानों में आ रही थी।



खलियान में थे कुछ अनाज—घर में खाने लगा था। इसी अवसर पर कुँवर साहब ने चाँदपारवालों को बुलाया और कहा—हमारा अनाज और रुपया बेबाक कर दो। यह चंत्त का महोत्सव है। जब तक कटाई न की जाय, तुम लोग डकार नही सेते। इस तरह काम नही चलेगा। बूढ़े मलूका ने कहा—सरकार, भला असामी कभी अपने मालिक से बेबाक हो सकता है! कुछ अभी ले लिया जाय, कुछ फिर दे दंगे। हमारे गर्दन तो सरकार की मुट्ठी में है।

कुँवर साहब—आज कौड़ी-कौड़ी चुका कर यहाँ से उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह होला-हवाला किया करते हो।

मलूका ( चिन्तन के साथ )—हमारा पेट है, सरकार की रोटियाँ हैं, हमको और क्या चाहिए? जो कुछ उपज है वह सब सरकार ही को है।

कुँवर साहब से मलूका की यह बाधासत्ता सह्य न गयी। उन्हें इस पर क्रोध आ गया; राजा रईस ठहरे। उन्होंने बहुत कुछ खरों-खोटो मुनायी और कहा—कोई है? जरा इस बूढ़े का कान तो गरम करो, यह बहुत बड़-बड़ कर बातें करता है। उन्होंने तो कदाचित् धमकाने की इच्छा से कहा; किंतु चपरासी कादिर साँ ने लपक कर बूढ़े की गर्दन पकड़ी और ऐसा धक्का दिया कि देवारा जमीन पर जा गया। मलूका के दो जवान बेटे वहाँ चुपचाप खड़े थे। बाप की ऐसी दशा देख कर उनका रक्त भरम हो उठा। वे दोनों झपटें और कादिर साँ पर दूट पड़े। धमाधम शब्द मुनायी पड़ने लगा। ली साहब का पानी उत्तर गया, साफा धलस आ गिरा। अचकन के टुकड़े-टुकड़े हो गये। किंतु जवान बलवती रही।

मलूका ने देखा, बात बिगड़ गयी। वह उठा और कादिर साँ को छुड़ा कर अपने लड़को को गालियाँ देने लगा! जब लड़को ने उसी को डाँटा तब दोड़ कर कुँवर साहब के चरणों पर गिर पड़ा। पर बात यथार्थ में बिगड़ गयी थी। बूढ़े के इस विनीत भाव का कुछ प्रभाव न हुआ। कुँवर साहब की आँखों से मानो आग के अंगारे निकल रहे थे। वे बोले—बेईमान, जाँजो के सामने से दूर हो जा। नहीं तो तेरा घून पी जाऊँगा।

बूढ़े के शरीर में रक्त तो अब बहा न रहा था, किंतु कुछ गर्मी अवश्य थी। समझता था कि ये कुछ न्याय करेंगे; परंतु यह कटकार, मुन कर बोला—

सरकार बुझाये में आपके दरवाजे पर पानी उतर गया और तिम-पर सरकार हमी को डाँटते हैं। कुँवर साहब ने कहा—तुम्हारी इज्जत अभी क्या उतरने है, अब उतरेगी।

दोनों लड़के सरोप बोले—सरकार अपना खयाल लेने कि किसी को इज्जत लेने ?

कुँवर साहब ( हँस कर )—खयाल पीछे लेने, पहले देखने कि तुम्हारे इज्जत कितनी है !

४

चाँदपार के किसान अपने गाँव पर पहुँच कर पंडित दुर्गानाथ से अपनी रामकहानी कह ही रहे थे कि कुँवर साहब का दूत पहुँचा और सबर दी कि सरकार ने आपको अभी-अभी बुलाया है।

दुर्गानाथ ने अनामियों को परिणाम दिया और आप बोर्डे पर सवार हो कर दरबार में हाजिर हुए।

कुँवर साहब की आँखें लाल थीं। मुत्त को आकृति भयकर हो रही थी। कई मुस्तार और चपरासी बैठे हुए आग पर तेल डाल रहे थे। पंडित जी को देखते ही कुँवर साहब बोले—चाँदपारवालों को हरकत आने देखी ?

पंडित जी ने नम्र भाव से कहा—जी हाँ, मुन कर बहुत घोक हुआ। ये तो ऐसे सरकार न थे।

कुँवर साहब—यह सब आप ही के आपस का फल है। आप अभी स्कूल के लड़के हैं। आप क्या जाने कि ममार में कैसे रहना होता है। यदि आपका बर्तव्य अनामियों के साथ ऐसा ही रहा तो फिर जमौंदारी कर चुका। यह सब आपको करनी है। मैंने इसी दरवाजे पर अनामियों को बाँध-बाँध कर उलटे लटक दिया है और किसी ने चूँ तक न को। आज उनका यह साहस कि मेरे ही आदमी पर हाथ चलायें !

दुर्गानाथ ( कुछ दबते हुए )—महाराज, इसमें मेरा क्या अपराध ? मैंने तो सबसे सुना है तभी से स्वयं मोच में पड़ा हूँ।

कुँवर साहब—अपराध अपराध नहीं तो किमका है ? आप ही ने तो इनको सिर चढ़ाया। बेगार बढ़ कर दी, आप ही उनके साथ भाईचारे का बर्तव्य करते

है, उनके साथ इसी मजाक करते हैं। वे छोटे ब्राह्मी इस वर्तव की कदर क्या जानें, किताबी बातें स्कूलों ही के लिए हैं। दुनिया के व्यवहार का कानून दूसरा है। अच्छा, जो हुआ सो हुआ। अब मैं चाहता हूँ कि इन बदमाशों को इस सरकारी का मजा चखाया जाय। असामियों की आपने मालगुजारी की रसीदें तो नहीं दी हैं ?

दुर्गनाथ ( कुछ डरते हुए )—जी नहीं, रसीदें तैयार हैं, केवल आपके हस्ताक्षरों की देर है।

कुँवर साहब ( कुछ संतुष्ट हो कर )—यह बहुत अच्छा हुआ। एकदम अच्छे हैं। अब आप इन रसीदों को चिरागभन्नी के सिपुर्द कीजिए। इन लोगों पर बकाया लगान की नालिख को आपनी, फसल नीलाम करा लूँगा। जब भूखे मरेगे तब मूखेगी। जो रम्या अब तक बसूल हो चुका है, वह बीज और ऋण के खाते में चढ़ा लीजिए। आपको केवल यह गवाही देनी होगी कि यह रम्या मालगुजारी के मद में नहीं, कर्ज के मद में बसूल हुआ है। बस !

दुर्गनाथ चिंतित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उसी आपत्ति का सामना करना पड़ेगा जिससे बचने के लिए इतने सोच-विचार के बाद, इस शांति-कुंदोर को ग्रहण किया था ? क्या जान-बूझ कर इन गरीबों की गर्दन पर छुरी फेकें, इसलिए कि मेरी नौकरी बनी रहे ? नहीं, यह मुझसे न होगा। बोलें—क्या मेरी सहायता बिना काम न चलेगा ?

कुँवर साहब ( क्रोध से )—क्या इतना कहने में भी आपको कोई उज्र है ?

दुर्गनाथ ( द्विविधा में पड़े हुए )—जी, यो तो मैंने आपका नामक खाया है। आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना मुझे उचित है, किंतु न्यायालय में मैंने गवाही नहीं दी हूँ। संभव है कि यह कार्य मुझसे न हो सके, अतः मुझे तो धामा हो कर दिया जाय।

कुँवर साहब ( शासन के दम से )—यह काम आपको करना पड़ेगा, इसमें 'हाँ-नहीं' की कोई आवश्यकता नहीं। जाय आपने लगायी है। बुझायेगा कौन ?

दुर्गनाथ ( दृढ़ता के साथ )—मैं झूठ कदापि नहीं बोल सकता, और न इस प्रकार सहायता दे सकता हूँ !

कुंवर साहब ( कोमल शब्दों में )—कुषानिधान, यह झूठ नहीं है। मेरे झूठ का व्यापार नहीं किया है। मैं यह नहीं कहता कि आप रुपये का समूल होना अस्वीकार कर देंगे। जब असामी भरे धूपी है, तो मुझे अधिकार है कि चाहे रुपया ऋण की मद में वसूल करूँ या मालगुजारी की मद में। यदि इतनी-सी बात को आप झूठ समझते हैं तो आपको जबरदस्ती है। अभी आपने संसार देखा नहीं। ऐसे मज्जाई के लिए संसार में स्थान नहीं। आप मेरे यहाँ नौकरी कर रहे हैं। इस सेवक-धर्म पर विचार कीजिए। आप विधित और होनहार पुरुष हैं। अभी आपको संसार में बहुत दिन तक रहना है और बहुत काम करना है। अभी से आप यह धर्म और सत्यता धारण करेंगे तो अपने जीवन में आपको आपत्ति और निराशा के सिवा और कुछ प्राप्त न होगा। सरसमिपठा अवश्य उत्तम वस्तु है, किंतु उसकी भी सीमा है, 'अति सर्वत्र वर्तते।' अब अधिक सोच-विचार की आवश्यकता नहीं। यह अवसर ऐसा ही है।

कुंवर साहब पुराने सूरोंट से। इस कैकृत से युवक खिलाड़ी हार गया।

५

इस घटना के तीसरे दिन चौदपार के असामियों पर नकाया लगान की गति हुई। समन आये। पर-पर उदासी छा गयी। सबन गया थे, धन के दूत थे। देवी-देवताओं की मित्रता होने लगी। स्त्रियाँ अपने घरवालों को कोसने लगीं और पुरुष अपने नाम्य को। निम्न तारीख के दिन राँव के गैदार कंधे पर लोटा-बोर लहे और अंगोछे में जबेना बांधे कचहरों को चले। संकड़ों स्त्रियाँ और बालक रोते हुए उनके पीछे-पीछे आते थे। मावो अब वे फिर उनसे न मिलेंगे।

पंडित दुर्गानाथ के लिए तीन दिन कठिन परीक्षा के थे। एक ओर कुंवर साहब की प्रभावशालिनी बातें, - दूसरी ओर किसानों की हाव-हाम, परंतु विचार-सागर में तीन दिन निमग्न रहने के पश्चात् उन्हें घरतों का सहारा मिल गया। उनकी आत्मा ने कहा—यह पहले परीक्षा है। यदि इसमें अनुत्तीर्ण रहे तो फिर आत्मिक दुर्बलता हो हाव रह जायगी। निदान निश्चय हो गया कि मैं अपने साथ के लिए इतने गरीबों को हानि न पहुँचाऊँगा।

दस बजे दिन का समय था। न्यायालय के सामने मेला-सा लगा हुआ था। जहाँ-तहाँ श्यामवस्त्राच्छादित देवताओं की पूजा हो रही थी। चाँपार के किसान झुंड के झुंड एक पेड़ के नीचे आ कर बैठे। उनसे कुछ दूर पर कुँवर साहब के मुस्तार बाग, मिपाहियों और गवाहों की भीड़ थी। ये लोग अत्यंत विनोद में थे। जिस प्रकार मछलियाँ पानी में पर्वण्ड कर कलोलें करती हैं, उसी भाँति ये लोग भी आनंद में चूर थे। कोई पान खा रहा था। कोई हलवाई की दुकान से पुरियों की पत्तल लिये चला आता था। उधर बैचादे किसान पेड़ के नीचे चुपचाप उदाम बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा, कौन आमत आयेगी। भगवान का भरोसा है। मुकदमे की पैगी हुई। कुँवर साहब की ओर के गवाह गवाहों देने लगे कि असामो बड़े सरकाय है। जब तपान मीना जाता है तो लड़ाई-झगड़े पर तैयार हो जाते हैं। अबकी इन्होंने एक कौड़ी भी नहीं दी।

कादिर खाँ ने रो कर अपने तिर को चोट दिखायी। सबसे पीछे पंक्ति दुर्गानाथ की पुकार हुई। उन्हीं के बगान पर निपटारा होना था। बकौल साहब ने उन्हें सूब छोटे की भाँति पढ़ा रखा था, किन्तु उनके मुख से पहला पाकड़ निकला ही था कि मैजिस्ट्रेट ने उनकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। बकौल साहब बल्लें झाँकने लगे। मुस्तार बाग ने उनकी ओर पुर कर देखा। अहलनस-पेशकार आदि शय के सब उनकी ओर आदनर्ष की दृष्टि से देखने लगे।

। न्यायाधीश ने तीव्र स्वर से कहा—तुम जानते हो कि मैजिस्ट्रेट के सामने खड़े हो ?

दुर्गानाथ (दुःखपूर्वक)—जी हाँ, भली भाँति जानता हूँ।

न्याया—तुम्हारे ऊपर असत्य भाषण का अभियोग लगाया जा सकता है।

दुर्गानाथ—अवश्य, यदि मेरा कवन झूठा हो।

बकौल ने कहा—जान पड़ता है, किमनों के दूध, घो और भैंट आदि ने यह फाया-गलट कर दी है। और न्यायाधीश की ओर सावक दृष्टि से देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओं का अधिक ख़बरों होना। मुझे तो अपनी खुशी रोटीयाँ ही अधिक प्यारी हैं।

न्यायाधीश—तब इन असामियों ने सब ऐसा बेबाक कर दिया है ?

दुर्गनाथ—जो हूँ, उनके बिम्बें लगान की एक कौड़ी भी बाकी नहीं है।

न्यायाधीश—रमोई क्यों नहीं दी ?

दुर्गनाथ—मेरे मालिक की आज्ञा ।

६

मैजिस्ट्रेट ने नानियों डिमिशन कर दीं। कुँवर साहब को उन्हीं ही हम पराजय की खबर मिली, उनके कोप को माना भीमा से बाहर हो गयी। उन्होंने पंडित दुर्गनाथ को शेरुडो कुवाकर बहने—नमस्करायम, विश्वासपाती, दुष्ट। मैंने उनका कितना आदर किया, किन्तु तुमने को पूँछ कहीं भीषी हो सकती है ! अतः मैं विश्वासपात कर ही गया। यह अच्छा हुआ कि पंडित दुर्गनाथ मैजिस्ट्रेट का कैमला सुनते ही मुक्तार-आम को कुबिया और कागजपत्र सुपुर्द कर चलते हुए। नहीं तो उन्हें हम कार्य के फल में कुछ दिन हल्दी और गुड पीने की आवश्यकता पड़ती।

कुँवर साहब का लेन-देन विशेष अधिक था। बाँसपार बहुत बड़ा इलाका था। वहाँ के अधाशियों पर कई छोटे छोटे बाकी थे। उन्हें बिदबाव हो गया कि अब अपना डूब जायगा। बमूल होने की कोई आशा नहीं। इस पंडित ने, असा-नियों को बिलकुल झिगाड़ दिया। अब उन्हें मेरा क्या डर ? अपने कारिदों और मंत्रियों ने भूमति ली। उन्होंने भी यही कहा—अब बमूल होने की कोई मूरत नहीं। कागजात-स्वायालय में वेन किये जायें तो इनका टैक्म लग जायगा। किन्तु क्या बमूल होना इच्छित है। उबरसरिनी होंगे। कहीं हिताव में कोई भूल निकल आयी तो रही-यही माय भी बागी रहेगी, और हमारे इलाकों का रकबा भी मारा जायगा।

दूसरे दिन कुँवर साहब पूजा-पाठ में निश्चित हो अश्वे चोपाल में बैठे, तो क्या देखते हैं कि बाँसपार के आगामो लुड के लुड चले आ रहे हैं। उन्हें यह देख कर भय हुआ कि कहीं ये सब कुछ उपद्रव तो न करेंगे, किन्तु किनो क हाथ में एक छोटी तक न थी। मल्लका आने-आने आता था। उसने दूर ही से मुक कर बंदना की। ठाकुर साहब को ऐसा आश्चर्य हुआ, मानो वे कोई स्वप्न देख रहे हो।

मलूका ने सामने आकर विनयपूर्वक कहा—सरकार, हम लोगों से जो कुछ भूल-बूझ हुई हो उसे क्षमा किया जाय। हम लोग सब हुजूर के चाकर हैं, सरकार ने हमको पाला-पोसा है, अब भी हमारे ऊपर यही निगाह रहे।

कुँवर साहब का उत्साह बढ़ा। समझे कि पंडित के चले जाने से, इन सबों के होश ठिकाने हुए हैं। अब किसका सहारा लेंगे। उसी गुरुरष्टि ने इन सबों को बहका दिया था। कड़क कर बोले—वे तुम्हारे सहायक पंडित कहाँ गये? वे भा जाते तो जरा उनकी खबर लो जाती।

यह सुन कर मलूका की आँखों में आँसू भर आये। वह बोला—सरकार, उनको कुछ न पड़े। वे आदमी नहीं देवता थे। बचानी की सौगंध है, जो उन्होंने आपकी कोई निंदा की हो। वे बेचारे तो हम लोगों को बार-बार समझाने थे कि बेसो, मालिक में बिगाड़ करना अच्छी बात नहीं। हमसे कभी एक छोटा पानी के रवाबार नहीं हुए। चलते-चलते हमसे कह गये कि मालिक का जो कुछ तुम्हारे जिम्मे निकले, चुका देना। आप हमारे मालिक हैं। हमने आपका बहुत ख़ाया-पिया है। अब हमारी यही विनती सरकार से है कि हमारा हिसाब-किताब देख कर जो कुछ हमारे ऊपर निकले बताया जाय। हम एक-एक कौड़ी चुका देंगे, सब पानी पियेंगे।

कुँवर साहब प्रसन्न हो गये। इन्हीं स्वयं के लिए कई बार खेत कटवाने पड़े थे। कितनी धार परों में आग लगवायी। अनेक बार मार-पीट की। कैद-कैद बंद दिये। और आज वे सब आप से आप सारा हिमाद-किताब साफ करने आये हैं। यह क्या जादू है।

मुस्तारआम साहब ने कागजात खोले और असाधियों के अपनी-अपनी पोट-लियाँ। जिसके जिम्मे जितना निकला, वे कान-पूँछ हिलाये उठना ब्रह्म सामने रख दिया। देखते-देखते सामने स्वयं का ढेर लग गया। छः सौ स्वयं बात की बात में बसूल हो गया। किसी के जिम्मे कुछ बाकी न रहा। वह सत्यता और न्याय की विजय थी। कठोरता और निर्दयता से जो काम कभी न हुआ, वह धर्म और न्याय ने पूरा कर दिखाया।

मानजे, भतोजे और नवासे इस रियासत पर दाँत लगाये हुए थे।

कुँवर साहब का मन अब इन सासारिक जगदों से फिरता जाता था। आखिर—यह रोना-धोना किसके लिए? अब उनके जीवन-नियम में एक परिवर्तन हुआ। द्वार पर कभी कभी शायु-संत धूनी रमाये हुए देख पड़ते। स्वयं भगवद्गोता और विष्णुपुराण पढ़ते थे। पारलौकिक चिंता अब नित्य रहने लगी। परमात्मा की कृपा और माधु-संतों के आशीर्वाद से बुढ़ापे में उनको एक लड़का पैदा हुआ। जीवन की आशाएँ सफल हुई; पर दुर्भाग्यवश पुत्र के जन्म ही में कुँवर साहब शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे। सवा बंधों और डाक्टरों का ताँता लगा रहता था; लेकिन दवाओं का उल्टा प्रभाव पड़ता। ज्यों-ज्यों करके उन्होंने ढाई वर्ष बिताये। अंत में उनकी शक्तियों ने खवाब दे दिया। उन्हें भाँसूम हो गया कि अब संसार से नाता टूट जायगा। अब चिंता ने और घर दवाया, यह सारा माल-असबाब, इतनी बड़ी सम्पत्ति किम पर छोड़ जाऊँ? मन की इच्छाएँ मन ही में रह गयीं। लड़के का पियाह भी न देख सका। उसकी तोतली दाँतें मुनने का भी सौभाग्य न हुआ। हाय, अब इस कलेजे के टुकड़े को किसे सौंपूँ, जो इसे अपना पुत्र समझे। लड़के की माँ स्त्री-जाति, न कुछ जाने, न समझे। उससे करबार सँभलना कठिन है। मुस्तारजाम, गुमास्ते, कारिंदे कितने हैं, परन्तु सब के सब स्वार्थी—विश्वासघाती। एक भी ऐसा पुरुष नहीं जिस पर मेरा विश्वास जमे। कोर्ट ऑफ़ पार्लमैंट के मुपुर्द कर्से तो वहाँ भी वे ही सब आपत्तियाँ। कोई इशर दबायेगा, कोई उधर। अनाथ बालक को कौन पूछेगा? हाय, मैंने आदमी नहीं पहचाना। मुझे हीरा मिल गया था, मैंने उसे ठीकरा समझा। कंसा मज्जा, कंसा बीर, दुष्टप्रतिश पुरुष था। यदि वह कहीं मिल जाये तो इस अनाथ बालक के दिन फिर जायें। उसके हृदय में कष्ट है, दया है। वह अनाथ बालक पर तरस आयागा। हा! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेंगे? मैं उस देवता के चरण भी कर माथे पर चढ़ाता। आँसुओं से उसके चरण धोता। वही यदि हाथ लगाये तो यह मेरी दूधती माँ पार लगे।

९

ठगुर साहब की बरा दिन पर दिन बिगड़ती गयी। अब अतकाल बा



पहुँचा। उन्हें पड़ित दुर्गानाथ की रट लगी हुई थी। जच्चे का मुँह देखते और बल्ले में एक धाह निकल जाती। बार-बार पछताने और हाथ मलते। हाथ ! उस देवता की नहीं पाऊँ ? जो कोई उसके दर्शन करा दे, बाधी जायदाद उसके मोछावर कर दूँ—प्यारे पड़ित ! मेरे अपराध क्षमा करो। मैं अंधा था, अज्ञान था। अब मेरी बाँह पकड़ो। मुझे दूबने से बचाओ। इस अनाथ बालक पर तरस जाओ।

हितापी और मन्थनियों का समूह सामने खड़ा था। कुँवर साहब ने उनकी ओर अघातुनों आँखों में देखा। सच्चा हितापी कही देस न पड़ा। सबके चेहरे पर स्वार्थ की झलक थी। निरामा से आँखें मूँद लीं। उनकी हथो पूट-पूट कर रो रही थी। निदान उसे लज्जा त्यागनी पड़ी। वह रोती हुई पान खा कर धोली—यागनाथ, मुझे और इस असहाय बालक को किम पर छोड़ जाते हो ?

कुँवर साहब ने धीरे से कहा—पड़ित दुर्गानाथ पर। वे जल्द आवेंगे। उनसे कह देना—कि मैंने सब कुछ उनके भेट कर दिया। यह अंतिम बसीयत है।

## आप-वीती

**प्रायः** अधिकांश साहित्य-सेवियों के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब पाठकगण उनके पास थड़ा-पूरा पत्र भेजने लगते हैं। कोई उनकी रचना-शैली की प्रशंसा करता है, कोई उनके सद्बिचारों पर मुग्ध हो जाता है। लेखक को भी कुछ दिनों से यह सोभाग्य प्राप्त है। ऐसे पत्रों को पढ़ कर उनका हृदय कितना गद्गद हो जाता है। इसे किसी साहित्य-सेवी हो से पूछना चाहिए। अपने फटे कंबल पर बैठे हुआ वह पर्व और आत्मगौरव की लहरों में डूब जाता है। भूल जाता है कि रात को गोली लकड़ों से भंजन पकाने के कारण तिर में कितना दर्द हो रहा था। खटमलों और मच्छड़ों ने रात भर कैसे गीद हारम कर दी थी। 'मैं भी कुछ हूँ' यह अहंकार उसे एक क्षण के लिए उन्मत्त बना देता है। पिछले साल सावन के महीने में मुझे एक ऐसा ही पत्र मिला। उसमें मेरी श्रुद्ध रचनाओं की दिल खोल कर दाद दी गयी थी।

पत्र-प्रेषक महोदय स्वयं एक अच्छे कवि थे। मैं उनकी कविताएँ पत्रिकाओं में अन्तर्गत्त देखा करता था। यह पत्र पढ़ कर फुला न मनाया। उसी वक्त अनाव लिखने बैठा। उस वक्त मैं जो कुछ लिख गया, इस समय याद नहीं। इतना जरूर याद है कि पत्र आदि से अंत तक प्रेम के उद्गारों से भरा हुआ था। मैंने कभी कविता नहीं की और न कोई गद्य-नाम्य ही लिखा; पर भाषा को 'शिता संवार सकता था, उतना संवार। यहाँ तक कि जब पत्र समाप्त करके दुबारा पढ़ा तो कविता का आनंद आया। सारा पत्र - भाव-आलित्य ■ पारपूर्ण था। पाँचवे दिन कवि महोदय का दूसरा पत्र जा पहुँचा। वह पहले पत्र से भी कहीं अधिक अर्मस्पर्शी था। 'प्यारे भैया !' कह कर मुझे, सम्बोधित किया गया था; मेरी रचनाओं की सूची और प्रकाशकों के नाम-ठिकाने पूछे गये थे। अंत में यह शुभ समाचार कि 'मेरी पत्नी जी को आपके ऊपर बड़ी भड़ा है। वह बड़े प्रेम में आपकी रचनाओं को पढ़ती है। कहीं पढ़ रही है कि आपका विवाह कहाँ हुआ है। आपकी सख्तों कितनी है तथा आपका कोई कोटो भी है ? हो तो कृपया

भेज दीजिए ।” मेरी जन्म-भूमि और वंशावली का पता भी पूछा गया था । इस पत्र, विनयेत उसके अंतिम समाचार ने मुझे पुलकित कर दिया ।

यह पहला ही अवसर था कि मुझे किंगी महिला के मुख से, चाहे वह प्रतिनिधि द्वारा हो क्यों न हो, अपनी प्रशंसा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । गरूर का नशा छा गया । धन्य है भगवान् ! अब स्मृतियाँ भी मेरे कृत्य की सराहना करने लगीं । मैंने तुरन्त उत्तर लिखा । जितने कर्णप्रिय शब्द मेरी स्मृति के कोप में थे, मय खर्च कर दिये । मैत्रो और वयुत्त्व से सारा पत्र भरा हुआ था । अपनी वंशावली का वर्णन किया । कदाचित् मेरे पूर्वजों का ऐसा कीर्ति-भाज किसी भाट ने भी न किया होगा । मेरे दादा एक जमींदार के कार्रदे थे, मैंने उन्हें एक बड़ी रियासत का “नज़र” बतलाया । अपने पिता को, जो एक दफ्तर में, क्लर्क थे, उसे दातार का प्रधानाध्यक्ष बना दिया । और कास्तकारी की जमींदारी बना देना तो साधारण बात थी । अपनी रचनाओं की मर्यादा तो न बढ़ा सका, पर उनके महत्त्व, आदर और प्रचार का उल्लेख ऐसे शब्दों में किया, जो नम्रता की बोट में अपने गर्व को छिपाते हैं । कील नहीं जानता कि बहुधा ‘तुच्छ’ का अर्थ उससे विपरीत होता है, और ‘दोल’ के माने कुछ और ही समझे जाते हैं । स्पष्ट में अपनी बड़ाई करना उच्छृङ्खलता है, मगर साकेतिक शब्दों से आप इसी काम को बड़ी आसानी से पुरा कर सकते हैं । खैर, मेरा पत्र ममाप्त हो गया और तत्क्षण लेटरबक्स के पेट में पहुँच गया ।

“इसके बाद दो सप्ताह तक कोई पत्र न आया । मैंने उन पत्र में अपनी गूढ़णी की ओर से भी दो-चार सम्योचित बातें लिख दी थी । आशा थी, घनिष्ठता और भी घनिष्ठ होगी । कही कविता में मेरी प्रशंसा हो जाय, तो क्या पूछना ! फिर माहित्य-समाचार में मैं हो नजर आऊँ । इस चपुप्पो से कुछ निराशा होने लगी ; लेकिन इस डर से कि कही कवि जो मुझे मतलबी अथवा Sentimental न समझ लें, कोई पत्र न लिख सका ।”

“आरविन का महोना था, और तीसरा पहर । रामलीला की, धूम मची हुई थी । मैं अपने एक मित्र के घर चला गया था । ताश की बाजी हो रही थी । सहसा एक महाशय मेरा नाम पूछते हुए आये और मेरे पास की कुर्सी पर बैठ गये । और मेरा उनसे कभी का परिचय न था । सोच रहा था, वह कौन

आरमो है और यहाँ कैसे आया ? पार लोग उन महानय की ओर देर कर आपस में इशारे-बाजियाँ कर रहे थे । उनके आकार-प्रकार में कुछ नवीनता अवश्य थी । श्यामवर्ण नाटा डील, मुख पर चेचक के दाग, नंगा सिर, बाल सँवारे हुए, शिफाँ सादी कमीज, गले में फूलों की एक माला, पैर में फूल-बूट और हाथ में एक मोटी-सी पुस्तक !

मैंने विस्मित हो-कर नाम पूछा ।

उत्तर मिला—मुझे उमापतिनारायण कहते हैं ।

मैं उठ कर उनके गले से लिपट गया । यह वही बन्धि महोदय थे, जिनके कई प्रेम-पत्र मुझे मिल चुके थे । कुशल-समाचार पूछा । पान-इलायची में खातिर की । फिर पूछा—आपका भाना कैसे हुआ ?

उन्होंने कहा—मकान पर चलिए, तो सब वृत्तान्त कहूँगा । मैं आपके घर गया था । वहाँ मालूम हुआ, आप यहाँ हैं । पूछता हुआ चला आया ।

मैं उमापति जी के साथ घर चलने को उठ खड़ा हुआ ! जब कमरे के बाहर निकल गये, तो मेरे मित्र ने पूछा—यह कौन माहब है ?

मैं—मेरे एक नये दोस्त हैं ।

मित्र—अस इतने होशियार रहिएगा । मुझे तो उधरके से मालूम होते हैं ।

मैं—आपका अनुमान गलत है । आप हमेशा आरमो को उसकी सज-भज से परवा कर रहे हैं । पर मनुष्य कपड़ों में नहीं, हृदय में रहता है ।

मित्र—खैर ये रहस्य की बातें तो आप जानें; मैं आपको आगाह क्यों देता हूँ ?

मैंने इसका कुछ जवाब नहीं दिया । उमापति जी के साथ घर पर आया । शानाद से भोजन भोगाया । फिर बातें होने लगी । उन्होंने मुझे अपनी कई कविताएँ सुनायी । स्वर बहुत सरस और मधुर था ।

कविताएँ तो मेरी समझ में साफ न आयी, पर मैंने तारीफों के पुल बांध दिये । झूम-झूम कर बाह, बाह ! करने लगा; जेमे मुझमें चढ़ कर कोई काव्य-रमिक ससार में न होगा । संध्या को हम रामलीला देखने गये । लौट कर उन्हें फिर भोजन कराया । अब उन्होंने अपना वृत्तान्त सुनाना शुरू किया । इस समय यह अपनी पत्नी को लेने के लिए कानपुर जा रहे हैं । उनका मकान कानपुर

ही में है। उनका विचार है कि एक मासिक पत्रिका निकालें। उनकी कविताओं के लिए एक प्रकाशक १,००० रु० देता है, पर उनकी इच्छा तो यह है कि उन्हें पहले पत्रिका में क्रमशः निकाल कर फिर अपनी ही लागत से पुस्तकाकार छपवायें। कानपुर में उनकी जमींदारी भी है, पर वह साहित्यिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। जमींदारी से उन्हें घृणा है। उनकी स्त्री एक कन्या-विद्यालय में प्रधानाध्यापिका है। आधी रात तक बातें होती रही। अब उनमें में अधिकारवाद नहीं है। हाँ! इतना याद है कि हम दोनों ने मिल कर अपने भावी जीवन का एक कार्य-क्रम तैयार कर लिया था। मैं अपने भाग्य को सचहता था कि भगवान् ने बैठे-बैठाये ऐसा सच्चा मित्र भेज दिया। आधी रात बीत गयी, तो सोये। उन्हें दूसरे दिन ८ बजे की गाड़ी से जाना था। मैं जब सो कर उठा, तब ७ बज चुके थे। उमापति जी हाथ-मुँह धोये तैयार बैठे थे। बोले—अब आता दौजिए—लौटते समय इधर हो से जाऊँगा। इस समय आपकी कुछ कह दे रहा हूँ। धमा कीजिएगा। मैं कल चला, तो प्रातःकाल के ४ बजे थे। दो बजे रात से पड़ा जाग रहा था कि बही नींद न आ जाय। बतकि यो समझिए कि सारी रात जागना पड़ा, क्योंकि चम्बे को बिता लगी हुई थी। गाड़ी में बैठा तो सपकिया आने लगी। कोट उतार कर रख दिया और लेट गया, तुरन्त नींद आ गयी। मुगलसराय में नींद सुन्धी। कोट गायब! नीचे-ऊपर, चारों तरफ देखा, कहीं पता नहीं। समझ गया, किसी महापय में उड़ा दिया। सोने की सजा मिल गयी। काँट में ५० रु० खर्च के लिए रखे थे; वे भी उसके साथ उड़ गये। आप मुझे ५० रु० दें। पत्नी को मैके से लाना है; कुछ लपड़े धीरे-धीरे ले जाने पड़ेंगे। फिर समुराल में सैकड़ों तरह के नेग-जोग लगते हैं। कदम-कदम पर रुपये खर्च होते हैं। न खर्च कीजिए, तो हँसी हो। मैं दूर से लौटूँगा, तो देता जाऊँगा।

मैं बड़े संकोच में पड़ गया। एक बार पहले भी धोखा खा चुका था। सुगंत भ्रम हुआ कहीं जबकी फिर वही दशा न हो। लेकिन घोर ही मन के इन अविश्वास पर हर्जित हुआ। ससार में सभी मनुष्य एक-त्रे नहीं होते। यह बेचारे इतने सज्जन हैं। इस समय सकट में पड़ गये हैं। और मैं मिथ्या सदेह में पड़ा हुआ हूँ। घर में जाकर पत्नी ने कहा—गुन्हारे पास कुछ रुपये तो नहीं हैं?

स्त्री—क्या करोगे ?

मैं—मेरे मित्र जो कल आये हैं, उनके रुपये किसी ने गली में चुरा लिये। उन्हें बीबी को बिदा कराने समुदास जाना है। लौटती बार देने जायेंगे।

पत्नी ने व्यर्थ करके कहा—तुम्हारे यहाँ जितने मित्र आते हैं, सब तुम्हें उगले हो आते हैं, सभी संकट में पड़े रहते हैं। मेरे पास रुपये नहीं हैं।

मैंने मुदामद करते हुए कहा—चाओ दे दो। बेचारे तैयार सड़े हैं। गली छूट जायगी।

स्त्री—कह दो, इस समय घर में रुपये नहीं हैं।

मैं—यह कह देना आसान नहीं है। इसका अर्थ तो यह है कि मैं दरिद्र ही नहीं, मित्र-हीन भी हूँ, नहीं तो क्या मेरे क्रिये ५० ६० का भी इतिजाम न हो सकता। उमापति को कभी बिदावा न आयेगा कि मेरे पास रुपये नहीं हैं। इससे तो कही अच्छा हो कि साफ-साफ यह कह दिया जाय कि 'हमको आप पर भरोसा नहीं है, हम आपको रुपये नहीं दे सकते।' कम से कम अपना पदार्थ तो बचा रह जायगा।

श्रीमती ने झुंझला कर संदूक की कुंजी मेरे आगे फेंक दी और कहा—तुम्हें जितना बहस करना आता है, उतना कही आदमियों को परखना आता, तो अब तुक आदमी हो गये होते ! छे जाओ, दे दो। किसी तरह तुम्हारी मरजाद तो धनी रहे। लेकिन उधार समझ कर मत दो, यह समझ लो कि पानी में कंके डालते हैं।

मुझे आम खाने से काम था, पेड़ गिनने से नहीं। चुपके से रुपये निकाले और ला कर उमापति को दे दिये। फिर लौटती बार आ कर रुपये दे जाने का आश्वासन दे कर वह चल दिये।

मातर्वे दिन शाम को वह घर से लौट आये। उनकी पत्नी और पुत्री भी साथ थी। मेरी पत्नी ने धक्कर और दहो खिला कर उनका स्वागत किया। मुँह दिखायी के २ ६० दिये। उनकी पुत्री को भी मिठाई खाने को २ ६० दिये। मैंने समझा था, उमापति आते ही आते मेरे रुपये गिनने लगेंगे; लेकिन उन्होंने पहर रात गये तक रुपयों का नाम भी नहीं लिया। जब मैं घर में सोने गया, तो बीबी से कह—दुन्दुंते दो रुपये नहीं दिये जी !

पत्नी ने व्यंग्य से हँस कर कहा—तो क्या सचमुच तुम्हें आशा थी कि वह आते ही आते तुम्हारे हाथ में रुपये रख देगे ? मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि फिर पाने की आशा से रुपये मत दो, यही समझ लो कि किसी मित्र को, सहायतायें दे दिये । लेकिन तुम भी विचित्र आदमी हो ।

मैं लज्जित और चुप हो रहा । उमापति जी दो दिन रहे । मेरी पत्नी उनका पथोचित आदर-सत्कार करती रही । लेकिन मुझे उतना संतोष न था । मैं समझता था, इन्होंने मुझे धोखा दिया ।

तीसरे दिन प्रातः काल वह चलने को तैयार हुए मुझे अब भी आशा थी कि वह रुपये दे कर जायेंगे । लेकिन जब उनकी नयी रामकहानी सुनी, तो सन्नाटे में आ गया । वह अपना दिलार बाँधते हुए बोले—बड़ा ही खेद है कि मैं अबकी बार आपके रुपये न दे सका । बात यह है कि मकान पर पिता जी से नोट ही नहीं हुई । वह तड़मोल-बमूल करने गाँव चले गये थे । और मुझे इतना अंतर्काश न था कि गाँव तक जाता । रेल का रास्ता नहीं है । बैल-गाड़ियों पर जाना पड़ता है । इसलिए मैं एक दिन मकान पर रह कर समुद्राल चला गया । वही सब रुपये खर्च हो गये । बिदाई के रुपये न मिल जाते, तो यहाँ तक आना कठिन था । अब मेरे पास रेल का किराया तक नहीं है । आप मुझे २५ रु० और दे दें । मैं वहाँ जाते ही भेज दूँगा । मेरे पास इसके तक का किराया नहीं है ।

जी मैं तो आया कि ठका-सा जवाब दे दूँ, पर इतनी अशिष्टता न हो सकी । फिर पत्नी के पास गया और रुपये माँगे । अबकी उन्होंने बिना कुछ बहने-मुने रुपये निकाल कर मेरे हवाले कर दिये । मैंने उग्रोसीन भाव से रुपये उमापति जी को दे दिये । जब उनकी पुत्री और अर्मागिनी जीने से उतर गयी, तो उन्होंने बिस्तर उठाया और मुझे प्रणाम किया । मैंने बैठे-बैठे सिर हिला कर जवाब दिया । उन्हें सबक तक पहुँचाने भी न गया ।

एक सप्ताह के बाद उमापति जी ने लिखा—मैं कार्यवत्त बरत रहा हूँ । लौट कर रुपये भेजूँगा ।

१५ दिन के बाद मैंने एक पत्र लिख कर कुशल-समाचार पूछे । कोई उत्तर न आया । १५ दिन के बाद फिर रुपये का एकाजा किया । उसका भी कुछ

जवाब न मिला। एक महीने के बाद फिर तकाना किया। उसका भी वही हाल। एक रजिस्ट्रारो पर भेजा। वह पहुँच गया, इसमें संदेह नहीं; लेकिन जवाब उसका भी न आया। समझ भया, समझदार जोरू ने जो कुछ कहा था, वह अशरशः सत्य था। निराशा हो कर चुप हो रहा।

इन पत्रों की मने पत्नी से चर्चा भी नहीं की और न उसी ने कुछ इस बारे में पूछा।

२

हम कपट-व्यवहार का मुक्त पर वही अगर पड़ा जो साधारणतः स्वाभाविक रूप से पड़ना चाहिए। कोई ऊँची और गहरी आत्मा इस छल पर भी बटल रह सकती थी। उसे यह समझ कर संतोष हो सकता था कि मैंने अपने कर्तव्य को पूरा कर दिया। यदि श्रष्टाओं ने श्रृण नहीं चुकाया, तो मेरा क्या अपराध! पर मैं इतना उदार नहीं हूँ। यहाँ तो महीनों सिर खपाता हूँ, कलम पिमता हूँ, सब जा कर नगद-नारायण के दर्शन होते हैं।

इसी महीने की बात है। मेरे यज्ञालय में एक नया कंपोजीटर बिहार-प्रांत से आया। काम में चतुर जान पड़ता था। मैंने उसे १५ रु० मासिक पर नौकर रख लिया। पहले किसी अँगरेजी स्कूल में पढ़ता था। असहयोग के कारण पढ़ना छोड़ बैठा था। परवालो ने किसी प्रकार की सहायता देने से इनकार किया। बिबस हो कर उसने जीविका के लिए यह पेशा अस्तिभार कर लिया। कोई १०-१८ वर्ष की उम्र थी। स्वभाव में गंभीरता थी। बात-चीत बहुत सलीके से करता था। यहाँ आने के तीसरे दिन बुखार आने लगा। दो-चार दिन तो ज्यो-र्यों करके मारते, लेकिन जब बुखार न छूटा, तो पबरा गया। घर की माद आयी। और कुछ न सही, घरवाले क्या दवा-दरपन भी न करेंगे। मेरे पास आ कर बोला—महानय, मैं बीमार हो गया हूँ। आप कुछ रुपये दे दें, तो घर चला जाऊँ। वहाँ जाते ही रुपये का प्रबंध करके भेज देंगा। वह वास्तव में बीमार था। मैं उससे अली अलि परिचित था। यह भी जानता था कि यहाँ रह कर वह कभी स्वास्थ्य-लाभ नहीं कर सकता। उसे सचमुच सहायता की जरूरत थी; पर मुझे शक हुई कि कहीं यह भी रुपये हजम न कर पाय। जब एक बिहार-श्रील, मुयोग्य, विद्वान्-पुरुष धाँखा दे सकता है, तो ऐसे अर्द्धशिक्षित नवयुवक से कैसे यह आशा की जाय कि वह अपने बचन का पालन करेगा?



मैं कई मिनट तक धीरे सड़क में पड़ा रहा। अंत में बोला—भई, मुझे तुम्हारी दगा पर बहुत दुःख है। मगर मैं इस समय कुछ न कर सकूंगा। बिलकुल खाली हाथ हूँ। खेद है।

यह लोग जवाब मुन कर उनकी आँखों में आँसू गिरने लगे। वह बोला—आप जाइँ नो कुछ न कुछ प्रबंध अवश्य कर सकते हैं। मैं जाते ही आपके रुपये भेज दूँगा।

मैंने दिल में कहा—यहाँ तो तुम्हारी नीयत साफ है, लेकिन पर पहुँच कर भी वही नीयत रहेगी, इसका क्या प्रमाण है? नाँपल साफ रहने पर भी मेरे रुपये दे सकोगे या नहीं यहो कौन जाने? कम से कम मुझे समूल करके वा मेरे पास कोई सापन नहीं है। प्रगट में कहा—इसमें मुझे कोई मदेह नहीं है, लेकिन गैर है कि मेरे पास रुपये नहीं हैं। हाँ, तुम्हारी जितनी तनखाह निकलती हो वह ले सकते हो।

उसने कुछ जवाब नहीं दिया, कि-नर्तन-विमूढ़ को तरह एक बार आकाश को ओर देखा और चला गया। मेरे हृदय में कठिन बेचना हुई। अपनी स्वार्थ-पणा पर लानि हुई। पर अंत को मैंने जो निर्दयता किया था उसी पर स्थिर रहा। इस विचार में मन की मतोष हो गया कि मैं ऐसा कहीं का धनी हूँ जो जो रुपये पानी में डेँकता फिई।

यह है उस कष्ट का परिणाम, जो मेरे कवि चित्र ने मेरे साथ किया।

मानूस नहीं, भागे चल कर इस निर्दयता का क्या दुःफल निकलता, पर मौभाग्य से उसकी नीयत न जायी। ईश्वर को मुझे इस अपमान से बचाना मजूर था। अब वह आँखों में आँसूभरे मेरे पास से चला, तो कार्यालय के एक क्लर्क, गं० पृथ्वीनाथ से उसकी बेट हो गयी। पंडित जी ने उससे हाल पूछा। पूरा वृत्तान्त मुन लेने पर बिना किसी आगे-पीछे के उन्होंने १५ ६० तिकाल कर उमे दे दिये। ये रुपये उन्हें कार्यालय के मुनीष में उधार लेने पड़े। मुझे यह हाल मानूस हुआ, वो हृदय के ऊपर मे एक बोझ-सा उतर गया। अब वह बेचारा मने से अपने घर पहुँच जायगा। यह संतोष मुफ्त ही में प्राप्त हो गया। कुछ अपनी नीयता पर लज्जा भी आयी। मैं लंबे-लंबे लेखों में दया, मनुष्यता और सद् व्यवहार का उपदेश किया करता था, पर अवसर पड़ने पर साफ जान

बचा कर निकल गया ! और, यह बेचारा नलक, जो मेरे लेखों का भक्त था, इतना उदार और दयाशील निकला ! गुरु गुड़ ही रहे, चेला शक्कर हो गये । और, उसमें भी एक अंग-पूर्ण संतोष था कि मेरे उपदेशों का अमर मुक्त पर न हुआ, न मही; दूसरो पर तो हुआ ! चिराग के तले अंधेरा रहा तो क्या हुआ, उसका प्रकाश तो फैल रहा है ! पर, कहीं बचा को छपये न मिले ( और शायद ही मिलें, इसकी बहुत कम आशा है ) तो खूब छकेंगे । हजरत को आड़े हाथों मूंगा । किंतु मेरी यह अभिलाषा न पूरी हुई । पाँचवें दिन रुपये आ गये । ऐसी और आँखें खोल देनेवाली बातना मुझे और कभी नहीं मिली थी । झरियत यही थी कि मैंने इस घटना की चर्चा स्त्री में नहीं की थी; नहीं तो मुझे घर में रहना भी मुश्किल हो जाता ।

३

उपयुक्त वृत्तांत लिख कर मैंने एक पत्रिका में भेज दिया । मेरा उद्देश्य केवल यह था कि जनता के सामने कपट-व्यवहार के कुपरिणाम का एक दृश्य रखूँ । मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कोई प्रत्यक्ष फल निकलेगा । इन्हीं से जब चौथे दिन अनायास मेरे पास ७५ रु० का मनीऑर्डर पहुँचा, तो मेरे ध्यान की सीमा न रही । प्रेषक वही महाशय थे—उमापति । कूपन पर केवल "क्षमा" लिखा हुआ था । मैंने रुपये ले जा कर बत्ती के हाथों में रख दिये और कूपन दिल्लाया ।

उसने अगमने भाव से कहा—इन्हें ले जा कर बत्ती से अपने संतूक में रखो । तुम ऐसे लोभी प्रकृति के मनुष्य हो, यह मुझे आज्ञात हुआ । थोड़े-डे रुपये के लिए किसी के पीछे पड़े झाड़ कर पड़ जाना सजगता नहीं है । जब कोई निश्चित और विचारशील मनुष्य अपने बचन का पालन न करे, तो यही समझना चाहिए कि वह बिकरा है । विषय मनुष्य को बार-बार तकाजों से लज्जित करना भलमंमो नहीं है । कोई मनुष्य, जिसका सर्वथा नैतिक पतन नहीं हो गया है, यथाशक्ति किसी को थोखा तही देता । इन रुपयों को मैं तब तक अपने पास नहीं रखूँगी, जब तक उमापति का कोई पत्र न आ जायगा कि क्यों रुपये भेजने में इतना विलंब हुआ ।

पर इस समय में ऐसी उदार बातें सुनने को तैयार न था । दूबा हुआ घन मिल गया, इसकी खुशी से फूला नहीं समाता था ।

## राज्य-भक्त

सुम्मा का समय था। लखनऊ के बादशाह नासिरुद्दीन अपने मुसाहबों और दरबारियों के साथ बाग की सैर कर रहे थे। उनके मिर पर रत्न-जटित मुकुट की जगह अंगरेजी टोपी थी। वस्त्र भी अंगरेजी ही थे। मुसाहबों में पाँच अंगरेज थे। उनमें से एक के कंधे पर सिर रख कर बादशाह चल रहे थे। तीन-चार हिंदुस्तानी भी थे। उनमें एक राजा बस्तावरसिंह थे। वह बादशाही सेना के अग्रपंक्ति में थे। उन्हें सब लोग "जनरल" कहा करते थे। वह अर्धेड आदमी थे। शरीर खूब गढ़ा हुआ। लखनवी पहनावा उन पर बहुत सजता था। मुख से बिचार-धीलता झलक रही थी। दूसरे मझाब का नाम रोमानुसोला था। वह राज्य के प्रधान मंत्री थे। बड़ी-बड़ी मूर्छें और नाटा-डोल था, जिसे ठँका करने के लिए वह तन कर चलते थे। नैत्रों से सब टपक रहा था। दोप लोंगों में एक कोतवाल या जौर दो बादशाह के रक्षक। यद्यपि अभी १९वीं शताब्दी का आरंभ ही था, पर बादशाह ने अंगरेजी रहन-सहन अख्तियार कर ली थी। भोजन भी प्रायः अंगरेजी ही करते थे। अंगरेजों पर उनका असीम विश्वास था। वह सदैव उनका पक्ष लिया करते थे। मजाल न थी कि कोई बड़े-से-बड़ा राजा या राजकर्मचारी किसी अंगरेज से बराबरी करने का माहस कर सके।

अगर किसी में यह हिम्मत थी, तो वह राजा बस्तावरसिंह थे। उनसे कंपनी का बहुत बड़ा झगड़ा अधिकार न देना जाता था, कंपनी को उस सेना की सहायता जो उसने अवध के राज्य की रक्षा के लिए लखनऊ में नियुक्त की थी, दिन-दिन बढ़ती जाती थी। उसी परिमाण से सेना का व्यय भी बढ़ रहा था। राज-दरबार उसे बुझा न सकने के कारण कंपनी का ज़ुल्मी होता जाता था। बादशाही सेना की दया होने से हीनतर होजा जाती थी। उसमें न संगठन था, न बल। वर्रातों तक सिपाहियों का वेतन न मिलता था। दास्य सन्नी पुराने थे। वर्दी फटी हुई। कबाब का नाम नहीं। कोई उनका पूछनेवाला न था। अगर राजा बस्तावरसिंह वेतन-वृद्धि या नये दास्यों के सम्बन्ध में कोई प्रयत्न करते,

तो कम्पनी का रेजीडेंट उसका घोर विरोध और राज्य पर विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया का दोषारोपण करता था। उपर मे डाँट मड़खी तो बादशाह अपना गुस्मा राजासाहब पर उतारते। बादशाह के सभी अँगरों मसाहब राजासाहब से संकित रहते और उनकी जड़ खोदने का प्रयास किया करते थे। पर वह राज्य का सेवक एक ओर अबदेलना और दूसरी ओर से मार विरोध महुते हुए भी अपने कर्तव्य का पालन करता जाता था। मजा यह कि मैना भी उनसे संतुष्ट न थी। सेना मे अधिकांश लखनऊ के छोहदे और गुंडे भरे हुए थे। राजा साहब जब उन्हें हटा कर अच्छे-अच्छे जवानों की भरती करने की चेष्टा करने, तो छारी मैना मे हाहाकार मच जाता। लोगों को शंका होती कि यह राजपूतों की सेना बना कर कहीं राज्य ही पर तो हाथ मही बखाना चाहते? इसलिए मुगलमान भी उनसे बदगुमान रहते थे। राजा साहब के मन मे बार-बार प्रेरणा होती कि इस पद को त्याग कर चले जायें, पर यह भय उन्हें रोकता था कि भरे हटते ही अँगरों की बन आवेंगी और बादशाह उनके हाथों मे कठपुतली बन जावेंगे, रही-सही सेना के साथ अवध-राज्य का अस्तित्व भी मिट जायगा। अतः एव दलनी कठिनाइयों के होते हुए भी चारों ओर बैर-विरोध में पिरे होने पर भी, वह अपने पद से हटने का निश्चय न कर सकते थे। सबसे कठिन समस्या यह थी कि रोहतासदौला भी राजा साहब से खार खाना था। उसे मदैय शंका प्यती कि यह मराठो से मैत्री करके अवध-राज्य को मिटाना चाहते है। इसलिए वह राजा साहब के प्रत्येक कार्य मे बाधा डालता रहता था। उसे अब भी आशा थी कि अवध का मुसलमानी राज्य जबर जोबित रह मरता है, तो अँगरों के संरक्षण में, अन्यथा वह अवश्य हिंदुओं की बढ़ती हुई शक्ति का श्रास देने जायगा।

वास्तव मे बस्तावरसिंह की दया अत्यंत कटु थी। वह अपनी मधुराई से जिह्वा की भीति दांतों के जोर से पड़े हुए अपना काम किये जाते थे। यों तो वह स्वभाव के अस्वहृदय थे, अपना काम निनालने के लिए मधुरता और मनुष्यता, लोल और विनय का आवाहन करते रहते थे। इससे उनके व्यवहार में कृत्रिमता आ जाती थी और वह शत्रुओं को उनकी ओर से और भी सशंक बना देती थी।

बादशाह ने एक अंगरेज-मुसाहब ने पूछा—तुमको भालूम है, मैं तुम्हारी कितनी खातिर करता हूँ ? मेरी मन्तव्यता में किसी की मजाल नहीं कि वह किसी अंगरेज को कड़ी निगाहों में देख सके ।

अंगरेज मुसाहब ने मिर लुका कर कहा—हम हुजूर की इन मिहरबानी को कभी नहीं भूल सकेंगे ।

बादशाह—इमामहुमैन की कसम, अगर यहाँ कोई आदमी मुझे तकलीफ दे, तो मैं उसे फौरन जिंदा शिवाय में चुनवा दूँ ।

बादशाह की आदत थी कि वह बहुधा अपनी अंगरेजी टोपी हाथ में ले कर उसे उँगली पर नधाने लपने थे । रोज-रोज नधाने-नचाते टोपी में उँगली का धर हो गया था । हम नम्र जो उन्होंने टोपी उठा कर उँगली पर रखी तो टोपी में छेद हो गया । बादशाह का ध्यान अंगरेजों की नरक था । बस्तावरामह बादशाह के मुँह से ऐसी बात सुन कर कबाब हुए जाने थे । उक्त कथन में कितनी खुशामद, कितनी नीबता और अवध की प्रजा तथा राजों का कितना अपमान था ! और लोग तो टोपी का छिद्र देख कर हँसने लगे, पर राजा बस्तावरामह के मुँह में अनायास निकल गया—हुजूर, राज में मुराव हो गया ।

राजा साहब के शत्रुओं ने तुरत कानों पर उँगलियाँ रख लीं बादशाह को भी ऐसा भालूम हुआ कि राजा ने मुझ पर ध्यय किया । उनके तेवर बदल गये । अंगरेजों और अन्य मनामदों ने इस प्रकार काना-फूली मार दी, जैसे कोई महान् अनर्थ हो गया । राजा साहब के मुँह से अनर्गल शब्द अवश्य निकले । इसमें कोई संदेह नहीं था ! मनव है, उन्होंने जान-बूझ कर ध्यय न किया हो, उनके दुःखी हृदय ने साधारण चेतावनी को यह तीव्र रूप दे दिया; पर बात बिगड़ जरूर गयी थी । अब उनके शत्रु उन्हें कुचलने के ऐसे मुदर अवसर को हाथ से क्यों जाने देते ?

राजा साहब ने मन्त्रा का यह रस देखा, तो मून मर्द हो गया । समझ गये आज शत्रुओं के पजे में फँस गया और ऐसा बुरा फँसा कि भयवान् हो निकालें, तो निचल सकता है ।

बादशाह ने कोतवाल से छाल बाँधें करके कहा—इस नमकहराम को बंद

कर लो और इसी वक्त इसका सिर उठा दो। इसे मालूम हो जाय कि बादशाहों से बेअदबी करने का क्या नतीजा होता है।

कोतवाल को सहसा 'जेनरल' पर हाथ बढ़ाने की हिम्मत न पड़ी। रोमानुसोव्स्का ने उससे इशारे से कहा—खड़े सोचते क्या हो, पकड़ लो, नहीं तो तुम भी इसी भाग में जल जाओगे।

तब कोतवाल ने आगे बढ़ कर बस्ताखर्चसिंह को गिरफ्तार कर लिया। एक क्षण में उनकी मुर्कें कम दो गयी। लोग उन्हें चारों ओर से घेर कर कत्तल करने लगे बले।

बादशाह ने मुसाहबों से कहा—मैं भी यही चलता हूँ। जरा देखूंगा कि नमकहरामों की लाश क्योंकर लड़पती है।

कितनी घोर पसुता थी। यही प्राणी जरा बेर पहले बादशाह का विश्वास-पात्र था।

एकाएक बादशाह ने कहा—पहले इस नमकहराम की खिलबत उतार लो। मैं नहीं चाहता कि मेरी खिलबत की बेइज्जती हो।

फिसकी मजाल थी, जो जरा भी जवान हिला सके। सिपाहियों ने राजा साहब के वस्त्र उतारने शुरू किये। दुर्भाग्यवश उनके एक जेब से पिस्तौल निकल आयी। उसकी दोनों नालियाँ भरी हुई थी। पिस्तौल देखते ही बादशाह की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगी। बोले—कसम है हजरत इमामदुल्लेह को, अब इसको जाँबझो नहीं करूँगा। मेरे साथ भरी हुई पिस्तौल की क्या जरूरत। जरूर इसकी नीयत में फिज़ूर था। अब मैं इसे कुत्ते से नुचवाऊँगा। (मुसाहबों की तरफ देख कर) देखो तुम लोगो ने इसकी नीयत! मैं अपनी आत्मीन के साथ पाले हुए था। आप लोगो के मयात में इसके पास भरी हुई पिस्तौल का निकलना क्या माने रखता है?

अंगरेजों को केवल राजा साहब को नोवा दिवाना मंजूर था। वे उन्हें अपना मित्र बना कर जितना काम निकाल सकते थे उतना उनके मारे जाने से नहीं। इसी से एक अंगरेज-मुसाहब ने कहा—मुझे तो इसमें कोई गैरमुनासिब बात नहीं मालूम होती। जेनरल आपका बाइगेार्ट (रखक) है। उसे हमें सा हथियार-बंद

रहना चाहिए । सामकर जब आपकी विदमत में हो । नहीं मालूम, किस वक्त इसकी ज़रूरत आ पड़े ।

दुमरे अंगरेज-मुनादियों ने भी इस विचार की पुष्टि की । बादशाह के क्रोध की ज्वाला कुछ मान हुई । अगर ये ही बातें किमी हिंदुस्तानी मुसाहब की जवान से निकली होतीं तो उसकी जान की खेयलत न थी । कदाचित् अंगरेजों को अपनी ग्यार-बरता का नमूना दिखाने हो के लिए उन्होंने यह प्रश्न किया था । बोले—कमसे हजारत दसम की, तुम भय के गर गेर के मुँह से उसका धिक्कार छीनना चाहते हो । पर मैं एक न मानूँगा, बुलाओ कप्तान साहब को । मैं उनसे यही सवाल करता हूँ । अगर उन्होंने भी तुम लोगों के खयाल की ताईद की, तो इसकी जान न भूँगा । और अगर उनकी राय इसके विलाफ हुई, तो इस मक्कार को इसी वक्त जहन्नुम भेज दूँगा । मगर सबरदार, कोई उनकी तरफ किमी तरह का इशारा न करे वना मैं जरा भी इ-रिआपत न करूँगा । सब के सब मिर झुकाये बैठे रहे ।

कप्तान साहब से तो राजा साहब के आउरदे, पर इन दिनों बादशाह की सन पर विशेष हुपा थी । वह उन मन्जे राज-मन्तो में थे, जो अपने को राजा का नहीं, राज्य का सेवक समझते हैं । वह दरबार से अलग रहते थे । बादशाह उनके कामों से बहुत संतुष्ट थे । एक आदमी तुरत कप्तान साहब को बुला लाया । राजा साहब की जान उनकी मुट्ठी में थी । रोशनदौला की छोड़ कर ऐसा घायब एक अफिल भी न था, 'बिसुरा हूदम' बाधा और निराशा से न घटक रहा हो । सब मन में भगवान् ने यही प्रार्थना कर रहे थे कि कप्तान साहब किसी तरह से इस समस्या को समझ जायें । कप्तान साहब आये, और उड़ती हुई दृष्टि से मना की ओर देखा । मनी की आँखें नाँचे झुकी हुई थीं । वह कुछ अनिश्चित भाव से मिर झुकाकर खड़े हो गये ।

बादशाह ने पूछा—मेरे मुसाहबों को अपनी जेब में भरी हुई पिस्तौल रखना मुनामिब है या नहीं ?

दरबारियों की नीरवता, उनके आशकित चेहरे और उनकी चिंतायुक्त अधोरा देन कर कप्तान साहब को वर्तमान समस्या की कुछ टोह मिल गयी । वह निर्भीकभाव से बोले—हुनूर, मेरे खयाल में तो यह उनका फर्ज है । बादशाह

के दोस्त-दुश्मन सभी होते हैं। अगर मुमाहब लोग उनकी रक्षा का भार न लेंगे, तो कौन लेगा? उन्हें सिर्फ-मिस्तौल ही नहीं, और भी छिपे हुए हथियारों से सँत रहना चाहिए। न जाने कब हथियारों की जरूरत आ पड़े, तो यह ऐन वक़्त पर कहाँ दौड़ते फिरेंगे?

राजा साहब के जीवन के दिन बाकी थे। बादशाह ने निराग हाँ कर कहा—  
रोशन, इसे क़त्ल मत करना, कालकोठरी में कैद कर दो। मुझसे पूछे बग़ैर इसे जाना-पानी कुछ न दिया जाय। जा कर इसके घर का मारा धाल-असबाब जब्त कर लो और सारे खानदान को जेल में बंद कर दो। इसके मकान की दोवारें जर्मी-शोज़ करा देना। घर में एक फूरी हाँड़ी भी न रहने पाये।

इससे तो यही कही अच्छा था कि राजा साहब ही को जान जाती। खान-दान की बेइज्जती तो न होती, महिलाओं का अपमान तो न होता, बख़्तिता की चोटें तो न सहनी पड़तीं! बिकार को निकलने का मार्ग नहीं मिलता, तो वह मारे शरीर में कैल जाता है। राजा के प्राण तो बचे, पर सारे खानदान को विपत्ति में डाल कर!

रोशनगुला को मुँह माँगी मुराह मिली। उनकी ईर्ष्या कभी इतनी मंजूर न हुई थी। वह मनन था कि आज वह काँटा निकल गया, जो बरसों से हृदय में धुभा हुआ था। आज हिंदू-राज्य का अंत हुआ। अब मेरा निक्का बलेगा। अब मैं समस्त राज्य का विधाता हूँगा। ग़व्वा से पहले ही राजा साहब की सारी स्वावर और जगम संपत्ति कुर्क हो गयी। बूढ़ माता-पिता, सुकामल रमणियाँ, छोटे-छोटे बालक सब के सब जेल में कैद कर दिये गये। कितनी करुण दशा थी। वे महिलाएँ, जिन पर कभी देवतों की भी निशाह न पड़ी थी, खुले मुँह, नंगे पैर, बाँध पसीटती, सहर की भरी हुई, सड़कों और गलियों से होती हुई, खिर झुकाये, शोक-बिषों की भाँति, जेल की तरफ़ जाती थीं। सशस्त्र सिपाहियों का एक बड़ा दल साथ था। जिस पुरुष के एक इयारे पर कई घंटे पहले सारे सहर में हलचल मच जाती, उसी के खानदान को यह दुर्दशा!



उन्हें सभी प्रकार के कष्ट दिये जाते थे। यहाँ तक कि भोजन भी अत्यल्प मात्रा में मिलता था। उनके परिवार को भी अल्प मात्रा में ही मिलता था। लेकिन राजा साहब को बंदी-गृह में एक प्रकार की शांति का अनुभव होता था। वहाँ प्रति-क्षण यह सटका तो न रहता था कि बादशाह मेरी किसी बात से नाराज न हो जाएँ; मुझसे लोग कहें मेरी शिकायत तो नहीं कर रहे हैं। शारीरिक कष्टों का सहना उतना कठिन नहीं, जितना कि मानसिक कष्टों का। यहाँ सब तकलीफें थी, पर मिर पर तलवार तो नहीं लटक रही थी। उन्होंने मन में निश्चय किया कि अब चाहे बादशाह मुझे मुक्त भी कर दें, मगर मैं राज-द्वार में अलग हो रहूँगा। इस राज्य का सूर्य अस्त होनेवाला है, कोई मानवी-शक्ति उसे विनाश-दिशा में लौट होने से नहीं रोक सकती। ये उसी पतन के लक्षण हैं। नहीं तो क्या मेरी राज-भक्ति का यही पुरस्कार मिलना चाहिए था? मैंने अब तक कितनी कठिनाइयों से राज्य को रखा को है, यह भगवान् ही जानते हैं।

‘एक ओर तो बादशाह की निरकुशता, दूसरी ओर बलवान् और युक्ति-मय राजपुत्रों की कूटनीति—इस शिला और जंवर के बीच मैं राज्य को नीका की चलाते रहता कितना कष्टसाध्य था! शामद ही ऐसा कोई दिन गुजरा होगा, जिस दिन मेरा चित्त-प्राण धका से आदोलित न हुआ हो। इस सेवा, भक्ति और उत्साह का यह पुरस्कार है। मेरे मुख से अल्प-शब्द अवश्य निकले, लेकिन उनके लिए इतना कठोर दंड? इससे तो यह कहीं अच्छा था कि मैं कल बर दिया गया होता, अपनी आँखों से अपने परिवार को यह दुर्गति तो न देखता? मुनता है पिता जो को सोने के लिए बचाई नहीं हो गयी है! न जाने हिन्दों पर कैसे-कैसे अत्याचार हो रहे होंगे। लेकिन इतना जानता हूँ कि प्यारे मुसलमानों तक अपने सत्ता की रक्षा करनी; अन्यथा प्राण त्याग देगी। मुझे इन बेड़ियों की परवाह नहीं। पर मुनता है लड़कों के पैरों में भी बेड़ियाँ डाली गयी हैं। यह सब इसी कुटिल रोगनुहीला की शरारत है। जिसका जो चाहे, इस समय सता ले, कुचल ले, मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं। भगवान् में यही प्रार्थना है कि अब ससार से उठा ले। मुझे अपने जीवन में जो कुछ करना था, कर चुका, और उसका सब फल पा चुका। मेरे जैसे आदमियों के लिए संसार में स्थान नहीं है।

राजा इन्हीं विचारों में डूबे थे। सहसा उन्हें अपनी काँठ-कोठरी की ओर किमो के आने की आहट मिली। रात बहुत जा चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा छाया था, और उस अंधकारमय सघाटे में किमो के पैरों की चाप स्पष्ट सुनायी देती थी। कोई बहुत पाँव दबा-दबा कर चला आ रहा था। राजा माहव का कलेजा धक-धक करने लगा। वह उठ कर खड़े हो गये। हम निःशस्त्र और प्रतिहार के लिए असमर्थ होने पर भी बैठे-बैठे चारों का निशाना नहीं बनना चाहते। खड़े हो जाना आत्मरक्षा का अंतिम प्रयत्न है। कोठरी में ऐसी कोई वस्तु न थी, जिसमें वह अपनी रक्षा कर सकते। समझ गये अंतिम समय आ गया। शत्रुओं ने इस तरह मेरे प्राण लेने की ठानी है। अच्छा है, जीवन के साथ इस आपत्ति का भी अंत हो जायगा।

एक क्षण में उनके सम्मुख एक आदमी आ कर खड़ा हो गया। राजा माहव ने पूछा—कौन है ?

उत्तर मिला—मैं हूँ, आपका सेवक।

राजा—ओ हो, तुम हो कप्तान ! मैं घंका में पड़ा हुआ था कि कहीं शत्रुओं ने मेरा बंध करने के लिए कोई दूत न भेजा हो।

कप्तान—शत्रुओं ने कुछ और ही ठानी है। आज बादशाह-सलामत की जान बचती नहीं नजर आती।

राजा—अरे ! यह क्योंकर !

कप्तान—जबसे आपको यहाँ नजरबंद किया गया है, सारे राज्य में हाहाकार मचा हुआ है। स्वार्थी कर्मचारियों ने छूट मचा रखी है। अंगरेजों की सुदाई फिर रही है। जो जी में आता है, करते हैं, किसी को मजाल नहीं कि बूँ कर सके। इन एक महोत्सव में शहर के सैकड़ों बड़े-बड़े रईस मिट गये। रौतनुहीला की बादशाही है। बाजारों का भाव बढ़ता जाता है। बाहर से व्यापारी लोग डर के मारे कोई चीज ही नहीं लाते। दुकानदारों से मनमानी एकमें महमूल के नाम पर बमूल की जा रही है। गल्ले का भाव इतना चढ़ गया है कि कितने ही घरों में चूल्हा जलने की नीबट नहीं आती। गिप्राहियों को अभी तक तनखाह नहीं मिली। वे जा कर दुकानदारों को सूटते हैं। सारे राज्य में बद-बमली हो रही है। मैंने कई बार यह कैफियत बादशाह-सलामत के कारों तक

पहुँचाने की कोशिश की, मगर वह यह तो कह देने है कि मैं इसकी तहकीबात करूँगा, और फिर बेखबर हो जाते हैं। आज शहर के बहुत-से दूकानदार फिराद ले कर आये थे कि हमारे हाल पर निगाह न की गयी, तो हम बाहर छोड़ कर बड़ी और चले जायेंगे। ख़िस्तानो ने उनको मस्त कहा, घमकाया, लेकिन उन्होंने जब तक अपनी सारी मनीबन न बयान कर ली, वहाँ से न हटे। आखिर जब बादशाह-सलामत ने उनको दिलावा दिया, तो चले गये।

राजा—बादशाह पर इतना अमर हुआ, मुझे तो यही ताज्जुब है !

कप्तान—अमर-वमर कुछ नहीं हुआ। यह भी उनकी एक दिल्लगी है। घान की खान मुमाहबों को बुला कर हुक्म दिया है कि आज मैं भैस बदल कर शहर का गस्त करूँगा, तुम लोग भी भैस बदले हुए मेरे साथ रहना। मैं देखना चाहता हूँ कि रिआया क्यों इतनी घबरायी हुई है। सब लोग मुझसे दूर रहे, किसी को न मालूम हो कि मैं कौन हूँ। राजनुद्दौला और पाँचों अंगरेज-मुमाहब साथ रहेंगे।

राजा—तुम्हें क्योंकर यह बात मालूम हो गयी ?

कप्तान—मैंने उसी अंगरेज हुज्जाम को मिला रखा है। दरबार में जो कुछ होता है, उसका पता मुझे मिल जाता है। उसी की सफरिदा से आपकी फिदमन में हाजिर होने का मौका मिला। ( घड़ियाल में १० बजते हैं ) व्याह्र बजे चलने की तैयारी है। बारह बजते-बजते लखनऊ का तख्त खाली हो जायगा।

राजा ( घबरा कर )—क्या इन सबो ने उन्हें कत्ल करने की साजिश कर ली है ?

कप्तान—जी नहीं, कत्ल करने में उनका संझा न पूरा होगा। बादशाह को बाजार की सैर कराते हुए गोमती की तरफ ले जायेंगे। वहाँ अंगरेज मिपाहियों का एक दस्ता तैयार रहेगा। वह बादशाह को फौरन एक गाड़ी पर बिठा कर रेजिडेंसी में ले जायगा। वहाँ रेजिडेंट साहब बादशाह-सलामत को सलतनत में इस्तीफा देने पर मजबूर करेंगे। उसी वक़्त उनसे इस्तीफा लिखा लिया जायगा और इसके बाद रातों-रात उन्हें कलकत्ते भेज दिया जायगा।

राजा—बड़ा ग़ज़ब हो गया। जब तो वक़्त बहुत कम है, बादशाह-सलामत निकल पड़े होंगे ?

कप्तान—गजब क्या हो गया ? इनकी जात से किमें आराम था ? दूसरी हुकूमत चाहे कितनी ही बराबर हो, इसमें अच्छी ही होगी ।

राजा—अंगरेजों की हुकूमत होगी ?

कप्तान—अंगरेज इनसे कहीं बेहतर इतजाम करेंगे ।

राजा ( कण्ठ स्वर से )—कप्तान ! ईश्वर के लिए ऐसी बातें न करो । मुझे मुझसे जरा देर पहले क्यों न यह कफियत बयान की ?

कप्तान ( आश्चर्य में )—आपके साथ तो बादशाह ने कोई अच्छा सलूक नहीं किया !

राजा—मेरे साथ कितना ही बुरा सलूक किया हो, लेकिन एक राज्य की कीमत एक आदमी या सामान को जान से कही ज्यादा होती है । तुम मेरे पैरों की बेइयां गुलामा सकते हो ?

कप्तान—सारे अवध-राज्य में एक भी ऐसा आदमी न निकलेगा, जो बादशाह को सच्चे दिल से दुआ देता हो । दुनिया उनके जुल्म से तग बग गयी है ।

राजा—मैं अपने के जुल्म को गैरों की बंदगी में कही बेहतर खयाल करता हूँ । बादशाह की यह हालत गैरों ही के थरोसे पर हुई है । वह इसी लिए किसी की परवा नहीं करके कि उन्हें अंगरेजों की मदद का यकीन है । मैं इन फिरगियों की चालों को गौर से देखता आया हूँ । बादशाह के निजाज को उन्होंने बिगाड़ा है । उनका मर्यादा यही था, जो हुआ । रिवाज के बिल से बादशाह की इज्जत और भुव्दुत छूट गयी । आज सारा मुल्क बगावत करने पर आमादा है । ये लोग इसी मौके का इंतजार कर रहे थे । वह जानते हैं कि बादशाह की माजूली ( गद्दी से हटाये जाने ) पर एक आदमी भी धाँसू न बहानेगा । लेकिन मैं जताये देता हूँ कि अगर इस वक्त तुमने बादशाह को दुश्मनों के हाथों से न बचाया, तो तुम हमेशा के लिए अपने ही बदन में गुलामी की जंजीरों में बँध जाओगे । किसी गैर कोम के चाकर बन कर अगर तुम्हें वाकियत ( शक्ति ) भी मिले, तो वह वाकियत न होगी, मौत होगी । गैरों के बेरहम पैरों के नीचे पड़ कर तुम भी हाब न हिला सकोगे और यह उम्मीद कि कभी हमारे मुल्क में आईनी सल्तनत ( वैध शासन ) कायम होगी,

हसरत का दाग बन कर रह जायगी। नहीं, मुझमें अभी मुक्त की मुख्यतः बातें हैं। मैं अभी इतना बेजान नहीं हुआ हूँ। मैं इनकी जानानियों से सम्पन्न को हाथ से न जाने दूँगा, अपने को इनके नस्ले दामो मेरों के हाथों न देवूँगा, मुक्त की इच्छा को न भिटने दूँगा, चाहे इस कोषिष में मेरी जान हो वही न पाय। कुछ और नहीं कर सकता, छी अपनी जान तो दे ही सकता हूँ। मेरी बेड़ियाँ खोल दो।

कप्तान—मैं आपका खादिन हूँ, मगर मुझे यह मन्त्राज नहीं है।

राजा ( जोश में आ कर )—जातिन, यह इन बातों का वक्त नहीं है। एक-एक पल हमें तबाही की तरफ लिये जा रहा है। खोल दे ये बेड़ियाँ। जिस घर में आग लगी है, उसके आसपास खुद को नहीं पार करते, कुएँ की तरफ दौड़ते हैं।

कप्तान—आप मेरे मृत्युनि हैं। आपके हुकम में मूर्ख नहीं मोड़ सकता। लेकिन—

राजा—बली करो, बली करो। अपनी तलवार मुझे दे दो। अब इन सरस्वत की बातों का मौका नहीं है।

कप्तान साहब निरन्तर हो गये। सखीव उम्माह में बड़ी संश्रामक पक्षि होती है। यद्यपि राजा साहब के नीति-पूर्ण वार्तालाप ने उन्हें भावुक नहीं किया, तथापि वह अनिवार्य रूप से उनकी बेड़ियाँ खोलने पर तयार हो गये। उसी वक्त जंग के बायोगा की बुद्ध कर कहा—साहब ने हुकम दिया है कि राजा साहब की फौज बाँकाद कर दिया जाय। इसमें एक पल का भी ताम्बोर ( क्लिन्च ) हुई, तो मुम्तारे हक में अच्छा न होगा।

बायोगा की मायूम था कि कप्तान साहब और पि०... में गहरी मैत्री है। अगर साहब माराज हो जायेंगे, तो ऐम्बुहोला की कोई निष्कारिण मेरी रक्षा न कर सकेंगी। उनमें राजा साहब की बेड़ियाँ खोल दीं।

राजा साहब जब तलवार हाथ में ले कर चल से निकले, तो उत्तरा हुकम राज्य-भक्ति की तरफ से आर्पित हो रहा था। उहाँ वक्त पट्टिमल ने ११ बनाये।

आधी रात का समय था। मगर लम्बनऊ की तंग गलियों में खूब बहल-पहल थी। ऐसा मालूम होता था कि अभी ९ बजे होंगे। सराफे में सबसे ज्यादा रोनाक थी। मगर आश्चर्य यह था कि किसी दुकान पर जवाहरात या गहने नहीं दिखायी देते थे। केवल आशमियों के आने-जाने की भीड़ थी। जिसे देखो, पाँच शस्त्रों से सुसज्जित, मूँछे खड़ी किये, ऐंठवा हुआ चला जाता था। बाजार के मामूली दुकानदार भी निःशस्त्र न थे।

सहसा एक आदमी, भारी साज्जा बांधे, गैर की घुटनियों तक नीची कब्जा पहने, कमर में पट्टका बांधे, आ कर एक सराफ को दुकान पर खड़ा हो गया। पान पड़ता था, कोई ईरानी मोशगर है। उन दिनों ईरान के व्यापारों लम्बनऊ में बहुत आते-जाते थे। इन समय ऐसे आदमी का आ जाना अमाधारण बात न थी।

मोशगर का नाम माधोदास था। माधो—रुहिए धीर साहब, कुछ दिखाऊँ ?

मोशगर—सोने का क्या निरख है ?

माधो—( मोशगर के कान के पास मुँह के जा कर ) निरख की कुछ न पूछिए। आज करोड़ एक महीना से बाजार का निरख बिगड़ा हुआ है। माल बाजार ने खाता हँस नहीं। लोभ बचामे हुए है। बाजार में खौर के मारे नहीं लाते। अगर आपको ज्यादा माल दरकार हो, तो बेरे साब गरीबजाने तक सकलौक कीजिए। जेमा माल चाहिए, लीजिए। निरख मनाखिब ही होगा। इसका खमिमा न रहिए।

मोशगर—आजकल बाजार का निरख नहीं बिगड़ा हुआ है ?

माधो—क्या आप हाल ही में बारिद हुए है ?

मोशगर—हाँ, मैं आज ही आया हूँ। कहीं पहले कोन्सी रौनक नहीं बज़र आती। नगड़े का बाजार भी सुस्त था। दाने का एक कीमती पान बहुत तलाश करने पर भी न मिला।

माधो—इनके बड़े किस्मे हैं; कुछ ऐसा ही मुजागल है।

मोशगर—आपुओं का धोर वां नहीं है ? पहले तो यहाँ इस किस्म की बारिशें न होती थीं।

माधो—अब वह कैफियत नहीं है। दिन-बढ़ाते जाके पड़ते हैं। उन्हें कोनवाल क्या, बादशाह-मलामत भी गिरफ्तार नहीं कर सकते। अब और क्या कहूँ। दीवार के भी कान होते हैं। वहाँ कोई मुत्त ले, तो लेने के देवे पड़ जायें।

सोदागर—मेठ जो, आप तो पहलियाँ बुझाने लगे। मैं परदेनी आदमी हूँ, यहाँ किससे कहने जाऊँगा। आखिर बात क्या है? बाजार क्या इतना बिगड़ा हुआ है? नाब को मही जो तरक मग था। सप्राटा छाया हुआ है? मोटी जिन भी दुने दामो पर बिक रही थी।

माधो (इधर-उधर चौकसी आँख में देख कर)—एक महीना हुआ, रोजनुहीला के हाथ में मिपाह-उकेंड का अस्तिगार जा गया है। यह सब उन्हीं की बदतजानी का फल है। उनके पहले राजा वक्तावरामह तुमारे मालिक थे। उनके वक्त में किसी को मजाल न थी कि व्यापारियों को देखी आँख में देख सके। उनका रोंब सभी पर छाया हुआ था। क्षिणियों पर उनकी कड़ो निगाह रहती थी। हुकम था कि कोई फिरंगी बाजार में आए, तो धात का मिपाही उसको देख-भाल करता रहे। अभी यकह से फिरंगी उनमें जला करते थे। आखिर सबों ने रोजनुहीला का मिता कर वक्तावरामह का बेरूमर कैद करा दिया। वग, सब से बाजार में लूट मचो हुई है। सरकारी अमले भलग लूटते हैं। फिरंगी अलग नाकसे-खसोटते हैं। जो चीज चाहते हैं, उग्रा ले, जाते हैं। दाम माँगो तो धमकीयाँ देते हैं। यहाँ दरबार में परिपाश करो, तो उलटे सजा होती है। अभी हाल ही में हम सब मिल कर बादशाह-मलामत को खिदमत में हाजिर हुए थे। पहले तो वह बहुत नाराज हुए, पर आखिर रहन जा गया। बादशाहों का मिबाज ही तो है। हमारे सब रिक्ताने मुनी और तमकीन दी कि हम तहकीकात करेंगे। मगर अभी तक तो वही लूट-खसोट चारो है।

इतने में तीन आदमी राजमूनी ढंग को मिजई पहले आ कर दूकान के सामने खड़े हो गये। माधोदाम उनका रग-उग देख कर चौंका। यहाँ फौज के मिपाहें बनुवा इसी मज-बज में निकलने थे। तीनों आदमी सोदागर को देख कर ठिठके पर उमने उन्हें कुछ ऐसी निगाहों में देखा कि तीनों जाये चले गये। सब सोदागर ने माधोदास से पूछा—इन्हें देख कर तुम क्यों चौंके?

माधोदास ने कहा—ये फौज के सिपाही हैं। जब से राजा बल्हावरसिंह नजर-बंद हुए हैं, इन पर किसी को दाब ही नहीं रही। सड़के सड़क की तरह बाजारों में घनकर लम्बाया करते हैं। सरकार से उत्तर मिलने पर कुछ ठेक तो हैं नहीं। वस, नोन-खसोट करके गुजर करते हैं।—हाँ, ताँ फिर अगर मन्जो हो, तो मेरे साथ घर तक चलिए, आपको माल दियाऊँ।

सौदागर—नहीं भाई, इस वक्त नहीं। गुबह आऊँगा। बेर हो गयी है, और मुझे भी यहाँ की हालत देख कर खौफ मालूम होने लगा है।

यह कह कर सौदागर उसी तरफ चला गया, जिधर वे तीनो राजपूत गये थे। थोड़ी देर में तीन आदमी और सराफे में जाये। एक तो पंडितों की तरह सीधी चपकल पहने हुए था, सिर पर मोल पगिया थी और कंधे पर जरी के काम का थाल। उसके दोनों साथी खिद्यमतगारों के—ये कपड़े पहने हुए थे। तीनों इस तरह इधर-उधर ताक रहे थे, मानो किसी को खोज रहे हों। यों ताकते हुए तीनों आगे चले गये। ईरानी सौदागर तीस नैनो से इधर-उधर देखता हुआ एक मोल चला गया। वही एक छोटा-सा बाग था। एक पुरानी मसजिद भी थी। सौदागर वहाँ ठहर गया। एकाएक तीनों राजपूत मसजिद से बाहर निकल आये और बोले—हुजूर तो बहुत देर तक सराफ की दूकान पर बैठे रहे, क्या बातें हुईं ?

सौदागर ने अभी कुछ जवाब न दिया था कि पीछे से पंडित और उनके दोनों खिद्यमतगार भी आ पहुँचे। सौदागर ने पंडित को देखते ही भात्तना-पूर्ण शब्दों में कहा—मियाँ रोशनूदीला, मुझे इस वक्त तुम्हारे ऊपर इतना गुस्सा आ रहा है कि तुम्हें कुत्तो से नुचवा दूँ। नमकहराम कहाँ का ! पगवाज ! तूने मेरी संस्तनत की तबाह कर दिया ! सारा शहर तेरे जुल्म का रोना रो रहा है ! मुझे आज मालूम हुआ कि तूने क्यों राजा बल्हावरसिंह को कैद करवाया। मेरी अकल पर न जाने क्यों पत्थर पड़ गये थे कि मैं तेरी बिकनी-बुपट्टी बातों में आ गया। इस नमकहरामी की मुझे यह सजा देना कि बेचनेवालों को भी इबस्त ( शिधा ) हो।

रोशनूदीला ने निर्भीकता से उत्तर दिया—आप मेरे बादशाह हैं, इसलिए आपका अदब करता हूँ, यहाँ इसी वक्त इस बद-जवानों का मजा खाना देना।



सुद आप तो महल में हसीनो के साथ ऐत्र किया करते हैं, दूसरो की क्या गरज पड़ी है कि सस्तनत की फिक्र में दुबले हों ? खूब, हम अपना मून जलायें और आप जशन मनायें । ऐसे अहमक कही और रहते होंगे ।

बादशाह ( कोय से कांपने हुए )—मि० ' में तुम्हे हुक्म देता हूँ कि इस नमकहराम को अभी गोन्दी मार दो । मैं इसकी मूरत नहीं देखना चाहता । और, इसी वक्त जा कर इसकी मारी जायदाद जन्त कर लो । इसके खानदान का एक बच्चा भी जिंदा न रहने पाये ।

रोशन—मि० ' में तुमको हुक्म देता हूँ कि इन मुल्क और क्रीम के हुस्मन, रैयन के कातिल और बदचार आदमी को फौरन गिरफ्तार कर लो । यह हम काबिल नहीं कि ताज और तख्त का मालिक बने ।

इतना सुनते ही पाँचों अँगरेज-मुसाहबों ने, जो भंस बढ़ले हुए साथ थे, बादशाह के दोनों हाथ पकड़ लिये और सींचते हुए गोमती नदी की तरफ ले चले । तब बादशाह की आँखें खुली । समझ गये कि पहले ही से यह पश्यश रखा गया था । इधर-उधर देखा, कोई आदमी नहीं । शोर मचाना व्यर्थ था । बादशाहों का नगा उतर गया । दुरवस्था हों वह परीक्षानि है, जो मुल्कमे और रोगन को उधार कर मनुष्य का ध्याय रूप दिखाने देती हैं । ऐसे ही अवसरों पर विदित होता है कि मानव-हृदय पर कृत्रिम भावों का कितना गहरा रंग चढ़ा होता है । एक क्षण में बादशाह को उदडवा और घमड़ में दोनता और विनयशीलता का आधय लिया । बोले—मैंने तो आप लोगों की मरजों के खिलाफ ऐसा कोई काम नहीं किया, जिसकी यह सजा मिले । मैंने आप लोगों को हमेशा अपना दोस्त समझा है ।

रोशन—तो हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, वह भी आपके फायदे ही के लिए कर रहे हैं । हम आपके तिर से मस्तनत का बोझ उतार कर आपको आजाद कर देंगे । तब आपके देश में सखल न पड़ेगा । आप बेफिक्र हो कर हसीनों के मान जिंदगी की बहार लूटिएगा ।

बादशाह—तो क्या आप लोग मुझे तख्त में उतारना चाहते हैं ?

रोशन—नहीं, आपको बादशाहों की बिम्बेदारियों से आजाद कर देना चाहते हैं ।

बादशाह—हज़रत इमाम की कसम, मैं यह जित्नीत न बर्दाश्त करूँगा। मैं अपने धुजुगों का नाम न बुवाऊँगा।

रोशन—आपके धुजुगों के नाम को फिक्र हमें आपसे ज्यादा है। आपकी ऐत-बरस्ती धुजुगों का नाम रोशन नहीं कर रही है।

बादशाह ( दोनता से )—मैं वाश करता हूँ कि आइदा में आप लोगों को शिकायत का कोई मोका न दूँगा।

रोशन—नमीबाज़ों के बाज़ों पर कोई खोजाना हो यकीन कर सकता है।

बादशाह—तुम मुझे जबरइस्ती तल्ल से नहीं उतार सकते।

रोशन—इत धमकियों की ज़रूरत नहीं। चुप-चाप चले बग़िर; मैंने आपको सेज-गाड़ी मिल जायगी। हम आपको इज्जत के साथ ख़वसत करेंगे।

बादशाह—अप जानते हैं, रिवाया पर इसका क्या नज़र होगी ?

रोशन—सूख जालता हूँ ! आपकी हिमायत में एक खैली भी न बैठेगी। कल सारी सलतनत में धो के बिराग जलेंगे।

इतनी देर में सब लोग उम स्थान पर था पड़े, जहाँ बादशाह को ले जाने के लिए सवारी तैयार लड़ी थी। लगभग २५ सघस्र मोरे सिपाही भी लड़े थे। बादशाह सेजगाड़ी को देख कर मन्थल पड़े। उनके शिर की गति सीध हो गयी, जोग और विन्मस्र के नीचे दबी हुई पर्याप्त खजग हो गयी। उन्होंने जोर से छटका दे कर अपना हाथ छुड़ा लिया और नैराश्व-पूर्ण पुस्माइस के साथ परिणाम-अव को त्याग कर, उच्च स्वर से बोले—ऐ छतनऊ के बमनेवालो ! तुम्हारा बादशाह यहाँ दुस्मनों के हाथों कत्ल किया जा रहा है। उसे इनके हाथ में बचाओ दोहो बर्ना पसताओगे !

यह आर्त पुकार आकाश की नीरजता को पीरखी हुई गोमती की लहरों में विलीन नहीं हुई बल्कि सखनज्जालों के हुरगों में था पहुँची। राजा रस्तावरसिंह बदी-मूह से निकल कर नगर-निवासियों को उत्तेजित करते और प्रतिपाद्य रक्षाकारियों के दल को बघाते, बड़े बेग से दौड़े चले जा रहे थे। एक पल का दिलच भी बदयनकारियों के पातक विरोध को मन्थन कर मकदा था। देखते-देखते उनके साथ दो-तीन हजार सघस्र मनुष्यों का दल हो गया था। यह सामूहिक शक्ति बादशाह का और छतनऊ-राज्य का चेहरा सकती थी।

खुद आप तो महल में हमीनों के साथ ऐश किया करते हैं, दूसरो को क्या गरज पड़ी है कि सल्तनत की छिन्न में दुबले हो ? मूव, हम अपना खून जलायें और आप जगन मनायें ! ऐसे बहक कहीं ओर रहते होंगे ।

बादशाह ( क्रोध से काँपने हुए )—मि०—मैं तुम्हे हुक्म देता हूँ कि इस नमकहराम को अभी गोली मार दो । मैं इसकी मूर्त नहीं देखना चाहता । ओर, इसी वक्त जा कर इसको मारी जायदाद जलत कर दो । इसके खानदान का एक बच्चा भी जिंदा न रहने पाये ।

रोशन—मि० मैं तुमको हुक्म देता हूँ कि इन मुल्क और क़ीम के दुस्मन, रैयत के कागिल और बदकार आदमी को फौरन गिरफ्तार कर लो । यह इन काबिल नहीं कि नाब और नख्त का मालिक बने ।

इतना सुनते ही पाँचों अंगरेज-मुसाहबों ने, जो भेद्य बदले हुए साथ थे, बादशाह के दोनों हाथ पकड़ लिये और गीचते हुए सोमती नदी की तरफ ले चले । तब बादशाह की आँखें गुल्लि । समझ सके कि पहले ही में यह पड़पत्र रखा गया था । इधर-उधर देखा, कोई आदमी नहीं । शोर मचाना व्यर्थ था । बादशाही का नशा उतर गया । दुखस्वा ही वह परीक्षामि है, जो मुलुम्मे और रोगन को उतार कर मनुष्य का मधार्थ रूप दिखा देती है । ऐसे ही अवसरों पर विदित होता है कि मानव-हृदय पर कृत्रिम भावों का कितना गहरा रंग चढ़ा होता है । एक क्षण में बादशाह को उद्वेग और घमड़ ने दीनता और विनयशीलता का आश्रय लिया । बोले—मैंने तो आप लोगों की मरजी के मुलाफ ऐसा कोई काम नहीं किया, जिसकी यह मजा मिले । मैंने आप लोगों को हमेशा अपना दोस्त समझा है ।

रोशन—तो हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, वह भी आपके फायदे ही के लिए कर रहे हैं । हम आपके सिर से सल्तनत का बोझ उतार कर आपको आजाद कर देंगे । तब आपके ऐश में मलज न पड़ेगा । आप बेफिक्र हो कर हमीनों के साथ ज़िंदगी की बहार लुटिएगा ।

बादशाह—तो क्या आप लोग मुझे तन्ज में उतारना चाहते हैं ?

रोशन—नहीं, आपकी बादशाही की ज़िम्मेदारियों में आजाद कर देना चाहते हैं ।

बादशाह—हजरत-इमाम की कसम, मैं यह जिल्ला न बदलित करूँगा। मैं अपने बुजुर्गों का नाम न डुबाऊँगा।

रोशन—आपके बुजुर्गों के नाम की किक हमें आपसे ज्यादा है। आपकी ऐश-वरस्ती बुजुर्गों का नाम रोशन नहीं कर रही है।

बादशाह ( दोनता से )—मैं जाग करता हूँ कि भाईदा से आप लोगों को शिवायत का कोई भोका न दूँगा।

रोशन—नौबाजों के बादो पर कोई दोबाना हो वकील कर सकता है।

बादशाह—तुम मुझे जबरदस्ती लश्कर से नहीं उतार सकते।

रोशन—इन घमकियों को ज़रूरत नहीं। बुप-बाप चले बग़ियार; जाने आपको तेज़-भाड़ी मिल जायगी। हम आपको इम्जत के साथ रुबसन करेंगे।

बादशाह—आप जानते हैं, रियाया पर दसका क्या बख़र होगा ?

रोशन—ख़ूब जानता हूँ। आपकी हिमायत में एक डेगली भी न उठेगी। कल सारी मस्लमत में भी के बिराग जलेंगे।

इतनी देर में सब लोग ज़म म्याग पर आ पड़े, जहाँ बादशाह की ले जाने के लिए सवारी तैयार बड़ी थी। ख़बरम २५ सशस्त्र गोरे सिपाही भी लड़े थे। बादशाह सेजगाड़ी को देख कर मचल गये। उनके शीर की गति मोड़ हो गयी, भौल और बिलाम के नीचे दबो हुई बर्षावा ख़ग हो गयी। उन्होंने जोर से झटका दे कर अपना हाथ छूड़ा लिश और नैरास्त्य-पूर्ण बुल्गाहम के साथ परिणाम-भंग को त्याग कर, उल्टे स्वर से बोले—ये लश्कर के बतनेवालों। तुम्हारा बादशाह यहाँ दुस्मनों के हाथों कल किया जा रहा है। देते इनके हाथ से बचाओ दोबो बर्षा बछलाजोमे !

यह बात पुराने अक़ाब की नीरवता की पीरती हुई गोमती की लहरों में मिलीन मही हुई बल्कि लश्करवालों के हृदयों में आ पहुँची। राजा रसदपरसिंह बदी-मुद्द से निकल कर नगर-निवासियों को उत्तेजित करते और प्रतिशय रक्षाकारियों के दिल को बड़ाते, बड़े वेग से दौड़े चले आ रहे थे। एक पल का बिलब भी मध्यमकारियों के पावक विरोध की मज्ज कर गकटा पा। देरते-देरते उनके साथ दो-तीन हजार मसल्ल मनुष्यों का दल हो गया पा। यह सामूहिक उल्लि बादशाह का और लश्कर-राज्य का उद्धार मज्जती थी।

समय सब कुछ था। बादशाह गोरी मेना के पंजे में फँस गये, तो फिर समस्त लखनऊ भी उन्हें मुक्त न कर सकता था। राजा साहब जग-जगो आगे बढ़ते जाते थे, नैराश्य में दिल बैठ जाता था। विफल मनोरथ होने की शका में उत्साह भंग हुआ जाता था। अब तक कही उन लोगों का पता नहीं! अवश्य हम देर में पहुँचे। विद्रोहियों ने अपना काम पुरा कर लिया। लखनऊ राज्य की स्वाधीनता मरदा के लिए विमर्शित हो गयी।

ये छोटा निराम हो कर लौटना ही चाहते थे कि अचानक बादशाह का भार्तानाद सुनायी दिया। कई हजार कठों से आकाश-भेदी ध्वनि निकली—हुजूर को खुदा सलामत रहे। हम फिदा होने को आ पहुँचे।

समस्त दल एक ही प्रबल इच्छा से प्रेरित हो कर, बेगवती अलपारा की भाँति, घटनास्थल की ओर दौड़ा। अशक्त लोग भी मशरूत हो गये। पिछड़े हुए लोग आगे निकल आना चाहते थे। बागं के लोग चाहते थे कि उड़ कर जा पहुँचें।

इन भावमियों की आहूट पाते ही गोरो ने बंदूकें भरी और २५ बंदूकों की बाड़ सर हो गयी। रक्षाकारियों में कितने ही लोग गिर पड़े, मगर कदम पीछे न हटे। वीर मद ने और भी मतवाला कर दिया। एक दंग में दूसरी बाड़ आयी, कुछ लोग फिर वीर-मति को प्राप्त हुए लेकिन कदम आगे बढ़ते ही गये। तीसरी बाड़ छूटने ही वाली थी कि लोगों ने विद्रोहियों को जालियाँ गोरे बागं।

जब लोग बादशाह के पास पहुँचे, तो अद्भुत दृश्य देखा। बादशाह रोमनुहोला की छाती पर सवार थे। जब गोरे जान ले कर भागे, तो बादशाह ने इन नरनिशाच को पकड़ लिया और उमे बल-बुर्बक भूमि पर गिरा कर उसकी छाती पर बैठ गये। अगर उनके हाथों में हथियार होता, तो इन वस्तु रोमन की लाश फटकनी हुई दिखायी देती।

राजा बस्तावरमिह आगे बढ़ कर बादशाह को आदाब बजा लाये। लोगों की जम-ध्वनि ने आवाज दहल उठा। कोई बादशाह के पैरों को चूमता था, कोई उन्हें आनोखी देता था, और रोमनुहोला का मसंर सों लातों और धूँसों

का लक्ष्य बना हुआ था। कुछ बिगड़े-दिल ऐसे भी थे, जो उसके मुँह पर धूलने में भी संकोच न कर करते थे।

४

प्रातःकाल था। सल्लज में जान-दोस्त्वय मनाया जा रहा था। बादशाही महल के सामने लाखों आदमी थे। सब लोग बादशाह को गद्दा-योग्य नज़र देने भाँते थे। जलद-जलद गरीबों को भोजन कराया जा रहा था। शाही नौबतबाने में नौबत बज रही थी।

दरबार सजा। बादशाह हीरे और जवाहर से जगमगाते, रत्नजड़ित आभूषणों में सजे हुए, मिहसब पर बिराजे। रईमों और जमींदारों ने सजरे गुजारी। कवि-जन ने कसीबे पटे। एकाएक बादशाह ने पूछा—राजा बख़्तावरसिंह कहीं है ? कप्तान ने जवाब दिया—कंदराने में।

बादशाह ने उम्मी बग़त कई कर्मचारियों को भेजा कि राजा साहब को जेलखाने में इज्जत के साथ लायें। जब थोड़ी देर के बाद राजा ने आ कर बादशाह की मलाम किया, तो वे तख़्त से उठकर ऊपर कर उनसे गले मिले और उन्हें अपनी दाहिनी ओर मिहसब पर बैठाया। फिर दरबार में खड़े हो कर उनकी मुकीबि और राज-भक्ति की प्रशंसा करने के उपरांत अपने ही हाथों में उन्हें सिलसलत पहुँचायी। राजा साहब के कुटुम्ब के प्राणी भी आदर और सम्मान के साथ बिदा किये गये।

अंत को जब दोपहर के समय दरबार बरख़स्त होने लगा तो बादशाह ने राजा साहब से कहा—आपने मुझ पर और मेरा सम्मान पर जो एहमान किया है, उसका बिला (पुरस्कार) देना मेरे इमकान में बाहर है। मेरी आपसे यहाँ इस्तिजा (अतुरोप) है कि आप बजारत वा कलमखान अपने हाथ में खोजिए और सम्मनन वा, जिन तरह मुनामिय ममसिए, इतबार कीजिए। मैं आरते किया बान में इग़ल न हुआ। मुझे एक गोले में पड़ा रहने दीजिए। नमकहराम रोगन को भी मैं भाँके मसूरं दिजे देगा हूँ। आप इसे जो मना चाहें, दें। मैं उसे बक का ज़रुम्ब भेज चुका हूँ; पर यह समझ कर कि यह आरका निहार है, दंग छोड़ें हुए हूँ।

लेखन बख़्तावरसिंह बादशाह के उम्हूँखल स्वभाव में असीमाति परिनि

ये, यह जानते थे, बादशाह की ये सदिच्छाएँ थोड़े ही दिनों को मेहमान हैं। मानवचरित्र में आकस्मिक परिवर्तन बहुत कम हुआ करते हैं। दो-चार महीने में दरबार का फिर वही रम हो जायगा, इसलिए मेरा तटस्थ रहना ही अच्छा है। राज्य के प्रति मेरा जो कुछ कर्तव्य था वह मैंने पूरा कर दिया। मैं दरबार में अलग रह कर निष्कामभाव से जिनगी मेवा कर सकता हूँ, उतनी दरबार में रह कर कदापि नहीं कर सकता। हितैषी मित्र का जिनना सम्मान होता है, स्वामिभक्त सेवक का उतना नहीं हो सकता।

यह विनोद भाव से बोले—हुजूर, मुझे इस ओहदे से मुआफ़ रवें। मैं यी ही आपका आदिम हूँ। इस समय पर किसी लायक आदमी को माफ़ूर फरमाइए (नियुक्त कीजिए)। मैं अक्खड़ राजपूत हूँ। मुझको इतजाब करना क्या जानूँ।

बादशाह—मुझे तो आपसे ज्यादा लायक और बख़्शदार आदमी नजर नहीं आता।

मगर राजा साहब उनको वापस में न आये। आखिर मजबूर होकर बादशाह ने उन्हें ज्यादा न बख़्शा। हम भर बाद जब रोमनुहीला को मजा देने का प्रश्न उठा, तब दोनों आदिमियों में इतना मतभेद हुआ कि बाद-बिवाद की नौबत आ गयी। बादशाह आग्रह करते थे कि इसे कुत्तों से नुचवा दिया जाय। राजा साहब इस बात पर भरे हुए थे कि इसे जान से न मारा जाय, केवल नज़रबंद कर दिया जाय। अंत में बादशाह ने क्रुद्ध हो कर कहा—यह एक दिन भारी जरूर दगा देगा।

राजा—इस लौक से मैं इसको जान न लूँगा।

बादशाह—तो जनाव, आप चाहे इसे मुआफ़ कर दें, मैं कभी मुआफ़ नहीं कर सकता।

राजा—आपने तो इसे मेरे मुपुर्द कर दिया था। यी हुई बीज को आप वापस कैसे लेंगे ?

बादशाह ने कहा—तुमने मेरे निकलने का कही रास्ता ही नहीं रखा।

रोमनुहीला की जान बच गयी। बज़ारख़ का पद कप्तान साहब को मिला। मगर सबसे निश्चिंत बात यह थी कि रेजिडेंट ने इस घट्बट से पूर्ण अनभिज्ञता प्रकट की और साफ़ फ़िरा दिया कि बादशाह-मलामत अपने ज़ेमरेज मुनाहबो

फो जो राजा चाहे दे; मुझे कोई आपत्ति न होगी । मैं उन्हें पाता, तो स्वयं बाद-  
शाह को खिदमत में भेज देता; लेकिन पाँचों महानुभावों में से एक का भी पता  
न चला । शायद वे सब के, सब रातो-रात कलकत्ते भाग गये थे । इतिहास में  
उक्त घटना का कहीं उल्लेख नहीं किया गया, लेकिन किवंदंतियाँ, जो इतिहास  
में अधिक विद्वत्संगीय हैं, उसकी सत्यता की साक्ष्य हैं ।

---



## अधिकार-चिंता

टामी यो देखने में तो बहुत समझ था। भूकना नौ गुननेवालों के कानों के परदे फट जाते। झील-झील भी ऐसा कि अंधेरी रात में उस पर गर्भ का भ्रम हो जाता। लेकिन उसकी स्वानोचिन बीरना किमो मयामक्षेत्र में प्रमाणित न होती थी। दो-चार दफे जब बाजार के लेंडियों ने उसे चुनौती दी, तो वह उनका गर्भ-मर्दन करने के लिए मैदान में आया, और देखनेवालों का कहना है कि जब तक लड़ा, जोबट में लड़ा, नखों और दांतों ने ज्यादा चोटें उसकी दुम ने की। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मैदान किमके हाथ रहता, किन्तु जब उस दल को कुमक भंगाने पड़ी, तो रण-शास्त्र के नियमों के अनुसार विजय का ध्येय टामी हो को देना उचित और न्यायानुकूल जान पड़ता है। टामी ने उस अवसर पर कौशल में काम लिया और दांत निकाल दिये; जो मधि की माषना थी। किन्तु सबसे उसने ऐसे सन्तोष-विहीन प्रतिस्पर्द्धियों के मुंह लगाना उचित न समझा।

इतना क्षान्ति-प्रिय होने पर भी टामी के शत्रुओं की सख्या दिनो-दिन बढ़ती जाती थी। उसके बराबरवाले उसने इसलिए जलते कि वह इतना मोटा-माजा हो कर इतना मोह क्यों है। याजरी दल इसलिए जलता कि टामी के मारे पुरो पर की हठियाँ भी न बचने पाती थी। वह पड़ी-रात रहे उठता और हलवाइयों की दुकानों के सामने के दोनों और पत्तल, कसाईखाने के सामने की हठियाँ और छोछड़े चबा डालता। अतएव इतने शत्रुओं के बीच में रह कर टामी का जीवन सकटमय होता जाता था। महीनो बीत जाते और पेट भर भोजन न मिलता। दो तीन बार उसे मनमाने भोजन करने की ऐसी प्रबल उत्कण्ठ हुई कि उसने संदिग्ध गावनों द्वारा उसको पुरा करने की चेष्टा की, पर जब परिणाम आशा के प्रतिकूल हुआ और स्वादिष्ट पदार्थों के बदले अदृक्कर दुर्पाद्य वस्तुएँ भर-पेट खाने को मिली—जिममें पेट के बदले कई दिन तक पीठ में बिपम बेदना होती रही—तो उसने विवश हो कर फिर सम्मार्ग का आश्रय

लिया । पर इन्हीं से पैट चाहे भर गया हो, वह उत्कण्ठा छात न हुई । वह किसी ऐसी जगह जाना चाहता था, जहाँ खूब शिकार मिले, शरभोष्ठ, हिरण, भेड़ों के वच्चे मैदानों में बिचर रहे हों और उनका कोई मालिक न हो, जहाँ किसी प्रतिद्वंद्वी की गंध तक न हो; आराम करने को सघन वृक्षों को छाया हो, पीने को नदी का पवित्र जल । वहाँ मनमाना शिकार कर्ष, झाँकें और भीड़ी नौद सोऊँ । वहाँ चारों ओर मेरी घात बँट जाय, सब पर ऐसा रोब छा जाय कि मुझी को अपना राया समझने लगे और धीरे-धीरे मेरा ऐसा सिकका धँट जाय कि किसी द्वेषी को वहाँ पैर रखने का साहस ही न हो ।

संयोगवश एक दिन यह इन्ही कल्पनाओं के मुख स्वप्न देखता हुआ निर मुझसे सड़क छोड़ कर गलियों से चला जा रहा था कि महना एक सज्जन से उनकी मुठभैठ हो गयी । टामी ने चाहा कि बच कर निकल जाऊँ, पर वह बुद्धिमाना सातिप्रिय न था । उसने तुरंत सपट कर टामी का टेंदूआ पकड़ लिया । टामी ने बहुत अनुनय-विनय की, गिड़गिड़ा कर कहा—ईश्वर के लिए मुझे यहाँ से चले जाने दो; कसम से तो, जो इधर पैर रखूँ । मेरी घातत क्षायी थी कि तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में चला आया । पर उस मन्दाध और निर्दय प्राणी ने जरा भी रिजायत न की । अंत में हार कर टामी ने गर्दभ स्वर में परिपाय करनी शुरू की । यह कोलाहल सुन कर मोहल्ले के दो-चार नेता लोग एकत्र हो गये; पर उन्होंने भी दीन पर दया करने के बदले उलटे उसी पर दत्त-प्रहार करना शुरू किया । इस धन्यायपूर्ण भयवहार ने टामी का वित्त साँझ दिया । वह जान छोड़ कर भागा । उन अत्याचारी पशुजो ने बहुत दूर तक उसका पीछा किया, यहाँ तक कि मार्ग में एक नदी पड़ गयी और टामी ने उसमें कूद कर अपनी जान बचायी ।

कहते हैं, एक दिन सबके दिन फिरते हैं । टामी के दिन भी नदी में कूदते ही फिर गये । कूदा जा जान बचाने के लिए, हाथ लग गये मोती । संस्ता हुआ उस पार पहुँचा, सो वहाँ उसकी चिर-गंचित अभिलाषाएँ मूर्तिमती हो रही थीं ।

२

यह एक विस्तृत मैदान था । जहाँ तक निगाह जाती थी, हरियाली की छटा दिसायी देती थी । कहीं नालों का यधुर कलरव था, कहीं झरनों का मंद

करेगा। आखिर मेरे भी तो पेट है; बिना बाहार के कैसे जीवित रहूँगा और कैसे तुम्हारी खाऊँ करूँगा ?” वह अब वही ज्ञान से जंगल में चारों ओर गौरवान्वित दृष्टि से ताकत हुआ विचरता करता।

टामी को अब कोई चिन्ता थी तो यह कि इस देश में मेरा कोई मुहूर्त न बँट खड़ा हो। वह निरन्तर सजब और सजसज रहने लगा। ज्यों-ज्यों दिन गुजरते थे और सुख-भोग का बसका बढ़ता जाता था, दोनों-दोनों उनकी चिन्ता भी बढ़ती जाती थी। वह अब बहुधा रात को चौक पड़ता और किसी अज्ञान शत्रु के पीछे दौड़ता। अन्तर “अंधा कूकुर बतलें भूँके” वाले लौकांतिक को परित्याग करता। वन के पशुओं से कहता—“ईश्वर न करे कि तुम किसी दूसरे शासक के पंजे में फँस जाओ। यह तुम्हें पीस डालेगा। मैं तुम्हारा हितैषी हूँ; सबैव तुम्हारी शुभ-कामना में मग्न रहता हूँ। किसी दूसरे से यह आशा मत रखो।” पशु एक क्षण में कहते, “जय नरु हम जियेके, आज हो के अबीन रहेके।”

आखिरकार यह हुआ कि टामी को सग भर भी शान्ति से बैठना दुर्लभ हो गया। वह रात-रात और दिन-दिन भर नये के किलारे इधर से उधर चक्कर लगाता करता। दीड़-दीड़से हीफने लगता, बेधन हो जाता; गपरे चिन्ता की घाति न मिलती। कहीं कोई शत्रु न घुस आये।

लेकिन प्यार का महोना आया तो टामी का चिन्तन एक बार फिर अपने पुराने नहचरा से मिलने के लिए छलापित होने लगा। वह अपने मन को किसी भाँति रोक न सका। वह दिन-गाढ़ आज जब वह दो-चार मित्रों के साथ किसी प्रेमिका के पीछे गल्ले-बल्ली और कूचे-कूचे में चक्कर लगाता था। दो-चार दिन तो उसने सग किया, पर अंत में आवेग इतना प्रबल हुआ कि वह सरसीर टाँक कर उड़ खड़ा हुआ। उसे पर अग्ने तेज और बल पर अभिमान भी था। दो-चार को तो वही मजा चमका सकता था।

किन्तु नये के इन पार आवे हो उनका आत्मनिश्वास प्रत्येक काल के तम के समान फटने लगा। उसकी चाल में पड़ गयी, आप ही आप धिर मुक गया, दुम धिक्क भयो। अगर एक प्रेमिका को आवे देख कर वह बिह्वल हो उठा; उसके पीछे ही छिया। प्रेमिका को उनकी वह कुचेष्टा अप्रिय लगे।

उमने तीव्र स्वर में उनकी ज़बहेय्या की। उनकी आवाज़ मुनते हो उसके कई प्रेमी आ पहुँचे और टामी को वहाँ देखते ही ज़ामे से बाहर हो गये। टामी मिट्टिया गया। अभी निश्चय न कर सका था कि क्या कहें कि चारों ओर से उस पर दाँतों और नखों की वर्षा होने लगी। भागते ही न बन पड़ा। देह लहलहात हो गयी। भागा भी, तो खेतानों का एक दल पीछे था।

उस दिन से उसके दिल में एक-सी समा गयी। हर घड़ी यह भय लगा रहा कि आक्रमणकारियों का दल मेरे मुँह और छाति में बाधा डालने के लिए मेरे स्वर्ग को विध्वंस करने के लिए आ रहा है। यह सका पहल भी कम न थी; अब और भी बढ़ गयी।

एक दिन उसका चित्त मग से इतना व्याकुल हुआ कि उसे जान पड़ा, क्षुब्ध-दल आ पहुँचा। वह बड़े वेग से नदी के किनारे आया और हृयर से उपर दौड़ने लगा।

दिन बीत गया, रात बीत गयी; पर उसने विधाम न लिया। दूसरा दिन आया और गया, पर टामी निराहार, निर्जल नदी के किनारे बसकर लगाता रहा।

इस तरह पाँच दिन बीत गये। टामी के पैर लहलहाते लगे, आँखों-तले अँधेरा छाने लगा। दुषा से व्याकुल हो कर गिर-गिर पड़ता, पर वह शंका किसी भालि घात न हुई।

अब में सातवें दिन बनागा टामी अधिकार-चिन्ता से ग्रस्त, ज़ंजर और घिघिल हो कर परलोक सिंघार। वन का कोई पशु उसके निकट न गया। किसी ने उसकी चर्चा तक न की, किसी ने उसकी लाश पर भी तक न बहाये। कई दिनों तक उस पर गिद्ध और कौए मँडराते रहे; अंत में अस्थिपंजरों के निवा और कुछ न रह गया।

# दुराशा

( प्रहसन.)

पात्र—

दयाशंकर—कार्यालय के एक सामान्य लेखक ।

आनंदमोहन—कालेज का एक विद्यार्थी तथा दयाशंकर का मित्र ।

ज्योतिष्वरूप—दयाशंकर का एक सुदूर-सम्बन्धी ।

मेनका—दयाशंकर की पत्नी ।

( होली का दिन )

( समय—९ बजे रात्रि, आनंदमोहन तथा दयाशंकर कार्यालय करते जा रहे हैं । )

आ०—हम लोगों को देर तो न हुई । अभी तो नौ बजे होये ।

द०—नहीं, अभी क्या देर होगी ।

आ०—यहाँ बहुत इंतजार न करना । क्योंकि एक-दो दिन ढर गली-गली घूमने के पश्चात् मुझमें इंतजार करने की शक्ति ही नहीं, दूसरे ठीक स्मारक बने बौद्धि हाउस का दरवाजा बंद हो जाता है ।

द०—अभी, चलते-चलते थाली सामने आयेगी । मैंने तो सेवती से पहले ही कह दिया है कि नौ बजे तक सब सामान तैयार रखना ।

आ०—तुम्हारा घर तो अभी दूर है । यहाँ मेरे घरो में चलने की शक्ति ही नहीं । आओ कुछ बात-चीत करते चलें । भला यह तो बताओ कि परदे के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है ? अभी जो मेरे सामने आयेगी या नहीं, क्या मैं उनके पंद्रमुख का दर्शन कर सकूँगा ? सब कहो ।

द०—तुम्हारे और मेरे बीच में तो भाईनाटे का सम्बन्ध है । यदि मेनका मुँह खोलें तब भी तुम्हारे सम्मुख था जान तो मुझे कोई म्लान नहीं । चित्तु सभारणतः मैं परदे की प्रथा का सहायक और समर्थक हूँ । क्योंकि हम

लोगों को सामाजिक नीति इनको पवित्र नही है कि कोई स्त्री अपने नज्माबाद को चोट पहुँचाये बिना अपने घर से बाहर निकले ।

आ०—मेरे विचार में तो पर्दा ही कुबेष्टाओं का मूल कारण है । वरों से स्वभावतः पुरुषों ने पित्त में उन्मुक्तता उत्पन्न होती है और वह भाव कभी तो बोली-टोला में प्रकट होता है और कभी नेत्रों के बटवारा में ।

द०—जब तक हम लोग इनके दूषप्रतिज्ञ न हो जायें कि मर्त्यात्मिका के पाँछे प्राण भी बलिदान कर दें तब तक परदे को प्रग का नाउना समाज के मार्ग में बिज बोना है ।

आ०—आपके विचार से तो यही निश्च होता है कि यूरोप में मर्त्यात्मिका के लिए रात-दिन शविर को नदियाँ बहा करती है ।

द०—वही इमी बेपरवाही ने तो मर्त्यात्मिका को निर्मूल कर दिया है । जनों मेंने किसी समाचारपत्र में पढ़ा था कि एक स्त्री ने किसी पुरुष पर इस प्रकार का अभियोग चलाया था कि उसने मुझे निर्भीकतापूर्वक कुदृष्टि में जूना था, किन्तु विचारक ने उस स्त्री का जन्म-शिव में देख कर यह कह कर मुकदमा सारिज कर दिया कि प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि हाठ-बाट में नक़्क़वान स्त्री को घूर कर देखे । 'मुझे तो यह अभियोग और यह फँसला सर्वथा हास्यास्पद-ब्राल पड़ते हैं और किसी भी समाज की निंदिता करनेवाले हैं ।

आ०—इन विषय को छोड़ो । यह तो बताओ कि इन समय क्या-क्या खिलाभोग ? मित्र नहीं तो मित्र का बर्बा ही हो ।

द०—यह तो मेवती की पाककला-कृशकला पर निर्भर है । पुराना जाल कंजीरियाँ तो होनी हा । यथाशंभव खूब खड़े नो होंगे । यथाशक्ति धरें और समोस भी आपेंगे । खीर आदि के बारे में अविष्य-बागों की या मक्नी है । बाजू और मोमी की शोरखेदार तरकारी और मटर, दालमोट भी मिलेंगे । कीरिनी के लिए भी कह आया था । गुलर के कोछते और बानू के कबाब, यह दोनों खेवती खूब पकाती है-। इनके बिना -दही-बड़े और पटनी-अचार को बर्बा तो बर्बा ही है । हाँ, धायद-किशमिश का रादवा भी मिले । जिनमें केसर की गुणध जड़ती होगी ।

मा०—जिन, मेरे मुँह में तो पानी भर आया । तुम्हारी बातों ने तो मेरे पैरों में जान डाल दी । चापद पर होता वी उड़ कर पहुँच जाता ।

२०—जो, अब जा ही जाते हैं । यह सम्झा लो बाबे की बुझान है, इसके बाद पीया मरान मेरा हो है ।

आ०—मेरे साथ बैठ कर एक ही बातों में खाना । कही ऐसा न हो कि जिनके जाने के लिए मुझे भागों जो के सामने लज्जित होना पड़े ।

२०—इससे तुम निश्चय रहो । उन्हें मिलाहारो आरमी में पिंड है । वे कहती हैं—“जो खायेंगे हो नहीं वह दुनिया में काम क्या करेगा ?” आज शाम तुम्हारी बदौलत मुझे भी काम करनेवालों की पक्ति में स्थान मिल जाये । कम से कम कौशिक तो ऐसी ही करना ।

आ०—भई, यथाशक्ति चेष्टा करूँगा । चापद तुम्हें ही प्रधानपद मिल जाये ।

२०—यह लो, आ गये । देखना भीड़ियां पर अंधेरा है । चापद पिराम थलाना भूल गयी ।

आ०—कोई हर्ज नहीं । तिमिरलोक ही में तो मिर्कंदर को अष्ट मिला था ।

२०—अंतर्द हतना ही है कि तिमिरलोक में पैर फिसले तो पानी में गिरीगे और वहाँ फिसला तो पथरीली मड़क पर ।

( जीतिस्वल्पा भाते हैं । )

जोति०—तेषक भी उपरिगत हो गया । देर तो नहीं हुई ? बेवल् मार्ज करता आया है ।

२०—नहीं, अभी तो देर नहीं हुई । चापद आपकी भोवनाभिलाषा भाग्यी समय से पहले खोंच भायी ।

आ०—आपका परिचय कराइए । मुझे आपसे देखा-देखी नहीं है ।

२०—( अंगरेजी में ) मेरे मुँह के सम्बन्ध में माले होते हैं । एक पत्नी के मुहरिर है । जबरदस्ती नामा जोड़ रहे हैं । केवली में निमंत्रण दिया होगा । मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं । मे अंगरेजी नहीं जानने ।

आ०—इतना तो अच्छा है । अंगरेजी में ही बातें करेंगे ।

द०—सारा मजा किरकिरा हो गया। कुमानुओं के साथ बैठ कर खाना फाँड़े के आश्रय के बराबर है।

आ०—किसी उपाय से इन्हें बिदा कर देना चाहिए।

द०—मृते तो चित्ता यह है कि अब समार के कार्णकर्ताओं में हमारी और मुह्तारी गणना हो न होनी। पाला इसके हाथ खेंगा।

आ०—खैर ऊपर चलो। आनंद तो जब आवे कि इन महाराज को आगे पेट ही उड़ना पड़े।

(तीनों आदमी ऊपर आते हैं।)

द०—अरे! कमरे में भी रोमानी नहीं, घुप अँधेरा है। लाला ज्योतिस्वरूप, देखिएगा, कहीं ठोकर खा कर न गिर पड़िएगा।

आ०—अरे मजबूत... (आलमारी से टकरा कर कम से गिर पड़ता है)।

द०—लाला ज्योतिस्वरूप, क्या आप गिरे? चोट तो नहीं आयी?

आ०—अजी, मैं गिर पड़ा। कमर टूट गयी। तुमने अच्छी बाधत की।

द०—भले आदमी, नौकरी बर तो आवें हो। मालूम नहीं था कि सामने आलमारी एसी हुई है? क्या ज्यादा चोट लगी?

आ०—भीतर जाओ। बालियाँ लाओ और भानो जी से यह कह देना कि घोंदा-वा वेल गर्म कर लें। मालिश कर देंगा।

ज्योति०—महाराज, यह आपने क्या रख छोड़ा है। जमीन पर गिर पड़ा।

द०—उमालदान तो नहीं सुझना दिया? हाँ, वही तो है। सारा फर्ग खराब हो गया।

आ०—बगुजर, जा कर लाइट जला लाओ। वहाँ ला कर काल-कोठरी में डाल दिया!

द०—(पर में जा कर) अरे! यहाँ भी अँधेरा है! चिराग तक नहीं सेवती, कहाँ हो?

स०—बैठो तो है।

द०—यह बात क्या है? चिराग क्यों नहीं जले! तबीयत तो अच्छी है?

स०—बहुत अच्छी है। चारों, तुम आ तो गये! मेने समझा था कि आज आपका दर्शन हो न होगा।



द०—ज्वर है क्या ? कब से आया है ?

से०—नहीं, ज्वर-स्वर कुछ नहीं, चैन से बैठे हैं।

द०—तुम्हारा पुराना वायगोला तो नहीं उभर आया ?

से०—( व्यंग्य से ) हाँ, वायगोला ही तो है। लाओ, कोई दवा है ?

द०—अभी डाक्टर के यहाँ से मँगाता हूँ।

से०—कुछ मुपत की रकम हाप आ थपी है क्या ? लाओ, मुझे दे दो, खाली हो जाऊँ।

द०—तुम तो हँसते कर रही हो। भाऊ-साक कोई बात नहीं कहती। क्या मेरे देर से आने का यही दंड है ? मैंने तो बजे आने का वचन दिया था। शायद दो घार मिनट अधिक हुए हों। सब चीजें तैयार हैं न ?

से०—हाँ, बहुत ही खस्ता। आपी-आध मकान वाला था।

द०—आनंदमोहन से मैंने तुम्हारे खूब प्रशंसा की है।

से०—ईश्वर ने चाहा तो ने भी प्रशंसा ही करेंगे। पानी रख आओ, शूप-बाप तो धोयें।

द०—चटनियाँ भी बनवा लो है न ? आनंदमोहन को चटनियों से बहुत प्रेम है।

से०—खूब चटनी खिलाओ। सेरों बना रखी है।

द०—पानी में केवड़ा डाल दिया है ?

से०—हाँ, ठे जा कर पानी रख आओ। पानी आरुध करें, प्यास लगी होगी।

भा०—( बाहर से ) मित्र, दीर्घ आओ। अब इतजार करने की शक्ति नहीं है।

द०—जल्दी भचा रहा है। लाओ, थालियाँ परसो।

से०—पहले चटनी और पानी तो रख आओ।

द०—( स्तोद्रे में जा कर ) अरे ! यहाँ तो झूठा-बिलकुल ठंडा पड़ गया है। महरी आज सुबेरे ही काम कर लयी क्या ?

से०—हाँ, खाना पकने से पहले ही आ गयी थी।

द०—बर्तन सब भेंजे हुए रखे हैं। क्या कुछ पकाना ही नहीं ?

मे०—भूत-प्रेत आ कर खा गये होंगे ।

द०—क्या चूल्हा ही नहीं जलाया ? गजब कर दिया ।

मे०—गजब मैंने कर दिया या तुमने ?

द०—मैंने तो सब सामान ला कर रख दिया था । तुमसे बार-बार पूछ लिया था कि किसी चीज की कमी हो तो खतलाओ । फिर धान, कपो न पका ? क्या बिचिन रहस्य है ! भला मैं इन दोनों को क्या मुँह दिखाऊँगा ।

आ०—मित्र, क्या तुम अकेले ही सब सामग्री खट कर रहे हो ? इधर भी लोग आया लगाये बैठे हैं । इतजार पन तोड़ रहा है ।

से०—यदि सब सामग्री ला कर रख ही देते तो मुझे बनाने में क्या आपत्ति थी ?

द०—अच्छा, यदि दो-एक वस्तुओं की कमी ही रह गयी थी, तो इसका क्या अभिप्राय कि चूल्हा ही न जले ? यह तो किसी अपराध का दङ दिया है । आज होली का दिन और यहाँ आग ही न जली ?

मे०—जब तक ऐसे चरके न खाओगे, तुम्हारी आँखें न खुलेंगी ।

द०—तुम तो पहँलियों से बातें कर रही हो । आन्तर किस बात पर अग्रमत हो ? मैंने कौन-सा अपराध किया ? जब मैं यहाँ से जाने लगा था, तुम प्रसन्नमुत्त थी और इसके पहले भी मैंने तुम्हें दुखी नहीं देखा था । तो मेरी अनुपस्थिति में कौन ऐसी बात हो गयी कि तुम इतनी रुठ गयी ?

से०—पर मैं स्त्रियों को कैश करने का यह दङ है ।

द०—अच्छा तो यह इस अपराध का दङ है ? मगर तुमने मुझसे परदे की निंदा नहीं की । बल्कि इस विषय पर जब कोई बात छिडती थी तो तुम मेरे विचारों से सहमत ही रहती थी । मुझे आज हो जात हुआ है कि तुम्हें परदे में इतनी पना है ! क्या दोनों अतिथियों से यह कहूँ कि परदे की नहायता के दङ में मेरे यहाँ अनसन चल है, आग लोय ठंडी-ठंडी हवा ग्याये ? — ..

से०—जो चीजें तैयार हैं वह जा कर पिलाओ और जो नहीं है, उसके लिए धमा मांगो ।

द०—मैं तो कोई चीज तैयार नहीं देखता ?

से०—हैं क्यों नहीं, चटनी बना रही ठाली हैं और पानी भी पहले से तैयार है।

द०—यह दिल्लगी तो हो चुकी। संचमुच बताओ, खाना क्यों नहीं पकाया? जमा तबीयत खराब हो गयो थी, अथवा किसी कुत्ते ने रसोई आ कर अपवित्र कर दो थी?

आ०—बाहर क्यों नहीं आते हो भाई, भीतर ही भीतर क्या मिसकौट कर रहे हो? अगर सब चीजें नहीं तैयार हैं, नहीं सही, जो कुछ तैयार हो वही लाओ। इस समय तो छादी पुरियाँ भी सस्ते से अधिक स्वादिष्ट जान पड़ेंगी। कुछ लाओ, भला श्रीगणेश तो हो। मुझसे अधिक उत्सुक मेरे मित्र मुंशी ज्योतिस्वरूप है।

से०—भैया ने दावत के इंतजार में आज दोपहर को भी खाना न भाया होगा।

द०—दावत क्यों टालती हो, मेरी बातों का जवाब ज्यों नहीं देती?

से०—नहीं जवाब देती, क्या कुछ आपका कर्ज खाया है या रसोई बनाने के लिए लौंडी हूँ?

द०—यदि मैं घर का काम करके अपने को दास नहीं समझता तो तुम घर का काम करके अपने को दासी क्यों समझती हो!

से०—मैं नहीं समझती, तुम समझते हो।

द०—क्रोध मुझे आना चाहिए, उल्टी तुम बिगड़ रही हो।

से०—तुम्हें क्यों मुझ पर क्रोध आना चाहिए? इसलिए कि तुम पुरुष हो?

द०—नहीं, इसलिए कि तुमने आज मुझे मेरे मित्रों तथा सम्बन्धियों के सम्मुख नीचा दिखाया।

से०—नीचा दिखाया तुमने मुझे कि मैंने तुम्हें? तुम तो किसी प्रकार समा करा लोगे, किंतु कानिमा तो मेरे मुख लपेगी।

आ०—भई, अपराध क्षमा हो, मैं भी वहीं आता हूँ। गृहों तो किसी पदार्थ की गुंथ तक नहीं आती।

द०—क्षमा क्या करा लूँगा, लाचार हो कर बहाना करना पड़ेगा।

मे०—चटनी खिला कर पानी पिलाओ । इतना सत्कार बहुत है । दोलो का दिन है, यह भी एक प्रहसन रहेगा ।

द०—प्रहसन क्या रहेगा, कहीं मुख दिखाने योग्य न रहेगा । आगिर तुम्हें यह क्या सरारन सूझी ?

से०—फिर वही बात ! सरारत क्यों सूझती ! क्या तुमसे और तुम्हारे मित्रों से कोई बदला लेना था ? लेकिन जब लाचार हो गयी तो क्या करती ? तुम तो दस मिनट पछता कर और मुझ पर अपना क्रोध मिटा कर आनंद से सोओगे । यहाँ तो मैं तीन बजे से बैठे झोक रहो हूँ । और यह सब तुम्हारी कारखानू है ।

द०—यही तो पूछता हूँ कि मैंने क्या किया ?

से०—तुमने मुझे पिंजरे में बंद कर दिया, पर काट दिये ! मेरे सामने दाना रख दो तो खाऊँ, मुषिया में पानी डाल दो तो पीऊँ, यह किसका कसूर है ?

द०—भाई छिनी-छिनी बातें न करो । सारू-साक क्यों नहीं कहती !

आ०—विदा होता हूँ, मौन उड़ाए । नहीं, बाजार की दुकानें भी बंद हो जायेंगी । खूब चक्का दिये मित्र, फिर समझेंगे । लाला ज्योतिस्वरूप तो बैठे-बैठे अपनी निराशा को खराटो से भुला रहे हैं । मुझे यह संतोष कहाँ ! तारे भी नहीं है कि बैठ कर उन्हें ही गिनूँ । इस समय तो स्वादिष्ट पदार्थों को स्मरण कर रहा हूँ ।

द०—बधुवर, दो मिनट और संतोष करो । आया । हाँ ! लाला ज्योतिस्वरूप से कह दो कि किसी हलवाई की दूकान से पुरियाँ ले आयें । यहाँ कम पड़ गयी है । आज दोपहर ही से इनकी तबीयत खराब हो गयी है । मेरे मेज की दरार में काने रखे हुए हैं ।

से०—साक-साक तो यहो हूँ कि तुम्हारे परदे ने मुझे पगु बना दिया है । कोई मेरा गला भी घाँट आग तो फरिवाद नहीं कर सकती ।

द०—फिर भी वही अन्धोक्ति ! इस विषय का अंत भी होगा या नहीं ?

से०—दियासलाई तो घी ही नहीं फिर आग कैसे जलाती !

द०—अहा ! मैंने जाते समय दियासलाई को डिबिया जेब-में रख ली

थी 'जरा सी बात का तुमने इतना अतंगड बना दिया। शायद मुझे नंग करने के लिए अबतार बुँड रही थी। कम से कम मुझे तो ऐसा हो जान पड़ता है।

से०—यह तुम्हारी ज्यादाती है। ज्यों हो तुम सीढ़ी से उतरे, मेरी दृष्टि दिविया की तरफ गयी, किंतु वह लापता थी। ताड़ गयी कि तुम ले गये। तुम मुश्किल से दरवाजे तक पहुँचे होगे। अगर जोर से पुकारती तो तुम मृत होते। लेकिन नीचे दूकानदारों के कान में भी आवाज जाती तो मृत कर तुम न जाने मेरी कौन-कौन दुर्दशा करते। हाथ भल कर रह गयी। उसी समय से बहुत व्याकुल हो रही हूँ। कि किसी प्रकार भी दियासलाई मिल जाती तो अच्छा होता। मगर कोई बस न चलता था। जंत में लाचार हो कर बैठ रही।

द०—यह कहो कि तुम मुझे तंग करना चाहती थी। नहीं तो क्या आग या दियासलाई न मिल जाती?

से०—अच्छा, तुम मेरी जगह होते तो क्या करते? नीचे सबके सब दूकानदार है। और तुम्हारी जान-महान के हैं। घर के एक ओर पंडित जी रहते हैं। इनके घर में कोई स्त्री नहीं। सारे दिन फाग हुई है। बाहर के संकड़ों आरमी जमा थे। दूसरी ओर बगाली बाबू रहते हैं। उनके घर की स्त्रियाँ किसी सम्बन्धों से मिलने गयी हैं और अब तक नहीं आयी। इन दोनों से भी बिना छजे पर आये कीज न मिल सकती थी। लेकिन शायद तुम इतनी बेपर्दीगी को धना न करने। और कौन ऐसा था जिससे कहती कि कहीं से आग ला दो। नहरी तुम्हारे सामने ही चोका-बर्तन करके चली गयी थी। रह-रह कर तुम्हारे ही ऊपर क्रोध आता था।

व०—तुम्हारी लाचारों का कुछ अनुमान कर सकता हूँ, पर मुझे अब भी यह भानने में आपत्ति है कि दियासलाई का न होना बूल्हा न जलने का वास्तविक कारण हो सकता है।

से०—तुम्हीं से पूछती हूँ कि बगलाओ, क्या करती?

द०—मेरा मन इस समय स्थिर नहीं, किंतु मुझे विश्वास है कि यदि मैं तुम्हारे ह्यान पर होता तो दोन्नी के दिन और मास कर जब अतिथि भी उपस्थित हो, बूल्हा ठंडा न रहता। कोई न कोई उपाय अवश्य ही निकालता।

से०—जैसे?

द०—एक रुक्का लिय कर किसी दूकानदार के सामने फेंक देता ।

मे०—यदि मैं ऐसा करती तो शायद तुम और मिलाने का मुझ पर कलक लगाते ।

द०—अपेरा हो जाने पर मिर में पैर तक चादर ओढ़ कर बाहर निकल जाता और दियामलाई ले आता । घटे में दो घटे में अवश्य ही कुछ न कुछ तैयार हो जाता । ऐसा उपवास तो न करना पड़ता ।

मे०—बाजार आने से मुझे तुम गली-गली घूमनेवाली कहते और गला काटने पर उताऊ हो जाते । तुमने मुझे कभी इतनी स्वतन्त्रता नहीं दी । यदि कभी स्नान करने जाती हूँ तो गाड़ी का पट बंद रहता है ।

द०—अच्छा, तुम बीती और मैं हारा । मर्द के लिए उपदेश मिल गया । कि ऐन अत्यावश्यक समय पर तुम्हें घर में बाहर निकलने की स्वतन्त्रता है ।

मे०—मैं तो इसे आकस्मिक समय नहीं कहती । आकस्मिक समय तो यह है कि बीजान् घर में कोई बीमार हो जाय और उसे डाक्टर के यहाँ ले जाना आवश्यक हो ।

द०—निस्संदेह वह समय आकस्मिक है । इस दशा में तुम्हारे जाने में कोई हस्तक्षेप नहीं ।

मे०—और भी आकस्मिक समय गिनाऊँ ?

द०—नहीं भाई, इसका फैसला तुम्हारी बुद्धि पर निर्भर है ।

जा०—मित्र, संतोष की सीमा तो अंत हो गयी, अब प्राण-पीडा हो रही है, ईश्वर करे, घर आबाद रहे, बिदा होता हूँ ।

द०—बस, एक मिनट और । उपस्थित हुआ ।

से०—चटनी और पानी लेते जाओ और पुरियाँ बाजार से मँगवा लो । इसके निवा इस समय हो ही क्या सकता है ?

द०—( मरदाने कमरे में आ कर ) पानी लाया है, प्यालियों में चटनी है । आप प्रोग जब तक भोग लगावें । मैं अभी जाता हूँ ।

जा०—धन्य है ईश्वर ! भला तुम बाहर तो निकले ! मेने तो समझा था कि एकादवास करने लगे । अगर निकले भी तो चटनियाँ ले कर । वह स्वादिष्ट

मस्तुरे क्या हुई जिनका आपने वादा किया था और जिनका स्मरण में प्रेमानुराग भाव से कर रहा है ?

८०—उद्योतिस्वरूप कहाँ गये ?

आ०—ऊर्ध्व सगर में भ्रमण कर रहे हैं। बड़ा ही अद्भुत उदासीन मनुष्य है कि आते ही आते सो गया और अभी तक नहीं चौका।

द०—मेरे यहाँ एक दुर्घटना हो गयी। उसे और क्या कहूँ। सब मायात मौजूद और चूल्हे में आग न जली।

आ०—तूब ! यह एक ही रही। लकड़ियाँ न रखी होगी।

द०—घर में तो लकड़ियाँ का पहाड़ लगा है। अभी थोड़े ही दिन हुए कि पाँव से एक गाड़ी लकड़ों आ गयी थी। दियासलाई न थी।

आ०—( अद्भुत कर ) वाह ! यह अच्छा प्रथम हुआ। घोड़ों-मौ भूक ने सारा स्वप्न ही नष्ट कर दिया। कम से कम मेरी तो बधिगा बैठ गयी।

द०—क्या कहूँ मित्र, आपत लज्जित हूँ। तुमसे सरा कहता हूँ। धात्र से मैं परदे का शत्रु हो गया। इस निर्गोडो प्रथा के बधन ने ठीक होली के दिन ऐसा विस्फोटपात किया कि जिनकी कभी भी संभावना न थी। अच्छा अब जत-लाजी, बाजार में लाऊँ पुरियाँ ? अभी तो ताजी मिल जायेंगी।

आ०—बाजार का रास्ता तो मैंने भी देखा है। कष्ट न करो। जा कर बोर्डिंग हाउस में ला लूँगा। रहे ये महाशय, मेरे विचार में तो इन्हें छेड़ना ठीक नहीं। पड़े-पड़े सर्राटि लेने दो। प्रातः काल बीकमे तो घर का मार्ग पकड़ेंगे।

द०—तुम्हारा यो वापस जाना मुझे खल रहा है। क्या सोचा था, क्या हुआ ! मजे ले-ले कर समोसे और कीकले खाते और गपड़-चौरस मचालते। मनी आभाएँ मिट्टी में मिल गयी। ईश्वर ने चाहा तो शीघ्र इसका प्रायश्चित्त करूँगा।

आ०—मुझे तो इस बात की प्रसन्नता है कि तुम्हारा निदात टूट गया। अब इतनी आत्मा दो कि भाभी जी को धन्यवाद दे जाऊँ।

द०—जीक से जाओ।

आ०—( भीतर जा कर ) भाभी जी को सहाय प्रणाम कर रहा हूँ। यद्यपि आज के आकाशी भोज से मुझे दुराशा तो अवश्य हुई, किंतु वह उस आनंद के

सामने धूम्य है जो आई साहब के विचार-परिवर्तन से हुआ है । आज एक दिया-मलाई ने जो शिक्षा प्रदान की है वह लाखों प्रामाणिक प्रमाणों से भी सम्भव नहीं है । इसके लिए मैं आपको सहृदय धन्यवाद देता हूँ । अब से बंधुवर परदे के पक्ष-पात्री न होंगे, यह मेरा अटल विश्वास है ।

( पटाक्षेप )

